

# मतादर्श

सामाजिक विज्ञान, मानविकी एवं वाणिज्य की शोध पत्रिका

संपादक

शैलेन्द्र सेंगर

निदेशक, एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विसेज, दिल्ली

मेखला प्रकाशन

एफ-3/139, सेक्टर-16, रोहिणी  
दिल्ली-110089

वर्ष : 13 अंक : 4 □ अक्टूबर-दिसम्बर, 2020

## मतादर्श

मतादर्श भारत में समाचार पत्रों के निबंधक (आर.एन.आई.) द्वारा अनुमोदित है।

**सलाहकार संपादक**

डॉ० गिरीश मिश्र

**संपादक**

शैलेन्द्र सेंगर

**संपादक मंडल**

डॉ० आर. एन. कुंअर

डॉ० बामेश्वर सिंह

डॉ० विद्या भूषण श्रीवास्तव

डॉ० रवीन्द्रनाथ राय

डॉ० अमरकान्त सिंह

डॉ० लक्ष्मेश्वर ठाकुर

**साज-सज्जा**

पंकज झा

**संपादकीय सम्पर्क:**

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-1,

दिल्ली-110091

फोन : 011-22753916, 47541851, 64683387

e-mail : editorialindia@gmail.com

---

**मूल्य : ₹ 1500.00**

मुद्रक एवं प्रकाशक अलका सिंह द्वारा एफ-3/139, सेक्टर-16, रोहिणी दिल्ली-110089 से प्रकाशित तथा बी. के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा दिल्ली-32 से मुद्रित

---

**नोट:** पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

# Editorial

The farmers' crisis arising out of two consecutive years of deficit monsoon has put a lot of focus on the state of Indian agriculture and its future readiness recently. The normally urban tinted media has also for once turned its attention to the problems afflicting India's agriculture sector, and distress of farmers who are disproportionately dependent for their livelihood on nature's benevolence. The rising food prices over the past two years and the cascading effect on the entire economy of a slowing agriculture sector has shown us evidently that India cannot dream about a two digit growth rate unless the shackled rural economy is freed and its engine speeded up. The Union Budget of 2016-17 appropriately took cognisance of the fact that the closely intertwined farm sector and rural economy need more than piecemeal benefits to sustain the large population dependent on this sector. The prediction of a healthy monsoon from the weatherman has also brought much relief. However, we need much more than budget allocations and good rainfall to make agriculture sustainable in the long run. We need a broader vision and long term policy approaches. Despite supporting almost 60 percent of India's total population, the contribution of agriculture to the GDP has been consistently declining. It currently stands at around 15 percent. A sector that provides work to more than half of the country's population contributing less than 1/5th to its GDP indicates a clear imbalance. While India grew by over 7 percent per cent last year, agriculture remained more or less stagnant. India's food grain production which has consistently been abundant over the past several years is showing signs of plateauing, suggesting saturation. These statistics point to the need for a major reshuffle in the rural economy. It clearly indicates that an unsustainably excessive part of the population is dependent on one sector and that we need to wean away labour out of agriculture to other sectors. The prevailing situation also calls for a need for major policy measures to boost the rural economy and create new infrastructure for the farm sector. What we need is a dedicated policy push to create alternate avenues of employment and work in rural areas. This calls for major skill development programs in rural areas which can push a section of the population towards non-farm activities and reduce overcrowding of the agriculture sector. Alternative income avenues to create jobs outside agriculture in rural areas include a policy push to help develop the retail sector, improve education, boost rural entrepreneurship, develop tourism, cottage and handicraft industries, horticulture, fisheries and create better connectivity with urban centres and infrastructure to make business ideas viable.

—Editor

## इस अंक में

### इतिहास

महर्षि दयानंद और भारतीय राष्ट्रवाद—प्रेमचंद राज जैन	7
उत्तराखण्ड के शिक्षा के विकास में मशिनरियों का योगदान—सोहन महतो	13
बिहार के मुसलमानों का खिलाफत आंदोलन में भूमिका—डॉ० शिप्रा आनन्द	20
संथाल एवं उनका समाज: ऐतिहासिक आईने में—राजीव कुमार सिंह	25
ब्रिटिश भारत में मजदूर वर्ग का उत्थान एवं मजदूर आंदोलन (1850-1908)—डॉ० संजीव कुमार	28
महात्मा गाँधी: सत्याग्रह की अवधारणा—गीता यादव	35
“स्वतंत्रता संग्राम में तिरहुत प्रमंडल के सारण एवं चम्पारण के मध्यमवर्गीय नेताओं की भूमिका” 1917 A.D से 1942 A.D तक—कुमार विशाल	38

### हिन्दी

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा—विनय कुमार	41
‘चंद्रगुप्त’ में वर्णित प्रसाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना—संजीव शर्मा	45

### संस्कृत

अष्टांग योग—डॉ० सुनिल कुमार तिवारी	49
दायभाग में स्त्रीधन स्वरूप—सुचिता यादव	53

### राजनीति विज्ञान

एम० एन० राय एवं वामपंथी चिन्तन—ब्रज भूषण प्रसाद	62
सम्प्रदायिकता और भारतीय राजनीति—कमलेश कुमार राम	72
भारत में जमीनी जनतंत्र: पंचायती राज व्यवस्था—चन्दन कुमार	78
आपातकाल के बाद प्रेस की स्वतंत्रता—कुमारी रीना	87
उत्तर-पूर्वी राज्यों में अलगाववाद भारत-म्यांमार संबंध—डॉ० पप्यु कुमार	90
भारत में लोक सेवायें: साख पर सवाल—मनीष चन्द्र	104

## समाजशास्त्र

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार—डॉ. आनन्द वर्द्धन 111

## दर्शन शास्त्र

रूढ़िवाद, साम्प्रदायिकता एवं धर्मनिरपेक्षता—डॉ. महेश कुमार सिंह 115

## HOME SCIENCE

Principles of Child Development—*Dr. Archana Kumari* 119

Home and Community Influences in Social Development—*Deepa Kumari* 123

Nutritional Status of Scheduled Castes School Going Boys and Girls in  
and around Gaya of Bihar State —*Kumari Soni; Suprita Suman* 127

## ENGLISH

Acceptance of Life: A Recurrent Theme in the Major Novels of Kamala  
Markandaya—*Mahesh Kumar* 131

Effects of Problems in Speaking English language by Students at  
Graduate level in India—*Dr. Anupama Singh; Girija Shankar* 135

Expanding the Vocabulary of Regional High School Students using Self-study  
Techniques—*Brij Mohan Balai* 139

Problems Faced by Students at Graduate level Study in Hindi Speaking  
States in India through Open & Distance Learning System  
—*Naveen Singh* 145

## HISTORY

Jagir's System under the Nizam: A Study—*Dr. C B Devaraju* 149

Contribution of Gandhi in Bihar—*Payal Priya* 152

History of Indian Caste System and Its Impact on India—*Hema* 158

Swami Dayanand Saraswati: Pioneer of Indian Renaissance and Reformation  
—*Dr. Anand Kumar Jha* 172

## POLITICAL SCIENCE

B. R. Ambedkar and The Politics of 'Kamma Niyama'—*Dr. Mukesh Kumar Jha* 179

## PSYCHOLOGY

A Comparative Study of Adjustment Pattern of High and Low Achievers  
as Related to Their Academic Achievement—*Dr. Shashi Kala Singh* 186

A Comparative Study - Insecurity among Co-Education and Single  
Gender Education School Students—*Dr. Smritikana Mitra Ghosh* 190

Job Satisfaction and Industrial Psychology—*Sidam Singh Munda* 194

## **ANTHROPOLOGY**

Anthropological Survey of Indian Maravars Tribes—*Kumari Sunita Chaudhary* 197

## **ECONOMICS**

Scope for Commercialisation of Small Farm Agriculture—*Dr. Shammi Kumari* 201

## **COMMERCE**

A Case Study on Comparative Analysis between Gold Etf's And  
Nifty50-A Selected Gold Etf's In India—*Atul Kumar Shukla;*  
*Prof. (Dr.) Rameshwar Singh* 204

Online Shopping is Far Better Than Traditional Shopping?—*Sachet Kumar* 207

## **LAW**

Capital Punishment in India: Constitutional Validity of  
Capital Punishment—*Karishma Tamta* 212

Study on Position of the Survivors and Victims of Child Sexual Abuse and  
the Impact of the Crime—*Shagufta Rashid; Dr. Chandra Lok Chaudhry* 223

## **EDUCATION**

Emotional Intelligence of Two-year B.Ed. Students in the District  
of Jalandhar—*Mukesh Kumar* 233

Career Decision Maturity of Adolescence Students In Relation to  
Their Self-concept—*Dr. Sunita Arya* 238

## **CHEMISTRY**

Ultrasonic Studies on Some Schiff Bases—*Rachana Kumari* 247

## **COMMERCE & BUSINESS MANAGEMENT**

Implementation Of Demonetisation-a Step Towards Reforming India  
—*Pritam Bharti; Prof.(Dr.) Rajendra Pandey* 252

## **PALI**

Padmasambhava: The Successor of Shantarakshit and Perfect Pioneer of the  
Land of Snow—*Lalan Kumar Jha* 259

# महर्षि दयानंद और भारतीय राष्ट्रवाद

प्रेमनंदु राज जैन

इतिहास विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारतीय पुनर्जागरण काल के महान नेताओं में स्वामी दयानंद सरस्वती का अनूठा स्थान है। भारत के इस महान सपूत ने करोड़ों भारतवासियों के मन पर छाए अज्ञान रूपी अंधकार को हटाने और समाज में धर्म के नाम पर व्याप्त अंधविश्वास, मिथ्यावाद, धर्मान्धता तथा अन्य कुरीतियों और दुष्प्रथाओं को समाप्त करने के लिए सतत प्रयत्न किया। उन्होंने भारतीय समाज की वैज्ञानिक और तर्कसंगत आधार पर पुनर्रचना करके उसे राजनीतिक मुक्ति पाने योग्य बनाने का जो प्रयत्न किया वह अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने भारतीय समाज और राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने और देशभक्ति की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी दयानंद और आर्य समाज का राष्ट्रवादी भावनाओं को भारत में फैलाने में महत्वपूर्ण योगदान है।<sup>1</sup> इसने ही वह पृष्ठभूमि तैयार की, जिसके साथे में राष्ट्रवादी और उग्रवादी विचारधाराएँ आगे चल कर फली-फूली। महर्षि दयानंद की दृष्टि भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक पुनरूत्थान तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने उन कल्पनाओं और विचारों को जन्म दिया जिनके सहारे भारतीय राष्ट्रवाद 1905 के बाद परवान चढ़ा। मानव कल्याण के लिए अपना सर्वस्व त्याग देने वाला यह व्यक्ति निश्चय ही एक महान विभूति था।

महर्षि दयानंद ने जिस समय कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया, उस समय तक भारतीय राष्ट्रवाद पर मुख्यतया उन मध्यवर्गीय बुद्धिवादियों का ही प्रभाव था जो अंग्रेजी शिक्षा की उपज थे। उनके विचार, उनकी आशाएँ, उनकी आकांक्षाएँ सभी पश्चिमोन्मुखी थीं। वे ब्रिटिश साम्राज्य के वफादार नागरिक होने का स्वांग भी करते थे। जड़विहीन ये, श्रेष्ठ भारतीय परंपराओं और उच्च आदर्शों से बेगाने लोग प्रेरणा के लिए बर्क, बेंथम, मिल, स्पेंसर जैसे पाश्चात्य विचारकों का मुँह जोहते थे। उनमें यह कहने का साहस नहीं था कि भारत पश्चिम के समकक्ष ही नहीं, कुछ मामलों में उनसे भी श्रेष्ठ है। किंतु दयानंद ने सदैव स्वराज्य का गुणगान किया। वह देशीय राष्ट्रवाद के उन्नायक थे। उन्होंने भारतवर्ष के शानदार अतीत में विद्यमान स्वराज्य के आधार पर राष्ट्रवाद का नारा बुलंद किया। उनकी उद्घोषणा थी कि विदेशी शासन चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, वह स्वदेशी शासन का स्थान नहीं ले सकता।<sup>2</sup>

दयानंद के राष्ट्रवाद का आधार शक्तियोग था। इसका अर्थ है स्वस्थ तन, मन एवं प्राणों की साधना। उपनिषदों में कहा गया है कि शरीर एक प्रमुख साधन है जिसका मजबूत और सुरक्षित रहना अत्यावश्यक है। स्वामी जी का सुगठित मजबूत शरीर इसका सुंदर उदाहरण था। शारीरिक शक्ति और सांसारिक विषयों की अवहेलना में रत राष्ट्र के लिए यह नया संदेश था। जब वे प्रचार कार्य में आए तो अनेक लोगों ने द्वेषवश उन पर तरह-तरह के आक्रमण किए। किंतु महर्षि ने पूरी मजबूती से आक्रमणों को झेल लिया। स्वामी जी जब चलते थे तो नवयुवकों को भी उनके साथ-साथ चलने में दौड़ना पड़ता था। शारीरिक शक्ति को इस प्रकार महत्व देकर स्वामी जी ने भारत के नौजवानों के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। मानसिक गुलामी में जीने वाले भारतीय नवयुवकों के लिए उनका जीवन अत्यंत प्रेरणास्पद और चुनौती उपस्थित करने वाला रहा है। स्वामी जी ने अपने द्वारा लिखित सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में शारीरिक उन्नति करने का उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि इसे जीवन में क्रियान्वित भी किया। शरीर योग के ऊपर बल प्रदान, उनका एक विशिष्ट राष्ट्र निर्माण मूलक योगदान है।<sup>3</sup>

दयानन्द मानते थे कि आत्मविश्वास की भावना के बिना स्वराज नहीं प्राप्त किया जा सकता। स्वराज और आत्मविश्वास की चर्चा विस्तार के साथ सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में की गई है।<sup>14</sup> राज्य के कर्तव्यों की चर्चा करते हुए दयानन्द ने स्वराज की कल्पना की है। उनके अनुसार राज्य को स्वयं अपनी रक्षा और स्थायित्व के लिए सभी नागरिकों को शिक्षा प्रदान करना चाहिए। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि अंग्रेज सरकार सभी को शिक्षा नहीं दे रही थी और ऐसा करके वह भारत के करोड़ों सामान्य नागरिकों को शिक्षा पाने के अधिकार से वंचित कर रही थी। वस्तुतः ब्रिटिश सरकार एक निरंकुश शासन चला रही थी। दयानन्द निरंकुशता के विरोधी और लोकतंत्र के समर्थक थे। उन्होंने निर्भीकतापूर्वक कहा कि देश में एक विद्यार्थ सभा, एक धर्मार्थ सभा और एक राजार्थ सभा की स्थापना की जानी चाहिए। स्वामी जी ने कहा कि निरंकुश शासक सत्ता के मद में चूर हो कर प्रजा को बर्बाद कर देता है। जिस प्रकार हिंस्र जंतु मोटे-ताजे जानवरों को खा जाते हैं ठीक उसी तरह एक निरंकुश शासक राज्य को नष्ट कर डालता है। जिस समय सारा देश राजनीतिक असंतोष से जल रहा था, उस समय दयानन्द राज्य और शासन के सामान्य कर्तव्यों की ओर लोगों का ध्यान दिला कर भारत के राष्ट्रीय पुनर्जागरण की शक्तियों का निर्माण कर रहे थे तथा लोगों के मानसिक दायरे को विस्तृत कर रहे थे। उनके अंदर जीवन और देश के प्रति उच्चतर मूल्यों का सृजन कर रहे थे। भारत में आत्म विवेचना की तीव्र पीड़ा और सांस्कृतिक तथा बौद्धिक जागृति के एक गहन दौर का अब सूत्रपात हो चुका था।

दयानन्द का राष्ट्रवाद गौरवशाली अतीत तथा पुनरुत्थानवाद पर निर्मित था। उनके पुनरुत्थानवाद ने सभी मध्यकालीन अंधविश्वासों, कुरीतियों, रूढ़ियों एवं अज्ञान से लोहा लिया। उन्होंने सत्य, नैतिकता एवं सदाचार की स्थापना की। दयानन्द ने वेदों की सहायता से भारतीय राष्ट्रवाद के लिए नैतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार की। उन्होंने व्यक्ति के नैतिक शुद्धिकरण और सामाजिक नव-निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया। उनके वैदिक आदर्शवाद ने भारतवर्ष में पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार की भूमिका अदा की।

स्वामी दयानन्द का विचार था भारत का पुनरुत्थान शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। उन्होंने स्त्री शिक्षा पर पर्याप्त बल दिया। वह चाहते थे कि वैदिक काल में स्त्री को जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था वह उसे फिर से प्राप्त हो। उन्होंने स्त्रियों की पूर्ण विमुक्ति का समर्थन किया। दयानन्द ने बाल विवाह के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया और अपने समर्थन में लोकमत भी तैयार किया। दयानन्द ने विधवा विवाह का समर्थन किया तथा उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि वेदों में ऐसी अमानुषिक प्रथा का समर्थन कहीं नहीं किया गया है। आर्य समाज और उसके अनुयायियों ने उनके इन विचारों को फैलाने के लिए बड़ी संख्या में अनाथालय, विधवाश्रम और महिलाओं के लिए पाठशाला बनवाए।

दयानन्द यह बात जानते थे की अंग्रेज सरकार द्वारा उस समय अपनाई गई शिक्षा नीति बिल्कुल बेकार थी क्योंकि इसमें चरित्र निर्माण का कोई स्थान नहीं था। अतः उन्होंने एक अलग शिक्षा योजना का प्रतिपादन किया जिसमें सभी जाति वर्गों के लिए अनिवार्य शिक्षा थी। सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास के अनुसार माता-पिता, शिक्षकों और रिश्तेदारों का परम कर्तव्य है कि वे बच्चों को अच्छी और ठोस शिक्षा दें तथा उन्हें सच्चरित्र और सुसंस्कृत बनाएँ। आर्य समाज ने स्वामी जी के सिद्धांतों को व्यवहार रूप में लागू किया। उनकी मृत्यु के बाद, 1886 में लाहौर में डी.ए.वी. कॉलेज की स्थापना हुई। देश के अन्य भागों में भी डी.ए.वी. स्कूल और कॉलेज खोले गए। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देने हेतु हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी बना। इन संस्थानों से पढ़कर निकले हुए छात्रों ने

राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। ए.आर. देसाई का भी मानना है कि आर्य समाज की गतिविधियाँ राष्ट्रवादी और प्रजातांत्रिक भावनाओं से प्रेरित रहती थीं।<sup>5</sup>

दयानन्द का विचार था कि भारत के दलितों का उद्धार करना उतना ही जरूरी है जितना कि जाति प्रथा की कठोरता को समाप्त करना। तभी भारत का निर्माण एक ठोस आधार पर किया जा सकता है। स्वामी जी ने समाज की नीची जातियों के उत्थान कार्यों में बहुत मनोयोगपूर्वक काम किया। स्वामी दयानन्द जन्म से जाति के विरोधी थे।<sup>6</sup> उनका मानना था कि हर व्यक्ति को अपना कार्य, स्वभाव, गुण और योग्यता के आधार पर मिलना चाहिए। इन आदर्शों को प्राप्त करने के लिए दो तरीके अपनाए गए। (1) जिन जातियों को यज्ञोपवीत धारण का अधिकार नहीं था उन्हें यह अधिकार प्रदान किया गया। (2) अछूतों को स्पर्श बनाया, स्पर्श जातियों के समकक्ष लाकर उन्हें उच्चतर सामाजिक आदर्शों की शिक्षा दी जाने लगी जिसका उद्देश्य अंततः यह था वे अन्य हिंदुओं के साथ बराबरी के स्तर पर आ सकें।<sup>7</sup> वस्तुतः दयानन्द और आर्य समाज का उद्देश्य हिंदू सामाजिक व्यवस्था का प्रजातांत्रिकरण करना था। दयानन्द के विचारों को उनके महान शिष्य लाला लाजपत राय तथा अन्य अनुयायियों ने आगे बढ़ाया। इस तरह आर्य समाज ने जहाँ एक ओर विभिन्न जातियों के हिंदुओं को एक दूसरे के करीब लाया, वहीं उसने हिंदू समाज के अछूत वर्गों को उठाने की कोशिश की। इस प्रयत्न का महत्व इसलिए ज्यादा हो जाता है क्योंकि तब सरकार भी अछूतों तथा दलितों के कार्यों में विशेष रूचि नहीं लेती थी क्योंकि सरकार को भय था कि कहीं सरकार समर्थक उच्च जाति के लोग नाराज न हो जाएँ।

दयानन्द सरस्वती ने स्वदेशी पर बहुत जोर दिया। देश के आर्थिक नवनिर्माण और देश की सामाजिक राजनीतिक एकता के लिए यह आंदोलन चलाना बहुत जरूरी था। दयानन्द की स्वदेशी की कल्पना ने सारे देश को आकृष्ट किया। स्वामी दयानन्द ने भाव, भाषा और वेशभूषा-तीनों स्तरों पर स्वदेश प्रेम का परिचय दिया। वे स्वदेश निर्मित मोटा कपड़ा ही पहनते थे तथा वे व्यवहार एवं स्वरूप के स्तर पर विशुद्ध आर्य संन्यासी थे। उनके अनुयायियों ने स्वदेशी का जगह-जगह प्रचार किया। इस प्रकार स्वतंत्रता की राष्ट्रीय लड़ाई वर्गों तक सीमित न रह कर अब जन संघर्ष में बदल गई। सद्धर्म प्रचारक, आर्य गजट, द पंजाबी, द आर्य मैसंजर आदि पत्रिकाओं ने स्वदेशी की वकालत की तथा भारतीयों से स्वदेशी आंदोलन में सक्रिय भाग लेने की अपील की। उन्होंने गोरक्षा के लिए गौरक्षिणी सभा की स्थापना की, जिसके पीछे आर्थिक उद्देश्य थे। किंतु कुछ वामपंथी इतिहासकारों का मानना है कि इससे सांप्रदायिकता को बढ़ावा मिला। किंतु उनका यह विचार एक पक्षीय लगता है। गौ के प्रश्न पर साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न करने के पीछे मुस्लिम साम्प्रदायिक तत्वों की घृणित और षड्यंत्रकारी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। शेखर बंद्योपाध्याय का भी मानना है कि स्वामी दयानन्द जब तक जीवित रहे तब तक गौरक्षा आन्दोलन का स्वरूप मुस्लिम विरोधी नहीं था।<sup>8</sup>

स्वामी दयानन्द हिन्दी के प्रबल समर्थक थे और उसे राष्ट्र भाषा का दर्जा दिलाना चाहते थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश भी हिन्दी में लिखा और वेदों का भाष्य भी। दयानन्द ने अपनी शिक्षा और प्रवचन भी हिन्दी में दिए। उससे उत्साहित होकर हिन्दुओं की गैर ब्राह्मण जातियों ने एक नए बौद्धिक आत्मविश्वास का अनुभव किया।

सन् 1857 की क्रांति के अनुभव से स्वामी दयानन्द को लगा कि कई देशी रियासतों की भूमिका देशभक्ति से युक्त नहीं थीं। अतः उन्होंने राजपूताने की ओर विशेष ध्यान दिया। इसका सुपरिणाम भी

सामने आया और देशी राज्यों की व्यवस्था में सुधार आने लगा। कई देशी रियासतों के शासक उनके शिष्य थे। ब्रिटिश शासन के लिए यह असह्य हो चला था कि महर्षि दयानन्द राजाओं महाराजाओं में स्वाभिमान जगाने का काम कर रहे थे। उनकी निर्भीकता और अभय के संदेश ने भारतीयों का आत्मबल बढ़ाया तथा उन्हें ब्रिटिश दासता से छुटकारा पाने के लिए व्याकुल कर दिया।

इस प्रकार आर्य समाज आंदोलन ने उत्तर भारत के एक बड़े भाग में सामाजिक एकता, आपसी सहयोग और बहुमुखी जागरण का संदेश दिया। समाज के प्रयत्नों के फलस्वरूप सभी वर्गों के हिन्दू एक दूसरे के करीब आए तथा समाज द्वारा हिन्दी के प्रयोग एवं उसके विकास से वैचारिक एकता को भी बल मिला। वस्तुतः आर्य समाज का ध्येय हिन्दू धर्म के सर्वसमन्वयवादी भावना को पुनर्जागृत करना था।<sup>9</sup> सबसे बढ़कर आर्य समाज ने भारत की प्राचीन उपलब्धियों को प्रकाश में लाया। इससे देशवासियों में भरपूर आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान का भाव उत्पन्न हुआ। इसका भावी राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

यद्यपि दयानन्द का 1883 में निधान हो गया लेकिन कालांतर में उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने राष्ट्रीय आंदोलन में महती भूमिका अदा की। वेलन्टाइन शिरोल का मत था कि भारतीय अशांति वास्तव में हिन्दू अशांति है और इस अशांति को फैलाने में आर्य समाज की प्रबल भूमिका रही है। शिरोल तो आश्वस्त था कि आर्य समाज बाहर से सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन है लेकिन इसका मूल उद्देश्य तो स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करना है।<sup>10</sup>

दयानन्द के सार्वजनिक जीवन के संबंध में दो मत हैं। एक वर्ग उन्हें हिन्दू समाज की एकता का प्रवर्तक मानता है जबकि दूसरा वर्ग उन्हें मुस्लिम और ईसाई विरोधी मानता है। प्रो. बिपन चन्द्र यह तो मानते हैं कि दयानन्द और आर्यसमाज ने राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा दिया, किंतु वो इसके कार्यों को साम्प्रदायिकता के बढ़ने का कारण भी मानते हैं।<sup>11</sup> यह ठीक है कि स्वामी जी वैदिक धर्म की पुनः स्थापना करना चाहते थे। वे जन्म से हिन्दू थे, हिन्दुओं के बीच में रहते थे, एक हिन्दू संन्यासी के शिष्य थे और उनके आर्य समाज को हिन्दुओं ने आर्थिक सहायता दी थी। लेकिन इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि वे मुस्लिमों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों के विरोधी थे। उनका विरोध तो विश्व के धर्मशास्त्रों की उन शिक्षाओं से था जिन्हें वे बुद्धि विरोधी समझते थे। उन्होंने इस्लाम और ईसाई मत की जो बातें मिथ्या थीं केवल उनका विरोध किया, ठीक उसी तरह जिस तरह हिन्दू धर्म का। लार्ड लिटन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार के अवसर पर उन्होंने धर्मों की सभा का आयोजन किया तथा उसमें हिन्दू और मुसलमानों की एकता पर बल दिया। उन्होंने उपदेश दिया कि सभी धर्म अपनी विभिन्न मान्यताओं के साथ जीवित रह सकते हैं। उनकी मृत्यु पर सर सैय्यद अहमद खाँ ने कहा था- “स्वामी दयानन्द के अनुयायी उन्हें देवता-तुल्य जानते थे और वह निस्संदेह इसी योग्य थे। वह इतने विद्वान और अच्छे आदमी थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान के पात्र थे।”<sup>12</sup> वहीं रेवरेण्ड सी.एफ. एण्ड्रूज का मत था- “स्वामी दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निस्संदेह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धांतों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वह सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।”<sup>13</sup> डा. ग्रिसबोल्ड जो लाहौर में रहता था, ने कहा था- “स्वामी दयानन्द ब्राह्मणों के प्रभाव एवं दबाव से वैसे ही मुक्त हो गए थे जैसे चर्च के प्रभाव से लूथर।”<sup>14</sup>

यह सत्य है कि दयानन्द का आदर्श वैसा अखिल भारतीय राष्ट्रवाद नहीं था जैसा हम आज उसे समझते हैं। उन्होंने हिन्दू धर्मशास्त्रों को अपना आधार बनाया और उनका प्रभाव भी हिन्दुओं तक ही

सीमित था। ऐसे उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मुसलमान दयानन्द को शत्रुता की भावना से देखते थे। किंतु इसमें दोष मुस्लिम साम्प्रदायिक दृष्टि का भी कम नहीं है। यह मानना पड़ेगा कि भारतीय राष्ट्रवाद का मुख्य तत्व हिन्दू राष्ट्रवाद ही रहा है जिसे दयानन्द के जीवन तथा शिक्षाओं से गहरी प्रेरणा मिली थी।<sup>15</sup> के.पी. जायसवाल तो दयानन्द का हिन्दू आत्मा को जगाने में वही योगदान मानते हैं जो मार्टिन लूथर का यूरोपीय आत्मा को जगाने में रहा है।<sup>16</sup> वहीं रोमा रोलां ने लिखा है—जब सारा देश सो रहा था तब वे अकेले ही थे जिन्होंने जाग-जाग कर सबकी रक्षा की।<sup>17</sup> राष्ट्रवाद की सदैव यह मांग हुआ करती है कि सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के साहचर्यमूलक बंधन सुदृढ़ हों। इसलिए यह आवश्यक होता है कि व्यक्ति अपने स्थानीय स्वार्थमूलक लगाव तथा पसंद से ऊपर उठना सीखे। अतः यदि मान भी लिया जाये कि दयानन्द हिन्दू एकता के समर्थक थे, तो भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को बल दिया क्योंकि यदि हिन्दू जिनका भारत में भारी बहुमत था, संगठित हो जाते तो वे निश्चय ही ब्रिटिश राजनीतिक शक्ति को चुनौती दे सकते थे।

वस्तुतः दयानन्द के राष्ट्रवाद का स्वरूप आध्यात्मिक था। यह राष्ट्रवाद आधुनिक राष्ट्रवाद से भिन्न है। आधुनिक राष्ट्रवाद मुख्यतः भौतिकवाद, जड़वाद और धर्मनिरपेक्षतावाद पर आधारित है। यह राष्ट्रवाद अधिनायकवाद, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, प्रजातिवाद, शोषण आदि दोषों से ग्रसित पाया जाता है। दयानन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद मानव मात्र की स्वतंत्रता पर अवलम्बित है। यह घोषणा करता है कि जन्म, जाति या नस्ल से कोई ऊँचा या नीचा नहीं होता। मनुष्य की श्रेष्ठता, अश्रेष्ठता के आधार, गुण, कर्म और स्वभाव होते हैं। इटली और जर्मनी में जो राष्ट्रवाद का विकृत रूप देखने को मिला उसमें अंशतः अविवेकवाद और भावनावाद की प्रधानता थी। किंतु दयानन्द ने वैदिक साहित्य के आधार पर जिस आध्यात्मिक राष्ट्रवाद और समाज का चित्रण किया है, वह जड़वाद के स्थान पर आत्मवाद को, मानव असमानता के स्थान पर मानव समानता को और निरे अविवेकवाद के स्थान पर बुद्धिवाद और भावनावाद के समन्वय को प्रश्रय देता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द भारतीय राष्ट्र के महान निर्माता थे और उनका आधुनिक भारत के एक महान निर्माता के रूप में सदैव सम्मान किया जाएगा। भारतवर्ष के पुनरूत्थान काल में महर्षि का योगदान धर्म, समाजसुधार, राष्ट्रवाद तथा शिक्षा के क्षेत्र में असाधारण था। वस्तुतः उन्होंने आगे आने वाली सभी सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारों तथा स्वाधीनता संग्राम की पूर्व तैयारी प्रदान की। विशेषतः उस समय जब भारतीय अपनी समस्त विरासत तथा स्वयं को हीनता की दृष्टि से देखने लगे थे। उनके पुनरुद्भववाद को कभी-कभी प्रतिक्रियावादी कह दिया जाता है किंतु यह मात्र हठधर्मिता और अल्पबुद्धिवाद है। उनके वेदवाद ने देश को शक्ति, कर्मठता, साहस और अभय प्रदान किया। उन्होंने हिन्दू धर्म को विवेक, स्वतंत्रता, आधुनिकता और लोकतंत्र के पाँवों पर खड़ा कर दिया जिससे हिन्दू एकता के आंदोलन को भारी बल मिला। किंतु उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि भारत में बसने वाले अन्य संप्रदायों के हितों का विरोध करके हिन्दुओं की एकता को सुदृढ़ किया जाये। दयानन्द आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के वाहक हैं जो कि आत्मिक चैतन्य से दीक्षित हैं। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद कारी भावना, संकल्प, अविवेक, नेता के नेतृत्व एवं स्वराष्ट्र की सर्वोपरिता पर आधारित नहीं है। इसमें बुद्धिवाद तथा मानवतावाद का समन्वय पाया जाता है। यह उच्चतम आदर्शों से ओत-प्रोत है।

## संदर्भ सूची:

1. प्रधान, रामचंद्र, राज टू स्वराज, मैकमिलन, गुडगाँव, 2013, पृष्ठ 64
2. ग्रोवर, बी.एल., मेहता, अलका, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास: एक नवीन मूल्यांकन, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली 2011, पृष्ठ 276
3. वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2007, पृष्ठ 114
4. सरस्वती, दयानंद, सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समुल्लास, श्री घूडमल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान, 2012, पृष्ठ 116-145
5. देसाई, ए.आर. सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, मुम्बई, 2014, पृष्ठ 273
6. राय, लाला लाजपत, आर्य समाज, विजय कुमार गोविन्दराम हासाराम प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 153
7. राय, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 162-163
8. बंधोपाध्याय, शेखर, फ्रॉम प्लासी टू पार्टीशन: ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया, ओरियण्ट ब्लैकस्वॉन, दिल्ली, 2014, पृष्ठ 241
9. चोपड़ा, पी.एन., पुरी, बी.एन., दास, एम.एन, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, खण्ड 3, मैकमिलन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 118
10. कमल, के.एल., भारतीय राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृष्ठ 144
11. चंद्र, बिपन, हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया, ओरियण्ट ब्लैकस्वॉन, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 225
12. विद्यावाचस्पति, इन्द्र, महर्षि दयानंद, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद प्रकाशन, दिल्ली 2013, पृष्ठ 192
13. वही, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 193
14. गौतम, पी.एल., आधुनिक भारत का इतिहास, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2004 पृष्ठ 169
15. वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 127
16. वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 127
17. कमल, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 145

# उत्तराखण्ड के शिक्षा के विकास में मिशनरियों का योगदान

सोहन महतो

इतिहास विभाग, गया कॉलेज, गया

औपनिवेशिक शासन की स्थापना के साथ ही कुमाऊँ की धार्मिक व्यवस्था को ईसाईयत से चुनौती मिलना स्वभाविक था क्योंकि सरकार का परोक्ष छूट ईसाई धर्म को प्राप्त था, यद्यपि कुमाऊँ से जुड़े हुए हिमालय के प्रति (मुख्यतः तिब्बत के प्रति) आकर्षण अंग्रेजों के भारत आगमन के साथ ही प्रारम्भ हो चुका था। 1624 ई० में सर्वप्रथम अन्तोनियो दे आन्द्रादे ने श्रीनगर-गढ़वाल से होकर तिब्बत की यात्रा की थी। पुनः 1625 में उसने तिब्बत यात्रा की तथा छपराड़ में गिरजाघर बनाया। सत्रहवीं सदी में ईसाई पादरियों का भ्रम था कि तिब्बत के गोरी चमड़ी वाले निवासी ईसाई के अनुयायी हैं, पर धर्म के प्रचारकों से सम्बन्ध न रहने से ईसाई मत के कुछ सिद्धान्तों को भूल चुके थे। 1936 ई में डी० पेरिस व दौस अंजोस नाम दो पादरी श्रीनगर के प्रचार केन्द्र में भेजे गये। दौस अंजोस की मृत्यु हो जाने पर 1637 में पादरी मोपलिक को श्रीनगर भेजा गया था। 1657 से जैसुइट पादरियों ने श्रीनगर में निवास बन्द कर दिया। इसके लगभग आगामी 200 वर्षों तक सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में ईसाई धर्म प्रचारकों की गतिविधियां ठप्प सी हो गईं।

1815 ई० में कुमाऊँ अधिकार के पश्चात् प्रारम्भ में अंग्रेजों ने स्थानीय धर्मरिति-रिवाजों में हस्तक्षेप नहीं किया और 1824 में बिशप हैबर ने इस क्षेत्र की यात्रा की और ईसाईयों को यहाँ से टारटरी तक फैलाने का सपना देखा,<sup>2</sup> लेकिन मिशनरी का सक्रिय कार्यक्रम 1850 के बाद हुआ। इस बीच मिशनरी सोसाइटी का पादरी खैरैण्ड बडन अल्मोड़ा पहुँचा तथा यहाँ पर लंदन मिशनरी सोसाइटी की स्थापना की। कुमाऊँ कमिश्नर रैमजे तथा उसके मित्रों ने बडन को सब प्रकार से सहायता देने का वचन दिया।<sup>3</sup> बडन द्वारा कुमाऊँ (अल्मोड़े) में स्कूल खोला गया जो कि आज “रामजै स्कूल” के नाम से विख्यात है, यह स्कूल कुमाऊँ का प्रथम स्कूल था।<sup>4</sup> इस स्कूल के अलावा एक लड़कियों का स्कूल, अस्पताल, एक अनाथालय, एक पुस्तकालय की स्थापना की गई। मिशन के इन कार्यों ने निर्धन तथा निम्न वर्ग के परिवारों को तेजी से प्रभावित किया, किन्तु बडन के द्वारा कुमाऊँ में ईसाई धर्म का प्रचार अधिक सरल कार्य न था, क्योंकि गो मांस का भक्षण करने वाले ईसाई धर्म के प्रति कुमाऊँ वासियों का आकर्षण होना इतना सरल नहीं था फिर भी बडन के प्रयासों से ईसाई धर्म प्रचारकों ने नैनीतान और अल्मोड़ा में प्रचार कार्य तत्परता से किया। साथ ही ब्रिटिश शासन के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि उनको अपने साम्राज्य का विस्तार तथा स्थायित्व में ईसाई मिशनरियों के रूप में एक आक्रमक सहयोगी मिला। जिसने मानवतावादी गतिविधियों और धर्मांतरण को कोशिशों द्वारा निम्न जातीय, निम्न वर्गीय परिवारों में ब्रिटिश सत्ता के प्रति समर्थन को व्यापक रूप दिया।<sup>5</sup> देखा जाय तो 1850 के बाद से ही यहाँ पर प्रभावी होते जा रहे ईसाई मिशनरियों ने मानवतावादी गतिविधियों विशेषतः शिक्षा सुविधाओं तथा स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार व निम्न वर्गों को उन्नत करने के बहाने से ईसाई मत का प्रचार किया। उनका उद्देश्य न केवल अधिकाधिक लोगों को ईसाई धर्म में रूपांतरित करना था, वरन् ब्रिटिश सत्ता के प्रति स्थानीय जनमत में निष्ठा व समर्थन को भी बढ़ाना था, औपनिवेशिक शासकों के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग और समर्थन से न केवल

उन्हें अपनी गतिविधियों के विस्तार में मजबूती मिली बल्कि साथ ही उन्होंने इसे एक आन्दोलन का रूप दे दिया। विशेषकर शिक्षण सुविधाओं व गतिविधियों में उनकी सक्रिय निष्ठा ने उनकी लोकप्रियता को उच्च जातियों में भी बढ़ा दिया। जिन्होंने अपनी आरम्भिक हिचकिचाहट के बाद मिशन स्कूलों से शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ कर दिया।<sup>6</sup> अतः इस बीच उभरने वाले स्थानीय अफसर, राजनीतिज्ञ, कवि, पत्रकार, साहित्यकार आदि की शिक्षा मिशन स्कूलों से होना इस बात की ओर इशारा करता है कि मिशनरियां शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक व लोकप्रिय होती जा रही हैं।<sup>7</sup>

अब धीरे-धीरे पाश्चात्यकरण, बाह्यणवादी, कर्मकाण्डों तथा जातिगत भेदभाव से ऊबकर मिशनरियों द्वारा सरल, समतायुक्त, सामाजिक सेवा के रूप में ईसाई धर्म से प्रभावित होकर 19 वीं सदी के अन्त तक उच्च वर्ण के पाण्डे, पन्त, जोशी, सनवाल व रावत भी ईसाई बनने लगे।<sup>8</sup> मगर मिशनरियों का सबसे अधिक प्रभाव निम्न जातियों पर पड़ा, उसका कारण व्यापक गरीबी, अशिक्षा तथा निम्न वर्ग के प्रति उच्च वर्ग द्वारा भेदभाव व शोषण की नीति।

उक्त बातों ने एक प्रकार से मिशनरियों के लिए उर्वर वातावरण तैयार कर दिया था और 19वीं सदी के अन्त तक मिशनरियों को निम्न जातियों के धर्मांतरण में बहुत सफलता मिली। 1881 में यहाँ के तत्कालीन चार जिलों अल्मोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल और कुमाऊँ में ईसाई धर्म को मानने वालों की संख्या 4671 थी और 1881 व 1911 में उक्त चार जिलों की कुल जनसंख्या क्रमशः 1190130 व 153865 थी।<sup>9</sup> जबकि चौका देने वाली बात यह थी कि केवल अल्मोड़ा जिले में यह संख्या- 2393 थी<sup>10</sup> और यह बढ़कर 1911 में 2581 हो गई।<sup>11</sup> इन चार जिलों में 1881 से 1911 तक कुल जनसंख्या क्रमशः 1190130 व 1533865 थी, तथा टिहरी रियासत की 199836 और 300819 थी।<sup>12</sup> बट्टीदत्त पाण्डे लिखते हैं कि धर्म परिवर्तन का यह सिलसिला पिथौरागढ़ में 1884-85 के आस-पास से प्रारम्भ हुआ। उसके बाद चौदास, जोहार तथा धारचूला में तीव्र गति से आगे को फैलता चला गया।<sup>13</sup> इसके साथ ही डंगोली, द्वाराहाट व बेरीनाग में चर्च की स्थापना हुई।<sup>14</sup> मिशनरियां लोगों को बराबर अपनी ओर आकर्षित कर रही थी, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण अस्कोट के पुष्कर रजवार ने अपनी बिमारी के उपचार करने के प्रतिफल के रूप में मि० मार्या को चर्च हेतु जमीन दी।<sup>15</sup>

अन्ततः यह सत्य है कि ईसाई मिशनरियों ने समाज में अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए समाज सेवा का कार्यक्रम चलाया। जिसमें स्त्री शिक्षा के विस्तार पर विशेष बल दिया और उनके द्वारा नैनीताल में तीन कन्या पाठशालाएं खोली, जिनमें दो अमेरिकन मिशन के प्रबन्ध में थी और एक सरकारी स्टेट के खर्चे से चलती थी।<sup>16</sup> इसके अलावा मिशनरियों द्वारा महिलाओं के लिए अस्पताल, अनाथाश्रम, आवासगृह तथा डिस्पेंसरी की स्थापना का प्रयास किया जा रहा था।<sup>17</sup> अतः स्वाभाविक ही स्त्रियों के लिए शिक्षण संस्थाओं का खोला जाना और उनका विस्तार उनकी संगठनात्मक गतिविधियों का महत्वपूर्ण अंग बना, यद्यपि मिशनरियों का वास्तविक उद्देश्य मानवतावादी गतिविधियों के रूप में शिक्षणात्मक गतिविधियों के विस्तार के माध्यम से अधिकाधिक स्थानीय जनता को ईसाई धर्म की ओर आकर्षित कर उनका धर्मांतरण करना था।

स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु उनके प्रयासों व रुचि ने समाज में स्त्री शिक्षा के प्रति स्थायी निषेध आत्मक नकारात्मक दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में मदद की। जहाँ तक शिक्षा के क्षेत्र में उनका अधिक ध्यान देना था। वह आकस्मिक नहीं वरन् सोची समझी रणनीति का ही एक अंग था। केवल धर्मांतरण करना किंतु लोगों को शिक्षित न करना मिशनरियों की दृष्टि में परस्पर विरोधी सत्य थे। उनका यह स्पष्ट दृष्टिकोण था कि केवल धर्मांतरण करना न केवल व्यर्थ बल्कि खतरनाक भी है।

अतः मिशनरी कार्यों की सफलता के लिए लोगों को शिक्षित किया जाना जरूरी है।<sup>18</sup> उक्त बातों को देखते हुए मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य ईसाई धर्म की शिक्षाओं के प्रचार के लिए शिक्षा और शिक्षण संस्थाओं को बढ़ावा देना अति आवश्यक था क्योंकि गैर ईसाईयों के जीवन को ईसाईयत के सिद्धान्तों के माध्यम से प्रभावित किया जा सके।<sup>19</sup> मिशनरी ने केवल यूरोप में विकसित शिक्षण की सार्वजनिक संस्थाओं से पूर्णतया परिचित थे बल्कि उसके लाभदायक परिणामों को भी अनुभूत करते थे। उनका यह निश्चित विश्वास था कि ब्रिटिश शासन के नैतिक आधार के विस्तार, सुदृढीकरण व जनता में उसकी लोकप्रियता के लिए जितनी जरूरी थी पुरुषों की शिक्षण व्यवस्था उससे कम जरूरी नहीं था। स्त्री शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों का परिवार में केन्द्रीय महत्वपूर्ण भूमिका के चलते मिशनरियों द्वारा धर्मांतरण को स्थायी और सफल बनाने के लिए स्त्रियों को शिक्षित करने पर बल देना तथा उन्हें प्रभावित करना नितान्त स्वाभाविक ही था।

मिशनरियों में स्त्री शिक्षा हेतु अपने प्रयासों को संगठित रूप दिया “जनाना व्यवस्था” व सार्वजनिक विद्यालयों की स्थापना के माध्यम से, स्त्री-पुरुष के सह-शिक्षण की व्यवस्था के प्रति समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण ने मिशनरियों को स्त्रियों हेतु पृथक स्कूल विद्यालयों को स्थापना हेतु प्रेरित किया।<sup>20</sup> ब्रिटिश प्रशासकों का समर्थन मिशनरियों को न केवल प्राप्त ही था। अपितु उन्हें विदेशों से प्राप्त हो रही आर्थिक सहायता भी इस कार्य हेतु आर्थिक मजबूती प्रदान करती थी। मिशनरी संगठनों ने महिला प्रचारकों (मिशनरी) के माध्यम से ताकि उन्हें भारतीय स्त्रियों का विश्वास हासिल करने में सुविधा हो। स्त्री शिक्षा हेतु “जनाना व्यवस्था” के माध्यम से ‘परिवार’ में हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त कर लिया था।

राष्ट्रीय स्तर पर 1840 में महिला मिशनरियों का आगमन हुआ, जिन्हें महिलाओं और मध्य कार्य करने का दायित्व सौंपा गया था। उन्होंने स्वयं को वयस्क विवाहिता महिलाओं को ईसाई धर्म में धर्मांतरित करने के उद्देश्य के प्रति समर्पित कर दिया। इन महिला ईसाई प्रचारकों को शिक्षक के रूप में घरों में प्रवेश की सुविधा हासिल हो जाती थी। जहाँ वे महिलाओं को कहानियों के माध्यम से शिक्षा देती थी, इसके अलावा उन्हें कढ़ाई-बुनाई-सिलाई का शिक्षण प्रशिक्षण देती थी और घर के सदस्यों को ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने का भी भरपूर प्रयास करती थी। उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता बहुत ही कम मिलती थी। लेकिन उन्होंने अपना उत्साह न छोड़ा बल्कि अपनी भारतीय शिष्याओं और ईसाई परिवार की भारतीय महिलाओं को कन्याओं के विद्यालय में अध्यापिका के रूप में नियुक्ति दे दी गई।<sup>21</sup> इन मिशनरियों ने लड़कियों की शिक्षा हेतु अलग विद्यालयों की स्थापना की, जिससे प्राइमरी तथा मिडिल स्तर की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। अतः यहाँ पर मिशनरियों ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की, माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य मिशनरी विद्यालयों द्वारा किया गया जो इस प्रकार है- सर्वप्रथम 1845 में “जीसस एण्ड मैरी कान्वेंट स्कूल” की स्थापना हुई,<sup>22</sup> साथ ही 1854 में लंदन सोसाइटी द्वारा मसूरी में “बुडस्टाक हाई-स्कूल” की स्थापना की गयी।<sup>23</sup> 1859 में “यू०जी०एन०आई० गल्स इण्टरमीडिएट कॉलेज” की स्थापना देहरादून में प्राइमरी स्कूल के रूप में हुई। तत्पश्चात् 1870 में इसे मिडिल स्कूल तथा 1890 में हाईस्कूल की मान्यता मिली। 1858 में इण्टरमीडिएट स्कूल बना दिया गया। 1864 में मिशनरी आर्क देक प्रेट द्वारा कन्याओं की शिक्षा हेतु मसूरी में “कैनेविले हाउस स्कूल” खोला गया।<sup>24</sup> 1867 में ब्राडबुरी द्वारा नैनीताल में “डायोसिसन स्कूल” की स्थापना की गयी जो कि प्रारम्भ में कन्या और बालकों का साथ-साथ स्कूल था। 1874 में पृथक विद्यालय के रूप में लड़कियों के लिए “आलसेंट डायोसिसन गल्स कॉलेज” की स्थापना स्टोनले कम्पाउण्ड में की गयी, जिससे कन्याओं की संख्या 1874 तक 85 हो गयी थी।<sup>25</sup>

1878 में मदर सैलेसिया द्वारा नैनीताल में “सेंट मेरी कान्वेंट स्कूल” की स्थापना हुई, जिसमें उस वक्त 40 छात्राएँ पढ़ाई कर रही थीं और 1928 तक इनकी संख्या बढ़कर 200 हो गई।<sup>26</sup> शिक्षा को मजबूती देने के लिए कमिश्नर रैम्जे के प्रयासों से श्रीमती ब्राडबुरी के निर्देशन में मैथोडिस्ट मिशन सोसाइटी द्वारा 1869 में कुमाऊँ में छात्र-छात्राओं के लिए एह सह-शिक्षण विद्यालय की स्थापना की। 1870 में अमेरिकन मिशन द्वारा एक अतिरिक्त छात्राओं का विद्यालय खोला गया, जिसमें छात्राओं की संख्या लगभग 20 थी।<sup>27</sup> 1869-70 में मिशनरी श्रीमती मानसेल ने चौपड़ा में एक बालिका विद्यालय की स्थापना की, जिसमें मुख्य रूप से अनाथ बालिकाओं को लिया गया।

कुछ समय पश्चात् अन्य बालिकाओं के लिए “बालिका छात्रावास” की स्थापना की गई।<sup>28</sup> 1873 में डब्ल्यू.एन. ट्राइब के डिजायन पर अल्मोड़ा में एक कन्या स्कूल खोला गया।<sup>29</sup> इसी वर्ष 1873 में लाडूर क्षेत्र (देहरादून) में यूरोशियन लड़कियों के लिए “वुडस्टाक कॉलेज” की स्थापना हाईस्कूल के रूप में की गयी, जिसे कालान्तर में कॉलेज के रूप में परिवर्तित कर दिया।<sup>30</sup> इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध कर दिया, 1884 में अमेरिकन मैथोडिस्ट मिशन ने मिस इंक. नोअलस के निर्देशन में मिशनरी और यूरोपीय परिवारों के बच्चों के लिए नैनीताल में “वेलेजली गर्ल्स हाईस्कूल” की स्थापना की<sup>31</sup> और अंग्रेज कमिश्नर हेनरी रैम्जे के प्रश्रय में ईसाई बडन ने सर्वप्रथम अल्मोड़ा में एक कन्या पाठशाला का शुभारम्भ किया।<sup>32</sup> “

ओकग्रोप स्कूल” 1896 में झाड़ी पानी में लड़कियों के शिक्षा हेतु स्थापित किया गया था, यह स्कूल वस्तुतः ईस्ट इण्डिया रेलवे कम्पनी ने 1888 में यूरोपीय कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा के उद्देश्य से स्थापित किये गये स्कूल का विस्तार था, जिसमें छात्रों की संख्या बढ़ने के कारण कन्याओं के लिए अलग से स्कूल खोलने की प्रेरणा प्राप्त हुई और 1950 में इस स्कूल में 150 कन्याएँ पढ़ने लगी।<sup>33</sup> इसी वर्ष 1896 के आसपास गडोली में अमेरिकन मैथोडिस्ट मिशन ने लड़कों व लड़कियों के लिए एक साथ स्कूल की व्यवस्था की, जब 1899 में इनसाइन गिल इस स्कूल का प्रबन्धक बनने के बाद से इसमें ईसाई लड़कियाँ ही प्रवेश पाने लगी, साथ ही लड़कियों के लिए छात्रावास की व्यवस्था भी की गयी। मिस गिल के प्रयासों से 1903 में इस स्कूल को मिडिल स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया परिणाम स्वरूप स्कूल का नाम “मेरी इनसाइन गिन गर्ल्स स्कूल” रखा गया। इस कन्या स्कूल से 1905 में प्रथम बार लड़कियों ने मिडिल परीक्षा दी और लड़कियों को अध्यापिकाओं या दाईयों के रूप में प्रशिक्षण के लिए भेजा जाने लगा।<sup>34</sup>

चूँकि दलित व निर्धन वर्ग हेतु शिक्षा सुविधाओं का विशेष अभाव था। अतः उनके लिए विद्यालयों की स्थापना के अतिरिक्त मिशनरियों द्वारा स्त्री शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण उत्तराखण्ड में हिल स्टेशनों, सैन्य छावनियों व ब्रिटिश प्रशासनिक व आर्थिक गतिविधियों के विस्तार के फलस्वरूप बढ़ी संख्या में यूरोपीय तथा यूरोशियन जनसंख्या की उपस्थिति भी थी जिसकी उचित व कुशल शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता ने न केवल मिशनरी शिक्षण गतिविधियों को प्रोत्साहित किया बल्कि उसे लोकप्रिय विस्तार भी दिया, 1904 में यूरोपियन तथा यूरोशियन जनसंख्या के लिए नैनीताल व मसूरी जिलों में 21 मिशनरी शिक्षण संस्थाएँ कार्यरत थी। जिनमें लगभग 2100 छात्र अध्ययनरत थे।<sup>35</sup>

सेंसस ऑफ इण्डिया 1931, पार्ट-1 रिपोर्ट ऐसे शहरी क्षेत्रों में जो सैन्य छावनियों व हिल स्टेशनों के रूप में विकास की ओर बढ़ा, में यूरोपीय व यूरोशियन जनसंख्या बढ़ा हुआ प्रतिशत स्पष्ट करता है।<sup>36</sup>

	कुल जनसंख्या				यूरोपियन व एंग्लो-इंडियन जनसंख्या				
	कुल (1)	पुरुष (2)	स्त्री (3)	स्त्रियों का प्रतिशत (4)	कुल (5)	पुरुष (6)	स्त्री (7)	स्त्रियों का प्रतिशत (8)	स्त्रियों का प्रतिशत कुल महिला जनसंख्या के सन्दर्भ में (9)
नैनीताल नगरपालिका	17375	12167	5208	30:	1996	1047	949	48:	18:
मंसूरी नगरपालिका	17115	12362	4753	28:	3484	1706	1778	51:	37:
रानीखेत सैन्य छावनी क्षेत्र	9489	7246	2243	24:	3182	2578	604	19:	27:
चकराता सैन्य छावनी क्षेत्र	5935	4918	1017	17:	2101	1871	230	11:	23:
लंदूर सैन्य छावनी क्षेत्र	2878	2071	807	28:	310	142	168	54:	21:

इन मिशनरियों के प्रभाव से ही उत्तराखण्ड में 1920 के आस-पास महिलाओं की शिक्षा घर-घर में चर्चा का विषय बन गया। वस्तुतः उत्तराखण्ड में यह वह समय था जब राष्ट्रीय आन्दोलन की हलचलें होने लगी थी, यह भी उत्तराखण्ड के लिए सौभाग्य की बात थी कि यहाँ पर सामाजिक सुधारों और राजनैतिक चेतना के कारण महिला शिक्षा को सामाजिक समर्थन मिलना भी प्रारम्भ हो गया था और लोग समझने लगे थे कि शिक्षा वह वस्तु है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है, यह तो सभी कहते हैं कि शिक्षित आदमी की तीन आँखें होती हैं यह तीसरी आँख बुद्धि है जो शिक्षा से खुलती है।<sup>37</sup> 1913 में कन्या मिशन, पौड़ी के बेहतरिनी परीक्षा परिणामों की प्रशंसा करते हुए “गढ़वाली” पत्र ने लिखा कि इससे हमें यही ज्ञात होता है कि गढ़वाली लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ चतुर होती हैं और बुद्धिमान होती हैं परन्तु शोक इस बात का है कि हमारे यहाँ के लोगों का ध्यान अभी स्त्री शिक्षा की ओर प्रायः नहीं गया है।<sup>38</sup> उसी क्रम में गढ़वाली यह भी लिखता है कि जैसे मकान की बुनियाद उसके मजबूती के लिए है उसी प्रकार समाजोन्नति के लिए विद्या है। सुतरां मान्यवर समाज सुधारकों के लिए आवश्यक है कि पहले अपने समाज में विद्या के बीज बोये,<sup>39</sup> धीरे-धीरे अब मिशनरियों द्वारा महिलाओं के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों पर कुमाऊँनी जनता का ध्यान जाने लगा उन्हें महसूस भी होने लगा कि महिलाओं की शिक्षा न केवल सामाजिक संगठन की प्रमुख इकाई के रूप में “परिवार” को और मजबूत करेगी बल्कि भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परम्परा को भी सशक्त करेगी।

स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरियों के प्रयासों की व्यापकता व महत्ता का स्पष्टीकरण इस तथ्य से आसानी से होता है कि उत्तराखण्ड आजादी के पहले विशेषतः 1911 तक स्त्री शिक्षा के प्रसार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान मिशनरियों का था। देहरादून जिले में शिक्षा के विस्तार में मिशनरी प्रयासों की महत्ता पर टिप्पणी करते हुए जी०आर०सी० विलियम लिखते हैं कि देहरा मिशन के प्रभाव क्षेत्र के बाहर मेजर यंग के समय से शिक्षा की सामान्य प्रगति अत्यन्त क्षीण रही। जिन्होंने कि अपने निजी व्यय पर गोरखा लाइन में एक स्कूल खोला था, ने अनुभव किया कि वे सैनिकों के बच्चों के अतिरिक्त अन्य किसी को भी विद्यालय में प्रवेश करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकें।<sup>40</sup> उन्होंने आगे लिखा है कि 1874 में देहरादून क्षेत्र के उन निवासियों को छोड़कर जो कि इस क्षेत्र में, कार्यरत मिशनरियों के प्रभाव में थे।

अन्य निवासियों की शिक्षा का स्तर अत्यन्त पिछड़ा हुआ था।<sup>41</sup> बंद्रीदत्त पाण्डे लिखते हैं कि भावर के स्कूलों का प्रबन्ध मिशनरियों के हाथ में था।<sup>42</sup> तथापि मिशनरियों के स्त्री शिक्षा सम्बन्धित प्रयासों की लोकप्रियता विशेषतः यूरोपियन समुदाय और धर्मातिरित ईसाईयों के मध्य तक सीमित रही। नवीन

धर्मान्तरित (ईसाई धर्म में) लोगों की लड़कियों को सम्भवतः उनके भाईयों की तुलना में स्कूल में ज्यादा भेजा जाता था, क्योंकि उन्हें परिवार की आजीविका चलाने वाले सदस्य के रूप में ज्यादा देखा जाता था<sup>43</sup> निम्न जातियों के विपरीत उच्च जातियों के सम्पन्न आभिजात्य वर्ग में मिशनरी स्कूलों को संदिग्ध रूप में देखा जाता था, वे मानते थे कि इनमें उनकी लड़कियों का प्रवेश उन्हें धार्मिक, नैतिक तथा चारित्रिक रूप से भ्रष्ट कर देगा।

अतः मिशनरियों के स्त्री शिक्षा के शिक्षण संस्थाओं व प्रयासों के प्रति वे अधिकांशतः अनिच्छुक व तटस्थ बने रहे। स्त्रियों की शिक्षा हेतु मिशन स्कूलों का विस्तार तथा लोकप्रियता अधिकांशतः शहरी केन्द्रों जहाँ कि यूरोपियन तथा यूरेशियन जनसंख्या अधिकांश केन्द्रित थी, तक ही सीमित रही तथापि मिशनरियों ने स्थानीय समाज में स्त्री शिक्षा को एक लाकेप्रियता विचार के रूप में प्रभावशाली तरीके से विकसित होने में सर्वाधिक मदद की।<sup>44</sup> उक्त तमाम बातों को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि मिशनरियों द्वारा स्त्रियों की शिक्षा के लिए किये गये संगठित प्रयासों तथा गतिविधियों ने समाज के विशेष सर्वण वर्ग के स्त्री शिक्षा के प्रति विशेषात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तित को प्रेरित किया और यह भी सच है कि आजादी से पहले विशेषतः 1911 तक स्त्री शिक्षा के प्रसार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान मिशनरियों का था।

## सन्दर्भ सूची

1. मुनौला, मनोहर सिंह: ब्रिटिश कुमाऊँ का सामाजिक इतिहास 1815-1947 शोध प्रबन्ध: कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल: नवम्बर 1989 : पृष्ठ- 293।
2. हैबर, डी० डी० रेनीगाल्ड: नैरेटिव ऑफ ए जर्नी थ्रेंद अपर प्रोविन्सेज ऑफ इण्डिया: लन्दन: 1828: पृष्ठ- 324-25।
3. कैनेडी जेम्स: लाइफ एण्ड वर्क्स इन बनारस एण्ड कुमाऊँ: लन्दन: 1884: पृष्ठ- 252।
4. कैनेडी जेम्स: उक्त।
5. भट्ट, जया: बीसवीं शताब्दी के दौरान ब्रिटिश शासन का उत्तराखण्ड के समाज पर प्रभाव (स्त्रियों के विशेष सन्दर्भ में एक सामाजिक अध्ययन) 2008: शोधा प्रबन्ध: कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल: पृष्ठ- 184।
6. उक्त: पृष्ठ- 184।
7. पाठक, शेखर: उत्तराखण्ड में सामाजिक आन्दोलनों की रुपरेखा: पहाड़ अंक-2: 1986, पृष्ठ- 98-99।
8. उक्त: पृष्ठ- 106।
9. डबराल, शिवप्रसाद: उत्तराखण्ड का इतिहास: भाग- 8: बीरगाथा प्रकाशन दो-गडडा गढ़वाल: 1965-78 : पृष्ठ- 150।
10. सैसस आफ इण्डिया: 1881: पृष्ठ- 2-5।
11. सैसस: 1911: पृष्ठ- 788-97।
12. सैसस: 1911: पृष्ठ- 6-7।
13. पाण्डे, बद्रीदत्त: कुमाऊँ का इतिहास: प्रेम कुटीर अल्मोड़ा-1937: पृष्ठ- 454-455।
14. भट्ट, जया: पृष्ठ- 185।
15. स्वाधीन प्रजा (हिन्दी समाचार पत्र): 13 मई, 1931: पृष्ठ- 6।
16. पाण्डे, बद्रीदत्त: पृष्ठ- 90।
17. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ दि यूनाइटेड प्राविंस ऑफ आगरा एण्ड अवध, सैक्शन-11, वा० XXXV, अल्मोड़ा डिस्ट्रिक्ट: पृष्ठ- 22-23।
18. भट्ट, जया: पृष्ठ- 374।
19. विलियम, जी०आर०सी०: हिस्टारिकल एण्ड स्टेटिसरिकल मेयायर ऑफ देहरादून: रूडकी- 1874: पृष्ठ- 34।
20. भट्ट, जया: पृष्ठ- 375।

21. उक्तः पृष्ठ- 375।
22. वाल्टन, एच०जी०: डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ दि यूनाइटेड प्राविंस, देहरादून: वाल्यूम-1: पृष्ठ- 159।
23. उक्त।
24. पाण्डे, बद्रिदत्तः पृष्ठ- 39।
25. उत्तर-प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, देहरादून- 1978: पृष्ठ- 201।
26. उक्त।
27. क्ले, जे०एन०: नैनीताल : ए हिस्टोरिकल एण्ड डिसक्रिप्टिव आकाउण्ट: पृष्ठ- 49-50।
28. वाल्टन, एच०सी०: अल्मोड़ा गजेटियर- इलाहाबाद, 1928: पृष्ठ- 49-50।
29. डबराल, जिवप्रसाद: उत्तराखण्ड का इतिहास: भाग- 8 : पृष्ठ- 151।
30. वाल्टन, एच०जी०: पृष्ठ- 156।
31. उक्तः पृष्ठ- 156।
32. पाण्डे, बद्रिदत्तः पृष्ठ- 39।
33. शर्मा, डी०डी०: उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं राजनैतिक इतिहास: 2001, वाल्यूम-1, अल्मोड़ा: पृष्ठ- 210।
34. वाल्टन, एच०जी०: पृष्ठ- 157-58।
35. भट्ट, जया: पृष्ठ- 376।
36. सैसस ऑफ इण्डिया: 1931: रिपोर्ट: पृष्ठ- 146-47।
37. गढ़वाली: हिन्दी समाचार पत्र: अगस्त 1907 भाग-3: पृष्ठ- 5।
38. गढ़वाली: जून 1913 भाग-3: पृष्ठ- 83।
39. गढ़वाली: अप्रैल 1908 भाग-3, अंक 12: पृष्ठ- 26।
40. भट्ट, जया: पृष्ठ- 318।
41. उत्तर-प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, देहरादून-1979: पृष्ठ- 271।
42. पाण्डे, बद्रिदत्तः पृष्ठ- 487।
43. भट्ट, जया: पृष्ठ- 381।
44. उक्त।

# बिहार के मुसलमानों का खिलाफत आंदोलन में भूमिका

डॉ० शिप्रा आनन्द

इतिहास विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

खिलाफत आंदोलन सर्व इस्लामवाद का प्रतिफल है। खिलाफत शब्द खलीफा का पदबोधक होने के साथ मुसलमानों के लिए सर्वोच्च सांसारिक सत्ता है। जिसका महत्त्व संपूर्ण मुसलमानों के एक साम्राज्य एक कानून, एक किताब, एक पैगम्बर और एक खुदा के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन समय और संसार की परिवर्तनकारी विचारों और वेशभूषा ने सांस्कृतिक संचरण को आगे बढ़ाया और एक साम्राज्य की अवधारणा खण्डित हो गई। मध्यकाल में मुस्लिम साम्राज्य तीन भागों में बँट गया—मिश्र में फातमी, स्पेन में अब्बासी और बगदाद में उमैया वंश। मंगोलों के शक्तिशाली होने और 1256 ई० में कुस्तुनतुनिया पर आक्रमण करने के साथ ही पूरा इस्लामी साम्राज्य की शक्ति दायम दर्जे की हो गई थी। मुबारक खिल्जी भी भारतीय सल्तनत में स्वयं को खलीफा कहने लगा था। खलीफा की प्रतिष्ठा पूर्व काल की तरह नहीं रही। फिर भी आम भारतीय मुसलमानों में खिलाफ के प्रति श्रद्धा-भाव बरकरार था। यही कारण है कि प्रथम विश्वयुद्ध में विभाजित विश्व के दो भागों— धूरी राष्ट्र और मिश्र राष्ट्र के संघर्ष में तुर्की की पराजय धूरी राष्ट्रों के साथ ही हो जाने से मुसलमान चिंतित हो गये थे। सेब्र की संधि से पूर्व अंग्रेजों द्वारा किये गये वायदे मुसलमानों में खलीफा के प्रति चिंता को परिलक्षित करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं में मुसलमान मुकदर्शक होकर मुसलमानों के प्रति किया गया अन्याय को सहन बहुत दिनों तक नहीं कर सकते थे। इससे अंग्रेजों के खिलाफ नफरत पनपने लगा था। इन घटनाओं में 1911 में इटली द्वारा तराबलरा पर आक्रमण और ब्रिटिश सरकार तुर्की सेना का मिश्र के रास्ते तराबलरा जाने पर रोक शामिल है। इस घटना में भारतीय मुसलमानों में रोष पैदा कर दिया था। दूसरी बड़ी घटना दिसम्बर 1911 में सरकार ने बंगाल विभाजन को रद्द कर दिया। इन दुहरी मार ने मुसलमानों को उत्तेजित कर दिया। जिस पर टिप्पणी करते हुए नवाब वकारूल मुल्क को यह लिखने पर विवश होना पड़ा कि—सरकार की यह घोषणा ऐसे तोपखाने की तरह थी जो मुसलमानों की मुर्दा लाशों के ऊपर से गुजर गया। बिना यह सोचे समझे कि इन मुर्दा लाशों में से किसी में जान भी है और उनको इससे कष्ट होगा। इसी दौरान मुस्लिम विश्वविद्यालय के सवाल पर भी मुसलमानों में बड़ी बेचैनी पैदा हुई। विश्वविद्यालय की स्वीकृति के लिए सकार ने जो शर्तें रखी थीं। मुस्लिम नेता उससे सहमत नहीं थे। अभी तराबलस का विवाद सुलझा नहीं था कि अक्टूबर 1912 ई० में यूरोप की बड़ी शक्तियों की शह पर बलकान के राज्यों ने तुर्कों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दिया। मुस्लिम नेताओं ने तुर्की का साथ देने का संकल्प लिया। एक दल ने मोर्चे पर जाकर बड़ी बहादुरी के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह किया। इससे तुर्कों के दिलों पर सेवाभाव बैठ गया। हालाँकि यह युद्ध समझौता वार्ता के बाद समाप्त हो गया लेकिन इस घटना में ब्रिटिश सरकार की तुर्की विरोधी नीतियों से भारतीय मुसलमानों को सख्त आघात पहुँचा। इसी बीच 1914 के विश्वयुद्ध छिड़ गया जिसमें तुर्की में अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी का साथ दिया। ऐसी स्थिति में भारतीय मुसलमानों की भावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। जिनके दिलों में तुर्की के लिए प्रेम और श्रद्धा की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। ऐसी नाजुक घड़ी में मुस्लिम नेता भला हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठे रह सकते थे

अली बंधुओं (मो० अली और शौकत अली) मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना अब्दुल बारी फिरंगी महल, शेखुल हिन्द, मौलाना महमूदुल हसन देवबंदी, हकीम अजमल खाँ, डॉ० अंसारी की अगुवाई में तुर्की को हर संभव सहायता के लिए कई केन्द्र स्थापित किए गए। अली बिरादरान ने तो सशस्त्र संघर्ष के लिए हथियार जमा करने की कोशिश की। यह सब देखते हुए अंग्रेज सरकार ने कड़ा रुख अपनाया। मौलाना मो० अली, शौकत अली, हसरत मुहानी, जफर अली खाँ, अबुल कलाम आजाद और इस प्रकार की गतिविधियों से संबंध रखने वाले नेता एक-एक करके गिरफ्तार कर नजरबंद कर दिए गए।

अली बंधुओं की नजरबंदी ने मौलाना महमूदुल हसन को सावधान कर दिया। उन्होंने अगस्त 1915 में मौलाना उवैदुल्लाह सिंधी को काबुल भेज दिया जिन्होंने अमीरे काबुल की सहायता से वहाँ स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का गठन किया। जिसका राष्ट्रपति राजा महेन्द्र प्रताप को और प्रधानमंत्री प्रो० बरकतुल्ला को बनाया गया। मौलाना महमूदुल हसन ने इस सिलसिले में बिहार के अन्दर भी अपने केन्द्र स्थापित किए थे और शस्त्र क्रांति की योजना को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने सेना को प्रशिक्षण देने उसे पूरे तौर पर तैयार किया था। बिहार में तीन केन्द्र के प्रमुखों की नियुक्ति की गई थी जो इस प्रकार हैं— दरभंगा के मौलवी अजीज रहीमाबादी, आरा के मौलवी अब्दुल्ला गाजीपुरी और पटना के मौलवी अब्दुल रहीम अजीमाबादी।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वशासन की माँग रखी थी। ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों की स्वशासन की माँग पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के अपने आश्वासन को पूरा नहीं किया था। इतना ही नहीं, युद्ध के दौरान भारत सुरक्षा नियम के अन्तर्गत जो दमनकारी कानून बनाये गये थे उनकी भी पुष्टि सरकार ने रॉलेट एक्ट के माध्यम से कर दिया था। दूसरी बात 1912-13 में यूरोप में बाल्कन युद्ध लड़े गये थे। इसमें तुर्की के राज्य के विरुद्ध बाल्कन प्रायद्वीप की ईसाई प्रजा ने विद्रोह किया। यूरोपीय देशों के तुर्की के प्रति शत्रुतापूर्ण आचरण को देखते हुए और तुर्की की जीर्ण-शीर्ण दशा के कारण भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति तुर्की सुल्तान के प्रति रही। दूसरी तरफ वहाबी आंदोलन की जड़ें अंग्रेजों ने उखाड़ा था लेकिन यही वहाबी नेताओं के विचार से ओतप्रोत लोगों ने ब्रिटिश सरकार के प्रति रोष व्याप्त थी और वे ऐसे माहौल का इंतजार कर रहे थे जिसमें वहाबी अपने जन-धन दिखला सकें। जालियावाला बाग हत्या कांड ने पूरे भारतीयों के मन में भय और आतंक का ब्रिटिश शासन समझकर उसके विरुद्ध विद्रोह का तेवर चढ़ा लिया। पूरा भारतीय अघोषित नारा दे रहे थे —

“सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है  
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।”

कांग्रेस, मुस्लिम लीग, किसान सभा के अतिरिक्त सभी भारतीय पार्टियाँ अपना रुख पंजाब की ओर कर लिया। सभी दलों ने पंजाब को अपना सम्मेलन क्षेत्र बनाया। अमृतसर में कांग्रेस और मुस्लिम लीग का वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया गया।

उपर्युक्त कारणों से भारतीय हिन्दू और मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति आक्रोश बढ़ता जा रहा था। इसी समय 1919 का मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम भी भारतीयों की आशाओं और विचारों पर सही नहीं उतरा था। महायुद्ध की समाप्ति 1918-19 में हो चुका था। विजेता देश युद्धकाल में ही आपसी गुप्त संधियों द्वारा पराजित धुरी राष्ट्रों का बंदरबांट की मसूबा बना चुके थे। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में राष्ट्रसंघ की स्थापना की जा चुकी थी; ताकि पुनः विश्व में इतना बड़ा धन-जन की हानि से बचाया जा सके। वह शांति संधि के पक्ष में था लेकिन क्या जर्मनी के साथ संधि पीड़ित मानवता को शांति का वरदान प्रदान कर सका? जिस प्रकार से अमानुषिक संधि हुई हज़ारों मील

आबाद क्षेत्र जिसमें औद्योगिक तथा आर्थिक सम्पदा के स्रोत जबर्दस्ती छीन लिए गए थे। तुर्की को यूरोपीय राष्ट्रों ने लम्बे अरसे से यूरोप का बीमार राष्ट्र कहते आ रहे थे; यूरोपीय साम्राज्यवादी लूटेरों ने उसकी लाश का बँटवारा कर बैठा इससे दुनिया के मुसलमान बहुत ही क्षुब्ध हुए। भारतीय मुसलमान भी इसमें सम्मिलित थे। भारत में मुस्लिम सम्प्रदाय को खिलाफत के सवाल पर हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त था यही कारण था कि दिल्ली में अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन का प्रतिनिधियों ने सम्मेलन की अध्यक्षता महात्मा गाँधी से करायी थी। पूर्व काल के ब्रिटिश साम्राज्य का यह आश्वासन की अन्याय नहीं होगा; यह मात्र मुसलमानों का समर्थन लेने का हथकण्डा था। मुस्लिम समर्थन लेने के लिए ब्रिटिश प्रधान मंत्री लायड जार्ज ने घोषणा की कि “हमलोग इसलिए नहीं लड़ रहे हैं कि एशिया माइनर और ग्रीस के समृद्ध और प्रसिद्ध भूभाग को जहाँ तुर्की बहुल जातियाँ हैं उसे छीन लें” इन आश्वासनों ने मुसलमानों को किसी भी प्रकार के ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आंदोलन होने नहीं दिया। भारतीय मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार को पूर्व में दिए गए आश्वासनों की याद दिलाई और मांग पेश की कि मेसोपोटामिया, अरब, सीरिया, फिलिस्तीन आदि भूक्षेत्र समेत ‘जजरात-उल-अरब’ के सभी धार्मिक स्थलों को खलीफा के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा जाए। इन माँगों के बावजूद ब्रिटिश सरकार ने मिस्र राष्ट्रों के साथ मिलकर तुर्की के भूभाग का बंदरबांट कर दिया तथा तुर्की मात्र नाम का मुल्क रह गया।

ब्रिटिश सरकार की बदली हुई नीयत को देखते हुए मुसलमानों को गोलबंद होने के उद्देश्य से उल्लेमाओं ने एक अलग संगठन बनाने की कोशिश की। इस संगठन की स्थापना में हकीम अजमल खाँ और डॉ० अंसारी की सलाह शामिल थी। इस संगठन के काम-काज की शुरुआत में जिन बारह उलेमा ने मौलाना अब्दुल बारी का साथ दिया उनमें मौलाना सज्जाद, मौलाना सुलेमान नदवी और मौलाना शाह मुहीउद्दीन बिहार के ही थे। 21 सितम्बर 1919 को लखनऊ में अखिल भारतीय मुस्लिम सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन के आयोजन में बिहार के नेताओं नवाब सरफराज हुसैन खाँ, ख्वाजा मो० नूर और मौलवी सैयद नूरुल हसन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। 17 अक्टूबर को आम हड़ताल किया गया जिसको सफल बनाने के लिए गाँधीजी ने आम हिन्दुओं को साथ देने को कहा था। उन्होंने हड़ताल को शांति के साथ मनाने की अपील करते हुए कहा था कि हम खिलाफत को एक पवित्र संकल्प समझते हुए साथ दें। 17 अक्टूबर को खिलाफत दिवस माना गया था जबकि यह दिवस उसी दिन बिहार में भी पूरे जोर-शोर से मनाया गया। पटना, गया भागलपुर, मुंगेर और दरभंगा में विशेषकर इसे अभूतपूर्व सफलता मिली। पटना में हड़ताल के कारण सारा दिन सारा व्यवसाय ठप रहे। शाम के समय पटना सिटी में गंगा के किनारे मैदान में एक जनसभा हुई जिसमें भारी संख्या में मुसलमानों, हिन्दुओं और सिखों ने अपनी भागीदारी दर्ज कराई। सभा की अध्यक्षता नवाब सरफराज खाँ ने की और नमाज हाफिज अहमद गनी ने पढ़ाई।

राष्ट्रीय स्तर पर कुछ घटनाएँ सम्पूर्ण भारतवासी को क्षुब्ध कर दिया। गाँधीजी के निर्देश पर हिन्दुओं के सहयोग के कारण मुसलमानों के उत्साह में नई जान पड़ गई। 24 नवम्बर 1919 को दिल्ली में ए०के० फजलुल हक की अध्यक्षता में अखिल भारतीय सम्मेलन आहूत किया गया। इसमें बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू लोग भी सम्मिलित हुए। इसमें महात्मा गाँधी, पंडित मोतीलाल नेहरू, पंडित मदन मोहन मालवीय और वीर सावरकर सबसे महत्वपूर्ण थे। बिहार से सैयद हसन इमाम बिहारी मुस्लिम नेताओं की पूरी टोली साथ शामिल हुए थे। इस सम्मेलन में खिलाफत, तुर्की और पवित्र स्थान से संबंधित दूसरे प्रस्तावों के अलावा इस मामले में ब्रिटिश सरकार की वादा खिलाफी और बदनीयती की निन्दा की गई और यह तय किया गया कि सरकार की ओर से किए जाने वाले विजय उत्सव का विरोध करेंगे।

दिल्ली खिलाफत सम्मेलन के तुरंत बाद पटना के अंजुमन इस्लामिया हॉल में 30 नवम्बर 1919 को एक बहुत बड़ी सभा आयोजित की गई। पूरा हॉल खचाखच भरा हुआ था। बहुत से लोग बाहर खड़े थे और सैकड़ों को जगह नहीं मिलने के कारण लौटना पड़ा। श्री हसन इमाम ने अध्यक्ष पद के लिए मौलाना शाह रसीदुल हक का नाम प्रस्तुत किया। श्री राजेन्द्र पसाद ने उसका अनुमोदन किया। राजेन्द्र बाबू ने अपने भाषण में कहा था कि “हर आदमी अपने हृदय पर हाथ रखकर यह कहे कि क्या उसके मन में खुशी मनाने का कोई कारण दीख रहा है।

समाचार एवं पत्र-पत्रिकाओं में ब्रिटिश सरकार विरोधी आंदोलन का बिहारी मुसलमानों पर गहरा प्रभाव था। मुसलमानों ने जिन सभाओं एवं क्षेत्रों का नेतृत्व किया वहाँ आंदोलन सफल और जोरदार रहा। राँची में आंदोलन इसलिए सफल रहा क्योंकि नजरबंदी के दौर में मौलाना आजाद का प्रभाव यहाँ के लोगों पर बहुत अधिक पड़ा। इसके बाद अंग्रेजों की विजयोत्सव का विरोध पटना, मुजफ्फरपुर, गया, मुंगेर, दरभंगा, आरा, छपरा, राँची, भागलपुर में भी देखा गया क्योंकि यहाँ के जनजीवन पर मुसलमानों का प्रभाव बहुत गहरा था। गया जिले की राजनीति में ख्वाजा मो० नूर और मौलाना सज्जाद छापे हुए थे। इसके साथ काजी अहमद हुसैन, शाह उमैर और मौलाना अब्दुल हकीम भी बहुत सक्रिय थे। दरभंगा के मुसलमानों पर मौलाना इब्राहीम का काफी प्रभाव था। इनके अलावा शफी और मौलवी अब्दुल गफूर का भी शाहाबाद में, चौधरी करामत हुसैन जिला कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में अगुवाई कर रहे थे। छपरा जिले के जन-जीवन पर मजहरूल हक का विशेष पकड़ था इसके अतिरिक्त मौलाना का बिहार के राजनीति पर उतना ही पकड़ था। वे कांग्रेस के निर्विवाद एकमात्र नेता बिहार के थे। इनके अतिरिक्त सारण के नेता डॉ० महमूद और जकरिया हाशमी की पकड़ भी थी। भागलपुर में मौलवी अबुल हसन बार एटला सबसे अधिक सक्रिय थे। वैसे मौलाना शाह मुहिउद्दीन के धार्मिक प्रभाव और मौलाना सज्जाद, मौलाना इब्राहीम दरभंगा, मौलाना खुदाबख्श, सीवान और मौलाना अब्दुल हकीम गया के थे। इन लोगों ने पूरी लगन एवं कर्मठता से बिहार खिलाफत आंदोलन में शामिल हुए राजधानी पटना के सक्रिय राष्ट्रीय मुसलमान नेता हसन इमाम और मौलाना मजहरूल हक के अतिरिक्त नवाब सरफराज हुसैन खाँ, मौलवी खुशीद हसनैन, डॉ० महमूद, मौलवी नूरूल हसन और समी जैसे राजनेता सरकार विरोधी आंदोलनों का नेतृत्व कर रहे थे।

पराजित धूरी राष्ट्रों पर लगातार हमले और क्षेत्रों का अधिग्रहण का सिलसिला थमने को नाम नहीं ले रहा था। भारत में खिलाफत आंदोलन भी गति पकड़ रही थी। मुसलमानों ने अंग्रेज समर्पित और खलीफा का मुखालफत करने वाले शरीफ हुसैन की जमकर आलोचना की। शरीफ हुसैन अरब मुल्क में ही रहकर मित्र राष्ट्रों का पक्षधर बने हुए थे। इसी बीच मार्च 1920 से इंग्लैण्ड के विजयोन्मादी सेना रातों रात कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया इसका विरोध भारतीय मुसलमानों के साथ हिन्दू कद्दावर नेताओं ने भी किया। पटना सिटी में खिलाफत की समस्या पर इश्तेहार लगाया गया था। इनपर सर्वश्री फजुलल हक, अब्दुल कासिम, हसरत मोहानी, ताजउद्दीन और मो० अकरम खाँ के हस्ताक्षर थे। पुलिस इश्तेहार को कड़ाई से प्रतिबंधित कर दिया। इसके बावजूद श्री अब्दुल बारी, अबुल कलाम आजाद और शौकत अली के इच्छानुसार 19 मार्च 1920 को हड़ताल रही इसमें पटना में प्रांतीय खिलाफत समिति के सचिव श्री समी प्रमुख थे।

बिहार के खिलाफत आंदोलन के नेताओं के आमंत्रण पर मौलाना शौकत अली ने खिलाफत समस्या का समाधान करने के लिए सर्वस्व बलिदान करने का आह्वान किया। उन्होंने सरकारी नौकरियों छोड़ने और संस्थाओं का बहिष्कार करने की अपील की। इस अवसर पर वकील (High Court) मौलवी नूरूल हसन ने उत्तेजक भाषण पढ़े। मौलाना पटना के बाद मुंगेर और गया की ओर प्रस्थान

किया। 27 अप्रैल को मुंगेर की सभा को संबोधित किया, तय कार्यक्रम के कारण लोग पहले से इंतजार कर रहे थे। गया पहुँचने पर उनकी तबियत खराब हो गई और अपना राष्ट्रीय नेतृत्व का भाषण नहीं पढ़ सके। फिर भी ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त कई सम्मानों एवं प्रमाण पत्रों का परित्याग कर दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पाँच संधियाँ हुई थी जिसमें तुर्की के साथ शान्ति संधि की शर्तें 'सान रेमो सम्मेलन' में निर्धारित हुईं। तुर्की सरकार मई 1920 को हस्ताक्षर किया। इसके विरुद्ध बिहार के कुछ प्रमुख मुसलमानों का एक सम्मेलन फुलवारी में 15 और 16 मई 1920 को हुई। इसमें कानपुर के कादिर आजाद सुभानी और मथुरा के अब्दुल मजीद ने भाग लिया था। पटना सिटी में गुलाम इमाम और कुछ अन्य व्यक्तियों ने दो तीन जगहों पर सभाएँ कर सरकार के साथ असहयोग और तुर्की पर आरोपित शर्तों की भर्त्सना की गई थी। बाँकीपुर मैदान में अपने प्रयत्नों की सफलता के लिए सामूहिक प्रार्थना मो० समी, ख्वाजा अब्दुल मजीद एवं डॉ० सैयद महमूद ने किया था। बाकरगंज के एक मस्जिद के उन्नीस वर्षीय मौलवी एतमाद हुसैन भी इस सभा में सम्मिलित हुए। सभी जगहों पर तुर्की के सुल्तान के प्रति आस्था पूर्वकाल की तरह रहा लेकिन प्रश्न उठता है कि जितनी आस्था एवं श्रद्धा-भाव भारतीय मुसलमान दिखा रहे थे उसका तुर्की में क्या प्रतिक्रिया हुई? इसके परिणाम हास्यास्पद बना देता है। फिर भी सर्वसम्मति से निश्चित समय 1 अगस्त को समूचे भारत में खिलाफत दिवस मनाने की बात स्वीकार किया गया। इस अवसर पर गाँधीजी ने असहयोग आंदोलन के तहत अपने सभी सरकारी सम्मान एवं पदकों को लौटाते हुए वायसराय के पास मुसलमान भाइयों प्रति अनुदार बनी सरकार का विरोध दर्ज किया था। बिहार में असहयोग आंदोलन का शंखनाद मौलवी शाह बदरूद्दीन फुलवारी शरीफ ने अपनी पदवी शम्सुल उलेमा की वापसी से की। जबकि शाह सुलेमान फुलवारीशरीफ ने अनररी मजिस्ट्रेट के पद से और नूरुल हसन परिषद् की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। इसी दिन मुंगेर के प्रसिद्ध वकील बैरिस्टर शाह मोहम्मद जुबैर ने अपनी वकालत छोड़ दी। कुछ ऐसे भी बिहार के मुसलमान सपूत थे जो बिहार से बाहर खिलाफत और असहयोग आंदोलन में सक्रिय थे उसमें मौलाना अताउल्लाह शाह बुखारी ने पंजाब में, मौलाना शायक अहमद उस्मानी और मौलाना अब्दुल रऊफ दानापुरी ने कलकत्ता में, प्रमुख भूमि निभाई।

इस प्रकार खिलाफत आंदोलन में बिहार के मुसलमान काफी सक्रिय रूप से भाग लिया। उनकी नेतृत्व बिहार के हर प्रमुख प्रमंडलों में रहा और पूरे बिहार में निर्विवाद रूप से हिन्दू-मुसलमान के बीच सबसे चर्चित मौलाना मजहरूल हक थे जिन्हें बिहार के महात्मा गाँधी कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य महापुरुषों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजेन्द्र प्रसाद कद्दावर नेता थे परन्तु लोकप्रियता मौलाना को सबसे अधिक थी। आंदोलन से लेकर सभा सम्मेलन में उन्हीं के नाम पर लोग जमा होते थे।

## संदर्भ गन्थसूची

1. के० के० दत्त-बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-1.
2. ताराचंद-हिस्ट्री ऑफ़ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खण्ड-2
3. तकी रहीम-स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार के मुसलमानों का योगदान
4. राजेन्द्र प्रसाद-आत्मकथा
5. मौलाना आजाद-इण्डिया विन्स फ्रीडम, बम्बई, 1959
6. रामलखन शुक्ल-आधुनिक भारत का इतिहास
7. विपीन चंद-भारत का स्वतंत्रता संघर्ष
8. सुमित सरकार-आधुनिक भारत

# संथाल एवं उनका समाज: ऐतिहासिक आईने में

राजीव कुमार सिंह

शोध छात्र, ति.मां. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

संथाल भारत की एक महत्वपूर्ण जनजाति है तथा झारखंड की सबसे बड़ी जनजाति है। यह एक द्रविड़ जनजाति है। द्रविड़ जाति में संथालों के अतिरिक्त हो, मुण्डा और उराँव जनजाति आती है। भाषा के आधार पर इन्हें कोलारियन समूह में रखा गया है। कोलारियन जनजातियों की तुलना में संथाल एक स्थान पर अधिक दिनों तक कम ही रहते थे। शिकार करना, जंगलों को काटकर खेती युक्त बनाना, अप्रयुक्त मिट्टी को जोत कर खेती योग्य बनाना और एक जगह से दूसरी जगह लगातार भ्रमणशील बने रहना, संथाली आदिवासियों के जीवन यापन की विशेषता थी। वह अपने इस यायावरी जीवन से संतुष्ट थे।<sup>1</sup>

संथालों की सामाजिक व्यवस्था दूसरे जनजातीय समाज की तरह आदिकालीन थी। इनके परिवार का स्वरूप पितृसत्तात्मक, पितृवंशीय तथा पितृस्थानीय होता था। वैसे कन्या के जन्म को बुरा नहीं माना जाता था परन्तु विवाह के पश्चात् कन्यायें पराई समझी जाती थी। संथाल दूसरे आदिवासियों की तरह कई गोत्रों में बंटे होते थे। प्रत्येक गोत्र का अपना गोत्र चिन्ह होता था जिसे टोटम कहा जाता था। यह टोटम पशु, पक्षी या पौधा के नाम पर होता था। जनजातिगण अपने टोटम की आराधना करते तथा अपने को इसका वंशज मानते थे। टोटम को मारना, कष्ट देना या खाना आज भी आदिवासियों के लिए सामाजिक निषेध है।<sup>2</sup>

संथाल समाज में महिलाओं का स्थान महत्वपूर्ण था यद्यपि पुरुषों की अपेक्षा उनका स्थान नीचा था फिर भी उन्हें परम्पराओं और रिवाजों के अनुरूप हर तरह के अधिकार प्राप्त थे।<sup>3</sup> दैनिक जीवन में सुविधा और क्षमता के अनुरूप पुरुषों और महिलाओं के कार्यों का विभाजन किया गया था।<sup>4</sup> घर एवं बाहर के कार्यों को सम्पादित करने में संथाल औरतें पुरुषों की तरह स्वतंत्र थी। दाह संस्कार में महिलाओं की भागीदारी वर्जित थी।<sup>5</sup>

जहाँ तक संथाल आदिवासियों के बीच शिक्षा के स्तर का सवाल है तो उनमें किसी भी तरह की औपचारिक शिक्षा का अभाव था। वह अपने माहौल से परम्पराओं और रिवाजों को सीखते हुए जीवन निर्वाह के पथ पर चलते थे। वस्तुतः पुराने जनजातीय समाज में औपचारिक शिक्षा अपेक्षाकृत एक आधुनिक अवधारणा है जिसमें ईसाई मिशनरियों के प्रयासों का योगदान है। अनौपचारिक शिक्षा के तौर पर युवाग्रह शैक्षिक संस्थान का काम करते थे।

दूसरे आदिवासियों उराँव, मुण्डा, हो आदि की तरह संथाल आदिवासियों के बीच भी आमतौर पर व्यस्क विवाह का प्रचलन था। उनके बीच के धनी एवं समृद्ध लोग ही उस समय अपने पड़ोस के क्षेत्रों में बसे हिन्दुओं के बीच प्रचलित विवाह प्रथा का अनुसरण कर रहे थे।<sup>6</sup> संथालों के बीच मुख्यतः छः प्रकार के विवाह प्रचलित थे। 1. किरिंग बाहु; 2. धरदे जवाई; 3. किरिंग जवाई; 4. इतूत; 5. नीर बोलोक और 6. टुन्की दिलीप वाप्ला आदि।<sup>7</sup> विवाह के इन तरीकों में किरिंग बाहु सबसे ज्यादा प्रचलित है। यह विवाह का परम्परागत तरीका था जिसमें बातचीत बतौर समझौता के द्वारा विवाह तय किया जाता था। किरिंग बाहु में वधू की कीमत देकर उसे अपने घर लाने की प्रथा थी।

दूसरा तरीका धरदे जवाई का था। इसका अर्थ है- सेवा के द्वारा किया गया विवाह। वधू मूल्य की अदायगी न कर पाने की स्थिति में वह अपने सास-ससुर की सेवा करता था तथा बदले में उसकी पुत्री को पत्नी के रूप में प्राप्त करता था। इस प्रकार के विवाह में वधू के लिए 'पोन' तो नहीं देना पड़ता था। लेकिन वर को पांच साल तक अपने ससुराल में रहकर काम करना पड़ता था। बाद में वर अपने वधू के साथ घर लौट आता था। किरिंग जवाई तब होता था जब किसी लड़की का कुछ लोगों के साथ संबंध हो और वह गर्भवती हो जाए। ऐसी स्थिति में अपनी पत्नी के रूप में उस लड़की को स्वीकार करने वाले को मुआवजा के तौर पर कुछ राशि दी जाती थी।

विवाह के 'इतूत' तरीके में मध्यस्थों की जरूरत नहीं पड़ती थी। वस्तुतः यह प्रेम विवाह का एक तरीका था जिसमें लोगों को तब तक पता नहीं चलता था जब तक कि लड़का उस लड़की के माथे पर सिन्दूर लगाकर उसे अपनी पत्नी न बना ले। लेकिन इस तरह के विवाह को ग्राम-समाज की मान्यता तब तक नहीं दी जाती थी जब तक कि लड़का लड़की के घर वालों को मांझी के माध्यम से हरजाने की रकम नहीं चुका देता।

'नीर बो लोक' एक प्रकार का हठ विवाह था। इस प्रकार के विवाह में लड़की पहल करती थी। लड़की जिस लड़का से शादी करना चाहती थी उसके घर में जाकर जबर्दस्ती रहने लगती थी। लड़के के माता-पिता के अपमान किए जाने पर भी वह अपने परिवार में तब तक नहीं रहती थी जब तक कि लड़के के माता-पिता उसे बहु रूप में स्वीकार न कर ले।

'टुन्की दिलीप वाप्ला' गरीबों का विवाह था। इस विवाह में वधू को उसके घर से बिना किसी समारोह के वर के घर लाया जाता था। जहां वर के द्वारा वधू के माथे पर सिन्दूर लगाकर सिन्दूरदान की रस्म पूरी की जाती थी।

इसके अतिरिक्त विवाह का एक अन्य प्रकार था- संग बाप्ला। यह विधवा या तलाकशुदा महिलाओं के लिए प्रचलित था। इस प्रकार के विवाह में छोटे समारोह का आयोजन होता है। फिर एक खास फूल से वधू के माथे पर वर सिन्दूर लगाता है।<sup>8</sup> इस रिवाज से पता चलता है कि संधालों के बीच विधवा विवाह का प्रचलन था। लेकिन ऐसी स्थिति में वधू की कीमत किसी अविवाहित कन्या की तुलना में आधी होती थी।<sup>9</sup>

संथाल समाज आरम्भ से ही महिलाओं और पुरुषों के सहयोग पर आधारित था। लेकिन संथाल समाज में स्त्रियों को किसी की जानकारी मिलनी चाहिए और किस तरह की नहीं, इस पर पुरुषों का अधिकार था। यह समाज के महिलाओं के दूसरे दर्जे की स्थिति को दर्शाता है।<sup>10</sup>

सामुदायिकता पर आधारित संथाल समाज में आपसी विवाह को सुलझाने के लिए 'लो-बीर' नामक एक जंगल परिषद् का गठन किया गया था। हालांकि आदिवासी समाज के विकास क्रम में लो-बीर एक परवर्ती संस्था थी। यह संस्था उस नए अभिजात्य वर्ग सोक या जनगुरु के अनुकूल था जिनपर आदिवासी समाज के मूल्यों को बनाए रखने तथा धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पादित करने का उत्तरदायित्व था।<sup>11</sup> इस अवस्था तक आते-आते संथालों के समाज में भी अन्य समाजों की तरह अभिजात्य वर्ग का उदय हो चुका था जो कई तरह के विशेषाधिकारों से सम्पन्न था। मांझी, परमनायक, जोगपरमनायक, कुदम नायक जैसे पदनामित अधिकारी इस वर्ग में आते थे।<sup>12</sup> समाज में इनका स्थान सबसे ऊँचा था।

संथाल समाज में ग्राम्य-समुदाय की व्यवस्था का अस्तित्व आरम्भ से ही था।<sup>13</sup> इस अवस्था में गाँव का प्रधान सर्वोपरि होता था। जिसे मंडल या मांझी कहा जाता था। गाँव से सम्बंधित सभी कार्य इसी के हाथों सम्पन्न होता था। ग्राम-प्रधान की व्यवस्था संथालों की सामाजिक व्यवस्था और इसकी

आंतरिक संरचना का आधार थी। यह संथालों की जातीय-अस्मिता की भावना के साथ गहराई से जुड़ी थी। हर गाँव या परहा का प्रधान माँझी होता था जिसे संथाल होरहोपोन कहते थे। संथाल परम्परा के अनुसार जब किसी स्थान को बसने के अनुकूल समझा जाता, उस जगह पर वह माँझी के नेतृत्व में बस जाते। इस तरह माँझी गाँव का नेता होता था जिसका चुनाव गाँव के लोग मिलकर करते थे। वह गाँव के अधिकारों, नियमों एवं उत्सवों का संचालक तथा प्रशासक था।<sup>14</sup> जैसा कि हाल के अध्ययन में बताया गया है कि स्थायी बन्दोबस्त के पूर्व जंगल-महल और इसके आस-पास को संथालों के कृषक समाज में माँझी अथवा मण्डली व्यवस्था लगभग एक स्वपर्याप्त व्यवस्था थी।<sup>15</sup>

सामाजिक तौर पर संथाल खुशमिजाज उत्साही और समारोहों को मानने की अपनी परम्पराओं को अक्षरशः पालन करने वाले लोग थे। ये लोग छोटी-छोटी खुशियों को भी मिलकर मनाते थे। संथालों की सामूहिक संरचना तथा सामाजिक मेल-जोल की परम्परा पूरी तरह से पैतृक सम्बन्धों पर आधारित व्यवस्था के अनुरूप थी। संगीत एवं नृत्य संथालों के जीवन का महत्वपूर्ण भाग था। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों ही समान रूप से भाग लेते थे। इन लोगों में मद्यपान का पर्याप्त प्रचलन था। घर-घर में चावल की बीयर बनाई जाती थी। आवासों, खेतों तथा जानवरों की रक्षा हेतु ये कुत्ते पालते थे।<sup>16</sup>

इस तरह कह सकते हैं कि जीवन की विषम परिस्थितियों जिनका सामना संथालों को अक्सर करना पड़ता था, का सामना करने के लिए हर प्रतिरक्षात्मक समाज की तरह बड़े ही अनुशासन के साथ करते थे। संथालों में अपने सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अधिक अभिरुचि थी जिसके फलस्वरूप इनका परिवार एवं समाज अन्य आदिवासियों की तुलना में ज्यादा जागरूक और प्रगतिशील रहा है।

## संदर्भ सूची

1. एफ०बी०बडले वर्ट; दि स्टोरी ऑफ एन इंडियन उपलैण्ड; लंदन 1905 - पृ. 21
2. उमेश कुमार वर्मा; बिहार का जनजातीय जीवन, वाराणसी 1991, पृ. 23
3. पी०सी०राय चौधारी; डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, संथाल परगना, पृ. 891
4. पी०सी०राय चौधारी; डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, संथाल परगना, पृ. 891
5. चारूलाल मुखर्जी; दि संथाल्स कलकत्ता, II संस्करण 1962, पृ. 97
6. पी०सी०राय चौधारी; पूर्वोक्त पृ. 931
7. पी०सी०राय चौधारी; पूर्वोक्त पृ. 931
8. पी०सी०राय चौधारी; पूर्वोक्त पृ. 931
9. बी०बी०सिन्हा; सोसाइटी इन ट्राईबल इंडिया 1982, पृ. 145
10. पी०सी०राय चौधारी; इनसाईड बिहार 1962, पृ. 43
11. ए०बी०चौधारी; दि संथाल्स रिलिजन एण्ड रिचुअल्स 1987, पृ. 17
12. एच०एच०रिजले; दि ट्राईबल एण्ड कास्ट्स ऑफ बंगाल भाग 1, पृ. 234-35
13. एफ०डब्लू० रोबर्टसन; सेटलमेंट रिपोर्ट बांकुरा, कलकत्ता 1926, पृ. 08
14. एल०एम०एस०ओ०मेली; बंगाल गजेटियर संथालपरगना 1910, पृ. 107
15. एस०सी०गुप्ता; एग्जिबिशन रिलेशन एण्ड अर्ली ब्रिटिश रूल इन इंडिया
16. हरिश्चन्द्र उप्रेती; भारतीय जनजातियाँ 1995, जयपुर, पृ. 244

# ब्रिटिश भारत में मजदूर वर्ग का उत्थान एवं मजदूर आंदोलन ( 1850-1908 )

डॉ० संजीव कुमार

इतिहास विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारतीय राष्ट्रीय परिदृश्य पर श्रमिक वर्ग का उभरना इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। जिसने आधुनिक भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक इतिहास को काफी प्रभावित किया। श्रमिक वर्ग ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा जन चेतना की एक मिसाल कायम की। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के समय जो श्रमिक वर्ग उमरा वह मुख्यतः औद्योगिक श्रमिक वर्ग था, जो अंग्रेज तथा भारतीय पूंजीपतियों द्वारा स्थापित उद्योगों में कार्यरत मजदूर थे। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई थी, जबकि भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना 1850 के बाद प्रारंभ हुई थी। इस दौरान भारत इंग्लैंड के उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति करने वाला देश मात्र था। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि जब कोई साम्राज्यवादी देश किसी उपनिवेश की स्थापना करता है तो उसका मुख्य उद्देश्य उपनिवेश का आर्थिक शोषण करना होता है। अंग्रेजों ने भी वही किया, उन्होंने भारतीय संसाधनों का दोहन इंग्लैंड के औद्योगिक विकास के लिए किया। 1800 ई० तक भारतीय उद्योग-धंधे संसार में सबसे अधिक विकसित थे, क्योंकि उस समय उद्योग केवल कुटीर उद्योग ही थे। औद्योगिक क्रांति के नलस्वरूप बिदेशों में उद्योगों का विकास हुआ और उसी के साथ-साथ भारतीय उद्योगों का पतन प्रारंभ हुआ। 1800-50 ई० के काल को हम भारतीय औद्योगिकरण का काल कह सकते हैं। इस दौरान भारत के परम्परागत हस्त शिल्प का ऐसा हास हुआ कि वह मर गया। कालें मार्क्स ने कहा था। “यह अंग्रेज घुसपैठिया था जिसने भारतीय खड्डी और चरखे को तोड़ दिया।”<sup>1</sup>

अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। ग्राम आत्मनिर्भर होते थे तथा अपनी जरूरत की सारी वस्तुएँ स्वयं पैदा कर सकते थे। गाँवों में कृषि तथा उद्योग साथ-साथ चलता था तथा एक-दूसरे पर आश्रित थे। कुल मिलाकर ग्रामीण समाज आर्थिक दृष्टि से स्थिरता का प्रतीक था और यह आर्थिक स्थिरता कृषि, ग्रामोद्योग और स्थानीय व्यापार की संतुलित प्रणाली पर आधारित था। भारतीय गाँव की सबसे अच्छी परिभाषाओं में से एक एल्फिंसटन ने अपनी पुस्तक “History of India” में दी है। उन्होंने भारतीय गाँवों को कहा है, छोटे-छोटे गणराज्य जो अपनी जरूरत की लगभग हर वस्तु स्वयं पैदा कर सकते हैं।<sup>2</sup>

लेकिन अंग्रेज साम्राज्यवादियों द्वारा औपनिवेशिक शासन की स्थापना ने भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया। अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों ने गरीब किसानों को भूमिहीन बना दिया तथा कुटीर उद्योगों का नाश कर दिया, जिससे असंख्य लोग बेरोजगार हो गए। अब तक जो भारत एक प्रमुख निर्यात करने वाला देश था अब से आगे वह आयात करने वाला देश बन गया। भारतीय बाजार विदेशी कपड़ों और वस्तुओं से भर गया और भारतीय उद्योग तबाह हो गए। लार्ड विलियम बेंटिक की सरकार ने भी 1834 में यह कहा था, “इस दुर्दशा का व्यापार के इतिहास में जोड़ नहीं। भारतीय बुनकरों की हड्डियाँ भारत के मैदान में बिखरी पड़ी हैं।”<sup>3</sup> 1850 के बाद जब भारत में

कारखानों की स्थापना होने लगी तब यही बेरोजगार लोग गाँव से शहरों की ओर पलायन कर गए। कारखानों में काम करने के लिए असंख्य लोग कम मजदूरी पर भी तैयार हो जाते थे। इस प्रकार भारत में सस्ता श्रम उपलब्ध था जिसने उद्योगों के विकास तथा उत्पादन के क्षेत्र में सहायता पहुँचाई।

इस प्रकार 1850 ई० के बाद भारत में एक नए वर्ग श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। भारत में उद्योगों की स्थापना से मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई। आधुनिक उद्योगों की स्थापना ने पूंजीपतियों द्वारा शोषण और मजदूरों की समस्याओं को जन्म दिया। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् पश्चिमी देशों के मजदूरों को जिस समस्याओं का सामना करना पड़ा था, वैसी ही समस्याओं से भारतीय मजदूरों को गुजरना पड़ रहा था। भारतीय मजदूरों को कम मजदूरी, लंबे कार्य के घंटे, मिलों में अस्वस्थ वातावरण, बच्चों से काम लेना तथा महिलाओं को न्यूनतम मजदूरी नहीं देना, साथ ही समान्य सुविधाओं को उपलब्ध नहीं कराने की समस्याओं को झेलना पड़ता था। इसके अतिरिक्त भारतीय मजदूरों की स्थिति पश्चिमी देशों के मजदूरों से भिन्न थी। पश्चिमी देशों में मजदूरों का शोषण वहाँ के उद्योगपतियों द्वारा किया जाता था और सरकार ने उद्योगों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति अपना ली थी, ताकि उद्योगों के विकास तथा उत्पादन में कोई बाधा उत्पन्न न हो। लेकिन भारत की परिस्थिति भिन्न थी। भारत की औपनिवेशिक सरकार की उद्योगों के विकास में कोई रूचि नहीं थी। उसकी नीति तो भारतीय उद्योग के विकास को अवरूद्ध करने की थी। वे नहीं चाहते थे कि भारतीय उद्योग इंग्लैंड के उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करें। इसलिए वे भारतीय उद्योग या मजदूर वर्ग के हित के लिये कोई कार्य नहीं करना चाहते थे।

भारत में आधुनिक उद्योगों विशेषकर सूती कपड़ा मिल तथा जूट मिलों का बड़े पैमाने पर स्थापना हुई। जिससे उत्पादन बढ़ा और भारतीय बाजारों में देशी वस्तुओं की आपूर्ति बढ़ी। भारतीय उत्पाद आयातीत उत्पाद की तुलना में सस्ते होते थे, जिसका मुख्य कारण भारत में सस्ते श्रम की उपलब्धता थी। जबकि इंग्लैंड में श्रमिक वर्ग ने अपने विभिन्न मांगों को लेकर आंदोलन चलाया और अंततः 1847 में दस घंटा विधेयक पारित कर दिया गया। इस कानून ने स्त्रियों और युवकों के लिये काम के घंटों सीमित कर दिए और पुरुष श्रमिकों के लिए 10 घंटे का दिन निश्चित कर दिया।<sup>4</sup> इस कानून के प्रभाव से इंग्लैंड का उत्पादन सीमित हो गया। दूसरी तरफ भारतीय उद्योगों से उन्हें कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही थी। अब लंकाशायर के उद्योगपतियों ने भारत में कपास मिल के माल पर लगे आयात शुल्कों को समाप्त करने तथा भारतीय श्रमिकों की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए एक आयोग की मांग की। उन्हें डर था कि भारतीय कपड़ा उद्योग सस्ती मजदूरी के कारण उसका प्रतिद्वन्दी न बन जाए। इस प्रकार का पहला आयोग 1875 में नियुक्त किया गया।<sup>5</sup> इंग्लैंड की सरकार ने 11 जुलाई 1877 को एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो इस प्रकार था, “इस सदन के मतानुसार भारत में आयात किए गए सूती माल पर लगा शुल्क जो निश्चित ही रक्षात्मक है स्वास्थ्य वाणिज्य नीतियों के विरूद्ध है और उसे जितना शीघ्र भारत की बित्तीय परिस्थिती अनुमती देकर समाप्त कर देना चाहिए।” ब्रिटिश सदन द्वारा पारित प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए वायसराय लिटन ने अकाल पीड़ित भारत की आवश्यकताओं को नजरअंदाज करते हुए तथा अपने कार्यकारी परिषद के विरोध के बावजूद अपने सवैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए 1879 तक सभी शुल्कों को समाप्त कर दिया। इस प्रकार भारतीय प्रशासन की आवश्यकताओं को अंग्रेजी राजनीति पर बलिदान कर दिया।<sup>6</sup> भारतीय उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों की स्थिति में सुधार के लिए जो आयोग 1875 में नियुक्त किया गया था उसकी अनुशंसा पर भारत सरकार ने 1881 में प्रथम फैक्टरी कानून तथा 1891 में दूसरा फैक्टरी कानून पारित किया।<sup>7</sup> इस कानून के पारित होने से भारतीय श्रमिकों के मांगों को

कानूनी समर्थन प्राप्त हुआ तथा उनमें राजनीतिक जागृति आई। इस प्रकार भारत सरकार ने भारतीय श्रमिक वर्ग की परिस्थितियों को सुधारने के लिए कदम उठाए, भले ही उनका उद्देश्य इंग्लैंड के व्यापार को लाभ पहुँचाना ही था।

1881 और 1891 के फैक्टरी एक्ट का ज्यादातर राष्ट्रवादी नेताओं और राष्ट्रीय अखबारों ने विरोध किया। उनका मानना था कि सरकार ने ब्रिटिश उत्पादकों के हितों की रक्षा को ध्यान में रखकर श्रम कानून बनाने की पहल की थी। इस कानून से श्रमिकों के कार्य के घंटे कम कर दिए जाते और इस तरह भारतीय उत्पादकों की बाजार में पहले से बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा की ताकत कम हो जाती। उस समय के राष्ट्रवादी नेता देश की गरीबी को कम करने के लिए औद्योगिक विकास को अनिवार्य मानते थे और इस प्रकार का कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे जिससे औद्योगीकरण की प्रक्रिया में किसी तरह की कमी आए। लेकिन जब ब्रिटिश स्वामित्व वाली कम्पनियों में काम करने वाले मजदूरों का सवाल आया तो इन्होंने राष्ट्रवादियों ने उन मजदूरों को पूरा समर्थन दिया। राष्ट्रवादियों के रूख में इस बदलाव का कारण इसलिए था कि यहाँ मालिक और नौकर एक ही देश के अभिन्न अंग नहीं थे। सुमित सरकार ने भी राष्ट्रवादियों की आलोचना करते हुए लिखा है कि राष्ट्रवादी विदेशियों के लिये काम करने वाले भारतीयों (उदाहरण के लिए, असम के कुलियों) के लिए तो मानवतावादी सरोकार प्रायः ही दिखाते रहते थे किंतु भारतीय स्वामित्व वाले कारखानों के श्रमिकों की दशा की ओर से आँख मूंद लेते थे।<sup>8</sup>

यहाँ पर सवाल यह उठता है कि क्या भारतीय स्वामित्व वाले कारखानों में काम करने वाले मजदूरों और अंग्रेजी स्वामित्व वाले कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की परिस्थितियाँ एक साथ थी? क्या दोनों को एक ही प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ रहा था? इसका विस्तृत अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि इंग्लैंड के उद्योगों के लिये जो कच्चे माल की आपूर्ति भारत से की जा रही थी वह उच्च कोटि की नहीं थी। इस कमी को पूरा करने के लिये यह आवश्यक था कि अंग्रेज नागरिकों को भारत में मुक्त रूप से जाने तथा बसने की अनुमति हो। इसलिए चार्टर एक्ट 1833 ने यूरोपीय लोगों को भारत में बसने तथा वहाँ सम्पत्ति मोल लेने की अनुमति दे दी। अब अंग्रेजी पूंजी भारत की चाय, काफी, नील और पटसन के बगीचों में लगायी जाने लगी। भारत सरकार ने उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त कराईं। आसाम बेस्टलैण्ड रूस में यह प्रावधान था कि किसी भी व्यक्ति को 3 हजार एकड़ तक भूमि क्षेत्र एक निश्चित राशि के बदले दे दिया जा सकता था और इस पर उन्हें कोई भूमि कर नहीं देना होता था।<sup>9</sup>

अंग्रेजी स्वामित्व वाले बगीचों और कारखानों में मजदूरों की भरती ठेकेदारों के माध्यम से अनुबंध पद्धति द्वारा की जाती थी। ऐसे मजदूरों में बे प्रवासी भारतीय मजदूर भी शामिल थे, जो फिजी, मॉरिशस, नटाल तथा बेस्टइंडीज आदि देशों में यूरोपीय उद्योगों में काम करने के लिये भेजे जाते थे। जिन्हें गिरमिटिया मजदूर कहा जाता था। ये भरती सिद्धांततः तो निःशुल्क होती थी, लेकिन ठेकेदारों के माध्यम से होने के कारण उनके बटे की मांग का बोझ भी मजदूरों पर ही डाल दिया जाता था। पूर्वी भारत के खदानों तथा बगानों के लिये श्रमिक पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मद्रास प्रसीडेंसी से आते थे। इसके विपरीत अहमदाबाद और बंबई के कारखाने श्रमिकों की भरती आस-पास के क्षेत्रों से ही करते थे। अंग्रेज मालिकों ने मजदूरों की भरती के लिये हर प्रकार की जोर-जबरदस्ती और धोखा-धड़ी की नीति अपनाई। भारत सरकार ने भी इस शोषण को कानूनी संरक्षण प्रदान किया। 1859 के Act XIII or Inland Immigration Act of 1882 द्वारा सविदा भंग करना एक फौजदारी जुर्म था।<sup>10</sup> इस कानूनों के माध्यम से अंग्रेज मालिकों को मजदूरों को कैद करने, सजा देने तथा काम

छोड़कर जाने से रोकने का अधिकार मिल गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजी स्वामित्व वाले उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों की स्थिति दासों के समान थी। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि एक तरफ भारत सरकार 1843 में कानून बनाकर दास प्रथा को समाप्त कर दिया और दूसरी तरफ 1859 और 1882 में कानून बनाकर अंग्रेज मालिकों द्वारा भारतीय मजदूरों को दास बनाने का अधिकार दे दिया।

दूसरी तरफ भारतीय स्वामित्व वाले कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की परिस्थितियों का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि उनकी परिस्थिति तुलनात्मक रूप से बेहतर थी और यहाँ मुख्य समस्या मजदूरी और काम के घंटों को लेकर थी। बंबई के सूती कपड़ा मिल में मजदूरी करने वाले अर्जुन आत्माराम आल्वे ने असहयोग आंदोलन में शामिल होने की परिस्थितियों को व्यक्त करते हुए कहा था- “जिस समय हमारा संघर्ष चल रहा था, देश में राजनीति आंदोलन का नगाड़ा बस रहा था, कांग्रेस ने बहुत बड़ा आंदोलन शुरू किया जिसमें भारत के लिए स्वशासन की मांग रखी गई। उस समय हम मजदूर लोग स्वराज का अर्थ सिर्फ इतना समझते थे कि हमारे कर्जे समाप्त हो जाएँ, सूदखोरों द्वारा दमन खत्म हो जाएगा, हमारी मजदूरी बढ़ेगी, मालिकों द्वारा दमन, उसके मुक्के, लात-धुँसे कानून बनाकर रोक दिए जाएँगे और इस प्रकार हम मजदूरों को दी जाने वाली यातना का अंत हो जाएगा। हम मजदूरों के मन में ये और इसी तरह के अन्य विचार उठा करते थे और बहुत सारे मजदूरों ने जिसमें मैं खुद भी था, असहयोग आंदोलन के दौरान स्वयं-सेवक के रूप में अपना नाम दर्ज कराया।”<sup>11</sup>

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश स्वामित्व में काम करने वाले मजदूरों की परिस्थितियाँ देशी उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों से काफी भिन्न थी। उन्हें अधिक उत्पीड़न और शोषण का सामना करना पड़ रहा था। 1911 की 30.3 जनसंख्या में अनुमानतः 21 लाख लोग ही संगठित उद्योगों में लगे थे और इनमें बगानों के 8 लाख कामगार भी सम्मिलित थे।<sup>12</sup> बगानों के अलावा ब्रिटिश स्वामित्व वाले अन्य कारखानों में भी असंख्य मजदूर कार्य करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मजदूरों की एक बड़ी अबादी दासतापूर्ण बातावरण में काम कर रही थी। उत्पीड़न और शोषण के कारण मजदूरों में असंतोष उत्पन्न हुआ और राष्ट्रवादियों का समर्थन पाकर उन्होंने अपनी मांगों को लेकर आंदोलन प्रारंभ किया। मजदूरों की प्रथम संगठित हड़ताल ब्रिटिश स्वामित्व वाले Great Indian Peninsular (G.I.P.) Railway में सिमनल पर काम करने वाले मजदूरों ने अपनी विभिन्न मांगों को लेकर किया था। इस हड़ताल को सभी राष्ट्रवादी संगठनों और राष्ट्रीय अखबारों को भरपूर समर्थन मिला। चूँकि यहाँ शोषक विदेशी था, इसलिए यह राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा बन गया।

भारतीय स्वामित्व वाले उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों के प्रति शुरूआती राष्ट्रवादी नेताओं का जो उदासीनतापूर्ण दृष्टिकोण था, उसका एक प्रमुख कारण अंतरराष्ट्रीय जगत में होने वाली घटनाएँ भी थी। फ्रांस की क्रांति के फलस्वरूप यूरोप में समाजवादी विचारों का उदय हुआ और अनेक समाजवादियों ने मजदूरों की दयनीय स्थिति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। शुरूआती समाजवादियों जिसमें रॉबर्ट ओवन, लुई ब्लाक तथा सेंट साइमन आदि प्रमुख थे ने मजदूरों की स्थिति सुधारने का प्रयास किया। ये क्रांति के बदले शांतिपूर्ण परिवर्तन में विश्वास रखते थे, अर्थात् वे वर्ग संघर्ष के बदले वर्ग समन्वय के हिमायती थे। लेकिन कार्ल मार्क्स के उदय के पश्चात मार्क्सवादी विचारों का प्रसार हुआ। मार्क्स तथा एंगल्स ने 1848 में एक साम्यवादी घोषणा पत्र प्रकाशित किया, जिसमें वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया। मार्क्स ने 1864 में First International की स्थापना लंदन में की। इसमें उन्होंने अपने भाषण में मजदूरों को संबोधित करते हुए कहा- “वे अपनी

मुक्ति स्वयं ही और अपने प्रयास द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। जब तक कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व व्यक्तिगत हाथों में है तब तक मशीनों का सुधार उद्योग में विज्ञान का प्रयोग और उत्पादन कला में किसी भी सुधार से श्रमिकों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सकता। इसलिए उनका अंतिम लक्ष्य पूँजीवाद का विनाश होना चाहिए।<sup>13</sup> कार्ल मार्क्स हिंसा को क्रांति का अनिवार्य लक्षण मानते थे। वे मानते थे कि मनुष्य मूल रूप से बुराई का प्रतीक है और बुराई का अंत हृदय परिवर्तन से नहीं बल्कि हिंसात्मक संघर्ष से ही संभव है।

First International का सभी पूँजीवादी देशों ने विरोध किया और इसे समाप्त करने का प्रयास किया। अंत में सन् 1876 में इसे औपचारिक रूप से विघटित कर दिया गया। पुनः 14 July 1889 को पेरिस में Second International की स्थापना की गयी। जिसमें 20 देशों के लगभग 400 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस सम्मेलन में 1 मई को अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस मनाने का निर्णय लिया गया। 1 मई 1890 को सारे यूरोप और अमेरिका में मजदूरों ने हड़ताल और प्रदर्शन किया।<sup>14</sup> Second International ने साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध किया। समाजवादी विचारों के फलस्वरूप अनेक देशों में समाजवादियों का प्रभाव बढ़ा। मजदूर आंदोलन सशक्त हुआ, जिसके फलस्वरूप 1917 में रूसी क्रांति हुई और सर्वहारा वर्ग के शासन की स्थापना हुई।

भारत के राष्ट्रवादी नेता उपरोक्त अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से भली-भांति परिचित थे। उस समय भारत में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन अपनी शैशवावस्था में था और राष्ट्रवादी नेता किसी भी हालत में नहीं चाहते थे कि भारतीय जनता भीतर से किसी भी तरह विभाजित हो। वे नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध चलाया जाने वाला संघर्ष कमजोर हो। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दूसरे ही अधिवेशन (1886) में दादा भाई नौरोजी ने यह बात साफ कर दी थी कि “कांग्रेस को उस सवालों” तक ही सीमित रहना चाहिए, जिसमें पूरे राष्ट्र की भागीदारी हो तथा सामाजिक सुधारों और विभिन्न वर्गों के पारस्परिक समायोजन का कार्य कांग्रेस की उपसमितियों के हवाले कर देना चाहिए।<sup>15</sup> कांग्रेस उस समय इस स्थिति में नहीं थी कि वह सीधा ब्रिटिश सरकार से संघर्ष कर सके। यदि वह ऐसे कार्यक्रमों को हाथ में लेती तो उन्हें सरकार का कोपभाजन बनना पड़ता। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का उदारवादी नेतृत्व क्रमिक और संवैधानिक नीतियों में विश्वास करता था। कांग्रेस का संगठन भी इस प्रकार का था कि इसके अधिकांश सदस्य उच्च वाणिज्य वर्गों, बैंकरों, व्यापारियों तथा भू-स्वामियों का प्रतिनिधित्व करते थे। स्वाभाविक है कि ऐसे समूहों से आमूल परिवर्तनवादी कार्यक्रम देने की अथवा अबाध जन-आंदोलन का समर्थन करने की आशा नहीं की जा सकती थी।

19वीं शताब्दी के अंतिम तथा 20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक नए दल का उदय हुआ तो पुराने नेताओं के आदर्शों तथा ढंगों का कड़ा आलोचक था। इस दल को पुराने उदारवादी की तुलना में उग्रवादी या गरम दल कहा गया। गरम दल देश के तीन भागों में अधिक सक्रिय था। महाराष्ट्र दल के नेता थे तिलक, बंगाल दल के नेता थे विपिन चंद्र पाल और अरविंद घोष तथा पंजाब दल का नेतृत्व लाला लाजपत राय कर रहे थे। समकालीन कांग्रेसी नेताओं में तिलक सबसे अधिक उग्र दृष्टिकोण रखते थे। उन्हें भारतीय असंतोष का जनक भी कहा जाता है। उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन चलाने के लिये जनता को प्रेरित करने का काम शुरू किया। 1896 में तिलक ने कपड़े पर लगे उत्पाद शुल्क के विरोध में सारे महाराष्ट्र में “विदेशी वस्त्र बहिष्कार आंदोलन चलाया। शायद वह पहले राष्ट्रवादी नेता थे, जिन्होंने इस तथ्य को पहचाना कि राष्ट्रीय आंदोलन में निम्न मध्य वर्ग, किसान, मजदूर और दस्तकार कितनी महात्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और इसलिए इन लोगों को भी कांग्रेस के साथ जोड़ा जाना चाहिए। 1902 में उन्होंने एक

भाषण में घोषणा की- " तुम भले ही दलित और उपेक्षित क्यों न हो, तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि यदि तुम चाहो तो प्रशासन को पंगु बना दो। तुम्हीं तो रेलों और तारों की व्यवस्था चलाते हो तुम्हीं तो हो जो बंदोबस्त करते और राजस्व की वसूली करते हो....।"<sup>16</sup>

20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों विपिन चंद्र पाल और जी. सुब्रमण्यम अय्यर आदि नेताओं ने मजदूरों के हितों की रक्षा के लिये कानून बनाने की मांग शुरू कर दी। 1903 में जी. सुब्रमण्यम अय्यर ने इस बात पर जोर दिया कि मजदूरों को आपस में मिलकर संगठित होना चाहिए और अपने अधिकारों को लेकर संघर्ष करने के लिये उन्हें यूनियन बनानी चाहिए और इस लक्ष्य को पाने के लिए जनता को उनकी हर तरह से मदद करनी चाहिए।

जब लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा की तो उसके परिणामस्वरूप स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन प्रारंभ हो गया। स्वदेशी आंदोलन के दौरान राष्ट्रवादी नेताओं ने मजदूरों को ट्रेड यूनियन बनाने, कोष एकत्र करने, हड़ताल करने तथा कानूनी रूप से काफी मदद पहुँचाई। मजदूरों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने का प्रयास किया गया और इसमें वे सफल भी रहे। जो मजदूर अब तक सिर्फ आर्थिक मांगों को लेकर संघर्ष और आंदोलन कर रहे थे, उनके अपने आंदोलन और संघर्ष में उस समय के व्यापक राजनीतिक मुद्दे भी शामिल हो गया। जिस दिन बंगाल का विभाजन किया गया, 16 अक्टूबर 1905 को सारे देश में आंदोलन की लहर उठ खड़ी हुई। इसमें बंगाल के मजदूर वर्ग ने समर्थन में हड़ताल की। स्वदेशी तथा बहिष्कार आंदोलन बंगाल के बाहर भी फैल गया। विशेष तौर पर तिलक ने महारष्ट्र में इस आंदोलन का प्रचार किया। तिलक मजदूर वर्ग को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने में सफल रहे। जब 22 जुलाई 1908 को तिलक को देशद्रोह के मुकदमें में सजा सुनाई गई थी। उस दिन बंबई के सारे बाजार बंद रहे और एक हफ्ते तक यह बंद जारी रही। बंबई की सभी 80 कपड़ा मिलों और रेल मजदूरों ने छह दिन की हड़ताल की। पुलिस ने जब मजदूरों को काम पर वापस भेजने के लिये मजबूर किया, तो मजदूरों ने उसका जमकर विरोध किया। पुलिस और मजदूरों के बीच कई जगहों पर संघर्ष हुआ, ब्रिटिश सरकार ने मजदूरों के दमन के लिए सेना बुलाई। 16 मजदूर मारे गए और लगभग 50 मजदूर गंभीर रूप से घायल हुए। मजदूरों के इस संघर्ष की सराहना लेनिन ने भी की कि भारत मजदूर वर्ग अब राजनीति में सक्रिय हिस्सा लेने लगा है।<sup>17</sup>

स्वदेशी आंदोलन के दौरान श्रमिक आंदोलन इतना प्रबल रूप में उभरा कि एक Anglo-Indian अखबार Pioneer ने 27 अगस्त 1906 को लिखा कि "राजनीतिक विभाजन के संबंध और इसके विरोध में जी भर कर आंदोलन करें, किंतु अब जबकि वे अज्ञानी श्रमिकों के मन में असंतोष का बीज बोकर पूरे प्रांत के लिए खतरा उत्पन्न करना चाहते हैं। समय आ गया है कि कानून और व्यवस्था स्थापित करने वाली सरकार अपनी ताकत दिखाए।"<sup>18</sup> सरकार ने आंदोलन को दबाने के लिए दमन का सहारा लिया। लेकिन मजदूरों के मन में जो असंतोष का बीज उत्पन्न हो गया था, उसे दबाया नहीं जा सका और इस दौरान भारतीय श्रमिक वर्ग काफी हद तक राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में शामिल हो गया।

स्वदेशी आंदोलन के पश्चात् एक सरकारी सर्वेक्षण कराया गया जिसका शीर्षक था- "Administration of Bengal under Andrew Preser" इसमें औद्योगिक असंतोष को 1903-08 की अवधि का महत्वपूर्ण लक्षण बताया गया था और पेशेवर आंदोलन कारियों की भूमिका को एक नितांत नवीन संवृत्ति कहा गया था।<sup>19</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि मजदूर वर्ग भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का एक अभिन्न अंग बन गया। स्वदेशी आंदोलन के पश्चात जितने भी आंदोलन हुए उसमें मजदूरों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। आगे

चलकर देश की जनता को महात्मा गाँधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ जिन्हें समाज के सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त था। मजदूर वर्ग ने भी उनके नेतृत्व में प्रत्येक आंदोलन में हिस्सा लिया और आंदोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में मजदूर वर्ग वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होने लगे। वामपंथियों ने कई मौकों पर राष्ट्रीय आंदोलन से अलगाव की नीति अपनाई। लेकिन अधिकांश मजदूरों ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

### सन्दर्भ ग्रंथसूची

1. बी०एल० ग्रोवर, *यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास*, नई दिल्ली, 2006, पृ०-448.
2. चोपड़ा पुरी, दास, *भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास*, भाग-3, नई दिल्ली 2012, पृ०-144.
3. बी०एल० ग्रोवर, पूर्वोद्धृत, पृ०-448.
4. एन०सी०ई०आर०टी० *विश्व इतिहास के कुछ विषय*, वर्ग-XI पटना, 2007, पृ०-210.
5. बी०एल० ग्रोवर, पूर्वोल्लिखित, पृ०-347.
6. उपरोक्त, पृ० 206-207.
7. उपरोक्त, पृ०-347
8. सुमित सरकार, *आधुनिक भारत*, नई दिल्ली, 2010, पृ०-105.
9. बी०एल० ग्रोवर, पूर्वोल्लिखित, 450.
10. उपरोक्त, पृ०-450.
11. बिपिन चन्द्र, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*, नई दिल्ली, 2000, पृ०-164.
12. सुमित सरकार, पूर्वोल्लिखित, पृ०-59.
13. एन०सी०ई०आर०टी०, *इतिहास की दुनिया*, वर्ग-X, पटना, 2010-11, पृ०-27.
14. उपरोक्त, पृ०-28.
15. बिपिन चन्द्र, पूर्वोल्लिखित, पृ०-158.
16. सुमित सरकार, पूर्वोल्लिखित, पृ०-118.
17. बिपिन चन्द्र, पूर्वोल्लिखित, पृ०-74.
18. सुमित सरकार, पूर्वोल्लिखित, पृ०-137.
19. उपरोक्त - पृ०-136.

# महात्मा गाँधी: सत्याग्रह की अवधारणा

गीता यादव

लेक्चरर, रामलखन सिंह महाविद्यालय, बेतिया

सत्याग्रह की विधि, राजनीति को गाँधी का एक महत्वपूर्ण योगदान है। गाँधी को इसकी प्रेरणा रूपी लेखक-विचारक तॉल्स्टॉय की रचनाओं से मिली। अमरीकी विचारक थ्यूरो ने भी सविनय अवज्ञा के विचार का प्रतिपादन किया था, और व्यक्तिगत तौर पर इसका प्रयोग भी किया था। गाँधी ने इसे और भी विकसित किया, और पहली बार इसे बड़े पैमाने पर राजनीति में इसका इस्तेमाल किया। सत्याग्रह की विधि पर प्रयोग गाँधी ने पहले-पहल दक्षिण अफ्रीका में उन कानूनों के विरुद्ध किया जिनके द्वारा भारतीय लोगों के साथ भेदभाव बरता जाता था। उस समय इस विधि को 'निष्क्रिय प्रतिरोध' (Passive resistance) के नाम से जाना जाता था। बाद में गाँधीवाद में गाँधी ने इसे "सत्याग्रह" का नाम दे दिया, क्योंकि उनके अनुसार यह निष्क्रिय नहीं, बल्कि एक सक्रिय विधि है।

भारत की स्वतंत्रता के आन्दोलन में गाँधी ने पहली बार सत्याग्रह की विधि का इस्तेमाल चम्पारण (बिहार); में किया। इसके बाद से सारे भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध इसका बड़े पैमाने पर इस्तेमाल हुआ। स्वतंत्रता मिलने के बाद भी भारत की राजनीति में विभिन्न राजनीतिक दलों और गैर-दलीय समूहों एवं आन्दोलनों द्वारा इस विधि का प्रयोग किया गया है। सत्याग्रह की विधि का इस्तेमाल सिर्फ सरकार के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि छूआछूत जैसी सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध भी किया गया है। गाँधी के अनुसार सत्याग्रह की विधि का इस्तेमाल परिवार में भी किया जा सकता है। "सत्याग्रह" शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है "सत्य" और "आग्रह"। "सत्याग्रह" का अर्थ है "सत्य के लिए आग्रह"। सत्याग्रही दृढ़ निश्चय के साथ, हर कष्ट को सहता हुआ और हर त्याग करता हुआ, सत्य पर टिका रहता है। गाँधी के अनुसार सत्य को अहिंसा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। "अहिंसा" की व्याख्या गाँधी भावात्मक रूप से करते थे। उनके अनुसार "अहिंसा" का अर्थ मात्र हिंसा का अभाव नहीं, बल्कि प्रेम है। सत्याग्रह में प्रेम और संयम के साथ सामने वाले व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है। इस तरह, सत्याग्रह की विधि सत्य और अहिंसा के नैतिक मूल्यों पर आधारित है।

सत्याग्रह की विधि सत्य और अहिंसा के नैतिक मूल्यों पर तो आधारित है ही। इसके अलावा, सत्याग्रह के मूल में यह विश्वास भी निहित रहता है कि प्रत्येक मानव मूलतः स्वभाव से अच्छा होता है। इसलिए, सत्याग्रह का उद्देश्य सामने वाले व्यक्ति को पराजित या अपराजित करना नहीं होता है; बल्कि उसकी अन्तर्निहित मानवीय भावनाओं को जगाकर, उसके विचारों में परिवर्तन लाना होता है। सत्याग्रही का उद्देश्य प्रेम द्वारा गलत काम करने वाले व्यक्ति की न्याय की भवना को जगा कर उसे सुधारना होता है। गाँधी साध्य और साधन की एकता में विश्वास रखते थे। उसकी यह मान्यता थी कि साधन को साध्य के अनुरूप होना चाहिए उनके अनुसार आदर्श समाज के सत्य और अहिंसा पर आधारित होना चाहिए, और इस लक्ष्य को सत्य और अहिंसा पर आधारित विधि या सत्याग्रह की विधि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

गाँधी के अनुसार सत्याग्रह का इस्तेमाल अंतिम औजार के रूप में में किया जाना चाहिए। सत्याग्रही व्यक्ति को पहले निष्पक्ष भाव से इस बात की जाँच कर लेनी चाहिए कि उसकी अपनी माँगे सही या न्यायोचित है या नहीं। उसे अपने दिमाग से समाने वाले व्यक्ति के प्रति हिंसा और नफरत की भावना को पूरी तरह निकाल देना चाहिए। पहले सामने वाले व्यक्ति को समझा-बुझा कर

उसके विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना चाहिए। हर कदम पर सामने वाले व्यक्ति को सुधरने का पूरा मौका देना चाहिए। अगर इसमें सफलता न मिले, तभी अन्तिम विकल्प के रूप में सत्याग्रह का रास्ता अपनाना चाहिए। वैसे, व्यापक अर्थ में सामने वाले व्यक्ति को समझाने का प्रयत्न भी सत्याग्रह का अंग है।

गाँधी के अनुसार सत्याग्रह की विधि को अपनाने के लिए नैतिक तैयारी जरूरी है। सत्याग्रही को निस्वार्थ, निर्भय, ईमानदार और अनुशासित होना चाहिए। इसके अलावा, सत्याग्रही को कष्ट सहने और त्याग करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। सत्याग्रही को मन, वचन और कर्म से सत्य और अहिंसा का पालन करना चाहिए। सत्याग्रही को मन, वचन और कर्म से सत्य और अहिंसा का पालन करना चाहिए। सत्याग्रही की कथनी और करनी में एकता भी बहुत जरूरी है। सत्याग्रही व्यक्ति को सबसे पहले अपने-आप को उन बुराइयों से मुक्त कर लेना चाहिए, जिनके विरुद्ध वह संघर्ष कर रहा हो। इन सब बातों के अलावा यह भी जरूरी है कि सत्याग्रही मानव की अन्तर्निहित अच्छाई में विश्वास रखता हो। अगर नैतिक तैयारी के बिना सत्याग्रह की विधि का उपयोग किया जाए, तो वह प्रभावी नहीं रह जाता है, और सफलता की संभावना भी कम हो जाती है।

गाँधी के अनुसार सत्याग्रह कमजोर लोगों का हथियार नहीं है। सत्याग्रह के लिए हर तरह का कष्ट-लाठी, गोली और यहाँ तक कि मृत्यु-का सामना करने का साहस चाहिए। अगर सत्याग्रही व्यक्तियों में अपनी माँगों के न्यायोचित होने पर पूरा विश्वास न हो, और दमन का सामना करने का नैतिक बल न हो, तो फिर ऐसे में सत्याग्रह पर आधारित आन्दोलन अधिक समय तक चल नहीं सकता है।

सत्याग्रह के कई रूप हैं—

- (i) **सविनय अवज्ञा**— इसके अन्तर्गत किसी अनुचित समझे जाने वाले कानून को तोड़ने, और टैक्स नहीं देने का अभियान शामिल है। लेकिन कानून तोड़ने के बाद सत्याग्रही स्वेच्छा से उसकी सजा भुगतने के लिए भी तैयार रहता है। उदाहरण के तौर पर, स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गाँधी द्वारा “नमक सत्याग्रह” के जरिए नमक कानून को तोड़ा गया था।
- (ii) **असहयोग**— अन्याय करने वाले व्यक्ति या सरकार से असहयोग करना।
- (iii) **बन्द या हड़ताल**— विरोध व्यक्त करने के लिए काम-काज बन्द कर देना।
- (iv) **अनशन**— विरोध व्यक्त करने के लिए, किसी माँग के समर्थन में या अच्छी भावनाओं को जगाने के लिए उपवास करना। गाँधी ने हिन्दू-मुस्लिम दंगों को शान्त करने के लिए और कई अन्य अवसरों पर आमरण अनशन का सहारा लिया था।

कभी-कभी यह प्रश्न भी उठता है कि सत्याग्रह की विधि संवैधानिक है या असंवैधानिक। भारत जैसे संसदीय लोकतंत्र में सत्याग्रह की विधि को अपनाने का क्या औचित्य है? सत्याग्रह के अन्तर्गत कई बार नागरिकों द्वारा उन कानूनों को जान-बूझकर तोड़ा जाता है, जिन्हें वे अन्यायपूर्ण समझते हैं इसलिए, अगर हम संवैधानिक विधि की व्याख्या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त विधि के रूप में करते हैं, तो सत्याग्रह की विधि असंवैधानिक मालूम देती है। लेकिन सत्याग्रह के अन्य रूप भी हैं, जैसे, बन्द या हड़ताल।

अगर किसी मुद्दे पर अपनी असहमति या विरोध व्यक्त करने के लिए नागरिक स्वेच्छा से काम-काज बन्द कर देते हैं, तो इसमें असंवैधानिक कुछ भी नहीं है। सविनय अवज्ञा के अन्तर्गत सत्याग्रही द्वारा कानून को जरूर तोड़ा जाता है, लेकिन ऐसी स्थिति में भी सत्याग्रही उस कानून को तोड़ने की कानून द्वारा निर्धारित सजा भुगतने के लिए भी तैयार रहता है। इस तरह सत्याग्रही कानून को तोड़ते हुए भी सरकार के कानून बनाने और उसे लागू करने के अधिकार को चुनौती नहीं देता

है, बल्कि वह स्वयं कष्ट सह कर किसी कानून-विशेष के अन्यायपूर्ण चरित्र की ओर अपनी सरकार और आम जनता का ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए, सत्याग्रह की विधि को हिंसा और आतंकवाद की तरह पूरी तरह असंवैधानिक भी नहीं कहा जा सकता है। यह सही है कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में संवैधानिक विधि का दायरा काफी व्यापक है, और राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आम तौर से कानूनी तरीकों को ही अपनाना चाहिए लेकिन सत्याग्रह तो एक अन्तिम औजार है। गाँधी और जयप्रकाश जैसे सत्याग्रह के समर्थक भी अन्तिम विकल्प के रूप में ही सत्याग्रह की विधि का समर्थन करते थे।

सत्याग्रह, विशेष कर सविनय अवज्ञा के औचित्य के बारे में गाँधी के विचार बिल्कुल स्पष्ट हैं। गाँधी के अनुसार आम नागरिकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके सहयोग के बिना सरकार काम नहीं कर सकती है। इसलिए, उन्हें सरकार के कल्याणकारी कार्यों में, अच्छे कानूनों का पालन करने में, और राज्य की रक्षा करने में सरकार के साथ पूरा सहयोग करना चाहिए।

लेकिन दूसरी ओर, अगर राज्य जनता का शोषण करे, उनके विकास में बाधा उत्पन्न करे, तो नागरिकों का यह दायित्व हो जाता है कि वे अपना सहयोग वापस ले लें; और नैतिक दबाव एवं अहिंसक असहयोग द्वारा सरकार को सुधरने के लिए बाध्य करे। संक्षेप में, सरकार द्वारा अनैतिक और अन्यायपूर्ण आचरण ही सत्याग्रह का औचित्य है। सरकार द्वारा बनाए गए अनैतिक कानूनों का पालन करना नागरिकों का नैतिक दायित्व नहीं है। सत्याग्रह की विधि सामाजिक-राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक उत्तम विधि है। यह सत्य और अहिंसा के मूल्यों पर आधारित एक उच्च आदर्श है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक विधि और अन्तिम विकल्प के रूप में सविनय अवज्ञा का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हिंसा और आतंकवाद के इस्तेमाल का कोई नैतिक औचित्य नहीं है। जहाँ पर परिस्थितियाँ अलोकतांत्रिक हो, वहाँ पर भी जहाँ तक सम्भव हो, इस विधि का इस्तेमाल किया जाना चाहिए, जैसा कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में किया गया था।

सत्याग्रह के मूल में सामने वाले व्यक्ति की अच्छाई में विश्वास निहित है। इसलिए, सत्याग्रह की सफलता बहुत कुछ सामने वाले की अच्छाई पर निर्भर है। हिटलर और स्टालिन जैसे निर्मम और क्रूर तानाशाहों के सामने सत्याग्रह की विधि कितनी कारगर होगी, इसमें संदेह है।

चीन की राजधानी बेइजिंग के प्रमुख चौराहे पर जब लोकतंत्र-समर्थक छात्र-युवा चीनी सेना के टैंकों के आगे लेट गए, तो उन्हें निर्ममता पूर्वक टैंकों द्वारा कुचल दिया गया। इसी तरह, इसमें भी संदेह है कि विदेशी आक्रमणकारी सेना के सामने सत्याग्रही क्रूर तानाशाहों या आक्रमणकारी सेनाओं की “अन्तर्निहित मानवीय भावनाओं” को जगाने के प्रयत्न में अपने जान की बलि चढ़ा दे। सेना का मुकाबला सेना के जरिए ही किया जाना चाहिए। लेकिन एक लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह की विधि कारगर हो सकती है।

### संदर्भ सूची:

1. Economics of Alternatives : Khadi and Village Industries : Shyam Mohan, Janki Prakashan, 2001
2. महात्माँ गाँधी का समाज दर्शन: महादेव प्रसाद, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1973
3. समाज और राजनीति दर्शन: डॉ० रमेन्द्र, मोतीलाल बनारसी दास, 2003
4. गाँधीजी की देन: डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2008
5. महात्मा गाँधी का सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन: डॉ० अनुराधा कुमारी, प्राच्य प्रकाशन, पटना, 2009
6. मेरी विचार यात्रा: जयप्रकाश नारायण, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2004
7. नील-संघर्ष और गाँधी: ब्रजकिशोर सिंह, प्राच्य प्रकाशन, पटना, 2009

# “स्वतंत्रता संग्राम में तिरहुत प्रमंडल के सारण एवं चम्पारण के मध्यमवर्गीय नेताओं की भूमिका” 1917 A.D से 1942 A.D तक

कुमार विशाल

शोध विद्यार्थी, सारण, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

19वीं शताब्दी के अन्तिम 25 वर्ष के दौरान बिहार में राजनीतिक क्रियाकलापों का मुख्य लक्ष्य, बिहार वासियों की विशेष राजनीतिक पहचान बनाना था। हालांकि वे लोग समाज के सिर्फ उच्च वर्ग तक ही सीमित थे। मोटे तौर पर अधिकांश आबादी किसी प्रकार की राजनीतिक गतिविधियों में शामिल नहीं थी।

चम्पारण में गाँधी जी की यात्रा बिहार के कुछ लोगों के अनुरोध पर हुई। इन लोगों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 31वें अधिवेशन (दिसम्बर 1916) के दरमियान लखनऊ में गाँधी जी से भेंट की थी। इसका खास कारण यह था कि इस प्रान्त से संबद्ध दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव इस अधिवेशन में प्रस्तुत किए जानेवाले थे। इनमें एक था पटना विश्वविद्यालय विधेयक और दूसरा चम्पारण के नीलहे साहबों एक उनके रैयतों के संबंध पर।

श्री राजकुमार शुक्ला, जिन्हें नीलहे साहबों की ज्यादतियों का व्यक्तिगत कटु अनुभव था, चम्पारण के किसानों के प्रतिनिधि के रूप में लखनऊ कांग्रेस में भाग लेने गए थे। इनके विषय में गाँधी जी के शब्द हैं, “श्री शुक्ल बिहार के हजारों लोगों पर से नील के कलंक को धो देने को कृतसंकल्प थे।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में 1917 ई0 में चलाया गया चम्पारण आन्दोलन बिहार की जनता को राजनीतिक बनाने में एक बहुत बड़ा कदम था। इस आन्दोलन में किसान तथा मध्यम वर्ग के लोगों में जागृति आई, आत्म विश्वास जगा और आशा की किरण दिखाई पड़ी। उन्हें विश्वास होने लगा कि यह आन्दोलन और संघर्ष उनकी मांगों की पूर्ति में सहायक सिद्ध होगा। महात्मा गाँधी के कारण बिहार के कांग्रेसी नेता किसानों के नजदीक आने लगे और उन्हें यह अहसास हुआ कि बिना किसानों के समर्थन और सक्रिय सहयोग के राष्ट्रीय आन्दोलन कागर नहीं होगी।

दिसम्बर 1920 का कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन कांग्रेस के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण है। गुजरात प्रान्तीय सम्मेलन कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के लगभग एक महीना पूर्व बुलाया गया था जिसमें अब्बास तैयबजी की अध्यक्षता में गाँधी जी ने असहयोग का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और भारी बहुमत से वह स्वीकृत हुआ।

बिहार में प्रान्तीय कांग्रेस समिति की बैठक 31 जुलाई को सर्चलाइट कार्यालय में हुई। हाई कोर्ट के एक वकील श्री एस0 सी0 मित्र की अध्यक्षता में कई प्रस्तावों के साथ स्वीकृत हुआ। इस समिति में निम्नलिखित व्यक्ति रहे:- मजहरूल हक, हसन इमाम, गणेशदत्त सिंह, राजेन्द्र प्रसाद और अयोध्या

प्रसाद। अगस्त तक अपनी रिपोर्ट समर्पित कर दे एवं इस समिति की बैठक उस पर विचार करने के लिए 10 तारीख को होगी।

बिहार प्रान्तीय सम्मेलन के 12वें अधिवेश भागलपुर में श्री राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुआ था। राजेन्द्र बाबू ने अपना भाषण हिन्दी में किये थे और उसमें “असहयोग पर विशेष रूप से बल दिये थे”।

16 अगस्त 1921 ई० को अखिल भारतीय कांग्रेस वर्किंग कमिटी की बैठक पटना के सदाकत आश्रम में हुई। गाँधी जी के अतिरिक्त इसमें पंडित मोतीलाल नेहरू, राजेन्द्र बाबू, मौलाना मुहम्मद अली और सेठ जमुना लाल बजाज उपस्थित थे। इस बैठक में 11 प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इसमें सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के संबंध में थे।

देश में असहयोग आन्दोलन जोड़ पर था इसी बीच एक अप्रत्याशित घटना 5 फरवरी 1922 को तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के गोरखपुर जिलाअन्तर्गत चौरी चौरा में एक क्रुद्ध भीर ने थाना में आग लगा दी जिसमें 22 पुलिस जवान जिन्दा जल गये। जिससे गाँधी जी को भारी आघात पहुँचा। 12 फरवरी को बारदोली कांग्रेस वर्किंग कमिटी की बैठक गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया। गाँधी जी के इस निर्णय से कांग्रेसी नेताओं एवं कार्यकर्ताओं को क्षोभ हुआ। जिसके चलते अनेक लोगों ने इनकी आलोचना की। इस अवसर पर बिहार प्रतिनिधि ने गाँधी जी का समर्थन किया।

काँग्रेस कार्यकारिणी की एक बैठक अहमदाबाद में 15 फरवरी 1930 को हुई। इसमें सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। 12 मार्च 1930 ई० गाँधी जी ने अपने 78 अनुयायियों के साथ दाण्डी मार्च के लिए निकल पड़े। 15 अप्रैल 1930 ई० को दाण्डी (नवसारी जिला गुजतरात) पहुँचे। 6 अप्रैल 1930 को नमक कानून का उल्लंघन किया क्योंकि नमक पर ब्रिटिश हुकुमत का एकाधिकार था।

बिहार में अपना कोई समुद्र तट नहीं था इसलिए यहाँ के लोग सोडा से नमक तैयार करते थे। इसलिए राजेन्द्र बाबू ने बिहार में कुछ स्थानों पर सोडा से नमक तैयार करने के अतिरिक्त चौकीदारी टैक्स देना बंद करने से सत्याग्रह आरम्भ करने को गाँधी जी की अनुमति माँगी। बिहार में गाँव के हर परिवार को चौकीदारी टैक्स देना पड़ता था।

विदेशी सरकार के संघर्ष हेतु बिहार में पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी। 6 जुलाई को स्थिति पर विचार करने के लिए वर्धा में कांग्रेस कार्यकारिणी ने 14 जुलाई 1942 को सुप्रसिद्ध “भारत छोड़ो” प्रस्ताव स्वीकृत किया तथा उसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बम्बई में होने वाले बैठक के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्णय किया गया। यह बैठक 7 अगस्त से शुरू हुआ और 8 अगस्त तक चला। 8 अगस्त 1942 को गाँधी जी ने इसी अधिवेशन में करो या मरो का नारा दिया उन्होंने कहा कि हम या तो भारत को स्वतंत्र करेंगे या संघर्ष में अपना बलि देंगे। हम देश को अंग्रेजों के गुलामी की बेड़ियों में बंधे हुए देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेंगे।

## Conclusion

भारत की आजादी की लड़ाई में मुख्य भूमिका मध्यम वर्ग की ही थी। डॉ० रामशरण शर्मा की मान्यता है कि बिहार में जमीन्दारों के यहाँ काम करने वाले अधिकारियों, मैनेजरों और इसी तरह के कारिन्दों के बच्चे जो ऊँची शिक्षा ले चुके थे या ले रहे थे- उनकी अहम भूमिका आजादी की लड़ाई

में थी। वकील, अध्यापकों, छोटे-मोटे अधिकारियों जो मध्यवर्ग से आते थे आजादी की जंग के हर मुकाम पर भाग ले रहे थे। जेल जाते, लाठिया खाते, फांसी के तख्ते पर झूल जाने के लिए तैयार रहते थे। अपने हित की जगह देश के हित को सर्वोपरि माना। इसमें सर्वाधिक योगदान छात्रों का था।

### संदर्भ ग्रंथ:-

1. बुकलैण्ड
2. आत्म कथा, पृष्ठ- 4941
3. आत्म कथा- पृष्ठ 608- 609
4. नन कार्पोरेशन एण्ड खिलाफत मूवमेंट एवं बिहार ऐण्ड उड़ीसा, पृष्ठ- 8
5. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा गाँधी एण्ड बिहार- पृष्ठ सं0- 40
6. बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास डॉ0 के0 के0 दत्त- पृ0- 54
7. चम्पारण सत्याग्रह- डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद
8. वही पृष्ठ सं0- 589- 90

# हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

विनय कुमार

शोधकर्ता, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कहानी व्यक्ति की अनुभूतियों के क्षय का विस्तार है। यह विस्तार स्वानुभूति के साथ परानुभूति को भी स्वानुभूति के स्तर पर अभिव्यक्त करता है। कविता इस रूप में कहानी के समीप जान पड़ती है। दोनों में अन्तर केवल कथन का है। कविता लय में जीती है, कहानी भंगिमा में। इसी भंगिमा में कहानी का सौन्दर्य निहित है। इसके बावजूद कहानी की जगह कविता ही आलोचकों को प्रिय रही है। इसका प्रमुख कारण कहानी विधा की प्रकृति को माना जाता है। कहानी वैसी चुनौती प्रस्तुत नहीं कर सकती, जितनी कविता। विश्लेषणसह्य कविताएँ अधिक होती हैं, जबकि कहानियाँ कम। यह इसलिए कि कहानी का मूलधर्म घटनात्मकता है, जबकि कविता का मूलधर्म भावात्मकता है। इसी तरह उपन्यास और कहानी दोनों ही साहित्य की गद्य विधा है। इसमें जीवन की व्याख्या एक निश्चित उद्देश्य से होता है। इन दोनों में मुख्य रूप से मूल अंतर यह है कि उपन्यास में जीवन का तुलनात्मक अधिक व्यापक चित्रण होता है और कहानी में एक घटना अथवा व्यक्ति विशेष का चित्रण होता है। कहानी सचमुच साहित्य की एक विधा है, जिसका मूल उद्देश्य है जीवन की व्याख्या के साथ-साथ मनुष्य की अनुभूतियों को आन्दोलित करना और उसे अपरिमित मनोरंजन अथवा रस प्रदान करना।

आधुनिक युग में कहानी साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में उभरी है। कहानी के स्वरूप तथा महत्व को समझने के लिए आवश्यक है कि पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा दी गयी इसकी परिभाषा को ठीक से जाना जाए। प्रेमचन्द के अनुसार 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें नायक महफिल शुरु होते ही अपनी पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है। एक क्षण में चित्र को अपने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर कहानी सुनने से भी नहीं हो सकता।' इसी प्रकार राधाकृष्ण कहानी को सौन्दर्य की एक झलक का रस स्वीकारते हैं। उनके अनुसार यह झलक इतनी होती है कि उसकी स्थाई रेखा अपने अन्तर्पट में अंकित हो जाती है। श्यामसुन्दर दास की दृष्टि में 'कहानी का एक निश्चित लक्षण है तथा इसका प्रभाव नाटकीय आख्यान है'।

जैनेन्द्र कुमार के अनुसार- 'कहानी तो एक भूख है, जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, आशंकाएँ होती हैं, चिंताएँ होती हैं, हम ही उसका उत्तर देने, उसके समाधान किये जाने और पाने का सतत् प्रयत्न करते रहते हैं। हमारा प्रयोग होता रहता है, उदाहरण और खोज होते रहते हैं। कहानी उस खोज के प्रयास का एक उदाहरण है।'

अज्ञेय के विचार में- 'कहानी जीवन की परिभाषा है और जीवन स्वयं अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।' इलाचंद जोशी के अनुसार 'जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष में उल्टा-सीधा चलता रहता है।' इस सुवृहद् चक्र की विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति का प्रदर्शन ही कहानी होती है।

डॉ० गगनदेव चौधरी की दृष्टि में- 'कहानी जीवन की मार्मिक घटनाओं की सकारात्मक अभिव्यक्ति है। वह अनंत अतीत से चलकर अनंत भविष्य की ओर जा रही है और जाती रहेगी। उसमें जीवन धड़कन मापने की अद्भुत क्षमता होती है।'

सामान्यतः कहानी के छह तत्व माने गये हैं-

1. कथावस्तु
2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण
3. कथोपकथन एवं संवाद
4. भाषा एवं शैली
5. वातावरण एवं देश काल
6. उद्देश्य एवं विषय।

अभिव्यक्ति की दृष्टि से सामान्यतः कहानी की निम्नांकित शैलियाँ प्रचलित हैं-

- क) वर्णनात्मक शैली (साधारण शैली)
- ख) आत्मकथात्मक शैली (आत्मचरितात्मक शैली)
- ग) कथोपकथन शैली (वार्तालाप-डायलॉग)
- घ) पत्रात्मक शैली
- ङ) डायरी शैली

कहानी के लिए 'गल्प', 'आख्यायिका', 'गाथा', 'आख्या', 'वृत्तान्त' आदि पर्याय का प्रयोग हुआ है। 'कथा' का साधारण अर्थ 'जो कहा जाए' है। कथा शब्द ही अपभ्रंश में 'कहा' का रूप ग्रहण कर अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि भाषाओं में कहनी, कहानी आदि पदों में बदल गया है। 19वीं सदी के आरंभ में इंशा अल्ला खाँ ने अपनी रोमानी गद्य-कथा 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र ने अपनी पौराणिक कथा को 'नासिकेतोपाख्यान' कहा है। 19वीं शताब्दी के पहले तीन चरणों में मुद्रित हिन्दी कथाओं के लिए 'कहानी', 'उपाख्यान', 'वृत्तान्त' आदि पद प्रचलित थे। 'सरस्वती' के प्रकाशनारंभ (1900 ई०) के साथ इसके पहले अंक में प्रकाशित रचना 'इन्दुमती' को गोस्वामी जी ने जहाँ 'आख्यायिका' कहा है, वहीं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'कहानी' कहा। संभवतः प्रथम बार हिन्दी में आख्यायिका शब्द का प्रयोग बाबू श्यामसुंदर दास ने किया। प्रेमचन्द में 1908 ई० में 'सोजेवतन' में इसे कहानी पद के रूप में प्रयोग किया। शुक्लजी की स्वीकृति की मुहर लगने के बाद चौथे दशक में शॉर्ट स्टोरी के लिए लघु-कथा (संक्षेप में कहानी) पद आलोचकों और कहानीकारों दोनों के बीच लगभग सर्वमान्य हो गया।

आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास जहाँ एक ओर परम्परा से संबद्ध था, वहीं दूसरी तरफ पश्चिम की परिकल्पना का संयोजन हुआ। हिन्दी की प्रथम कहानी को लेकर हिन्दी समाज में मतैक्य का अभाव है। कुछ आलोचक 'रानी केतकी की कहानी' (1803) तो कुछ शिव प्रसाद सितारे हिंद

विरचित 'राजा भोज का सपना' (1886) को प्रथम कहानी घोषित करते हैं। परंतु कथा बुनावट एवं शैली मध्यकालीन न होने के कारण इस उद्घोषणा में दम नहीं है। हिन्दी में आधुनिक ढंग की कहानियों का लिखा जाना 20वीं शताब्दी के पहले दशक में प्रारंभ हुआ। 'सरस्वती' में प्रकाशित मौलिक कहानियों की सूची आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में इस प्रकार दी है-

इन्दुमती (किशोरी लाल गोस्वामी)	-	1900 ई०
गुलबहार (किशोरी लाल गोस्वामी)	-	1902 ई०
प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवान दास)	-	1902 ई०
ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल)	-	1903 ई०
पंडित और पंडितानी (गिरजादत्त वाजपेयी)	-	1903 ई०
दुलाई बाई (बंग महिला)	-	1907 ई०

'इन्दुमती' को शेक्सपीयर के नाटक 'टेम्पेस्ट' के कथानक की छाया होने के कारण उसे हिन्दी की प्रथम कहानी नहीं मानी जा सकती है। सन् 1968 में श्री देवी प्रसाद वर्मा ने माधव राव सप्रे द्वारा रचित कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) के पक्ष में मत रखा है। परंतु यह भी आधुनिक ढंग की नहीं है। इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानी जा सकती है। उपर्युक्त सभी हिन्दी की प्रारंभिक कहानी है। कथा-शिल्प की दृष्टि से इनमें अपरिपक्वता मौजूद है। रूप की दृष्टि से ये सीधी-सादी वर्णनात्मक कहानियाँ हैं। 'दुलाई बाई' का अंत थोड़ा नाटकीय अवश्य है परन्तु ये कहानियाँ शैशवावस्था को ही दर्शाती हैं। प्रसाद और प्रेमचन्द एक ही युग के रचनाकार होते हुए भी अपनी प्रेरणा, भावना, रचनादृष्टि के धरातल पर एक-दूसरे से काफी भिन्न थे। यहाँ भिन्नता को परस्पर विरोधी न मानकर परस्पर पूरक और सहयोगी कथा-धाराएँ मानना चाहिए। आगे भी इसी पथ पर अनेक कहानीकार सक्रिय रहे तथा अपना-अपना रचनात्मक योगदान दिया।

## प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी

'नई कहानी' आंदोलन के समानांतर इस काल (1950-60) में आंचलिक कहानी का विशेष आंदोलन उभरकर सामने आया। आगे नयी कहानी की आत्मपरकता और रूपवादी प्रकृति के विरोध में 'सचेतन कहानी' (1960-65 ई०) की धारा चली। इस कहानी-धारा के प्रवर्तक 'महीप सिंह' हैं। सन् 1972 में कमलेश्वर ने समानांतर कहानी-आंदोलन की नींव डाली। सन् 1979 में राकेश वत्स ने अपनी पत्रिका मंच-79 के द्वारा 'सक्रिय कहानी' का आंदोलन खड़ा किया, जिसमें चित्र मुद्गल, रमेश बतरा, स्वदेश दीपक आदि ने प्रबल योग दिया। सन् 1982 में दिल्ली में जनवादी लेखक संघ की स्थापना एवं उसके राष्ट्रीय अधिवेशन के साथ ही हिन्दी में जनवादी लेखन को काफी प्रोत्साहन मिला। जनवादी कहानी अपनी मूल प्रकृति में सामान्य जन के संघर्ष का हिमायती है। समकालीन हिन्दी कहानी से अभिप्राय उस कहानी से है जो आज की परिस्थितियों का साक्षात्कार करती है और

बिना किसी पूर्वाग्रह के काल-सत्य को ईमानदारी के साथ चित्रित करती है। समकालीन कहानी कोई आंदोलन नहीं होकर, बल्कि वह स्वातंत्र्य रीति से साहित्य-साधना को प्रश्रय देती है। सृजय, उदयप्रकाश, राजी सेठ, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, निरूपमा सोबती, चित्रा मुद्गल, अब्दुल विस्मिल्लाह, प्रभा खेतान, मदन मोहन, शिवमूर्ति आदि समकालीन हिन्दी कहानी-धारा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

### सन्दर्भ

1. हिन्दी साहित्य: बदलते प्रतिमान, डॉ० आर. एन. वास्नेय
2. हिन्दी कहानी: पहचान और परख, इन्द्रनाथ मदान
3. हिन्दी कहानी: दो दशक की यात्रा, डॉ० रामदरश मिश्र

# ‘चंद्रगुप्त’ में वर्णित प्रसाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना

संजीव शर्मा

शोधार्थी, पीएच०डी०, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

अपने अधिकांश नाटकों का कथानक इतिहास से लेने के बाद भी प्रसाद, वर्तमान से जुड़ते हुए; भविष्य में विलीन हो जाते हैं। वे अपने नाटकों में ‘मुक्ति’ के स्वर को प्रमुखता प्रदान करते हैं। यह ‘मुक्ति’ भारत और भारतीयों की मुक्ति मात्र न होकर, संपूर्ण मानव-जाति की मुक्ति है। अपनी ‘मुक्ति’ की इसी विशिष्ट अवधारणा के कारण प्रसाद अपने नाटकों की ‘रेंज’ में देश प्रेम, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गौरव-गाथा को प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं। प्रो. रमेश गौतम के शब्दों में कहें तो “प्रसाद की ‘एप्रोच’ शुद्ध भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की रही।”<sup>1</sup>

प्रसाद ने जहाँ भी ‘इतिहास’ का प्रयोग किया, वहाँ वह रचना भारतीयों में साहस-वीरता-गौरव की भावना भरकर, पराधीनता से मुक्ति का माध्यम बनी। प्रसाद ने अपने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को ‘इतिहास’ के आवरण में व्यक्त करने के कारण को स्पष्ट करते हुए कहा- “इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है, क्योंकि हमारी गिरी हुई दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें हमें पूर्ण संदेह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के उन महत्वपूर्ण घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है। जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।”<sup>2</sup> भारतीयों को शारीरिक के साथ-साथ मानसिक तौर पर भी गुलाम बनाने के लिए भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति को पाश्चात्य विद्वानों ने किस प्रकार विद्रूपित किया; यह पूर्व प्रकरण में हम देख चुके हैं।

प्रसाद ने अपने नाटकों द्वारा भारतीयों में भारतीय सभ्यता-संस्कृति के प्रति गर्व की भावना जगाने का प्रयास किया। अंग्रेज बार-बार कहते थे- भारत न एक राष्ट्र था, न है, ना ही भविष्य में होगा। ‘चंद्रगुप्त’ नाटक के माध्यम से प्रसाद ने अंग्रेजों की इस कुटनीति का विरोध कर ‘संपूर्ण आर्यावर्त’ को हमारे सामने रखा और हमें यह संदेश देने का प्रयास किया- भारत शुरू से एक राष्ट्र था, है और रहेगा। भारत की जिस विविधता को अंग्रेज सबसे बड़ी कमजोरी मानते थे, प्रसाद के लिए ‘अपनी विभिन्नता में एकता’ ही तो भारतीयों की सबसे बड़ी सांस्कृतिक विरासत है।

प्रसाद के समय का भारत पराधीन था परंतु प्रसाद ने ‘चंद्रगुप्त’ द्वारा यह अच्छी तरह दर्शाया कि प्राचीन काल से ही भारतीयों को अत्याचारी शासक को दंड देना अच्छी तरह आता है। आलोच्य नाटक में ‘चाणक्य’ नंद को उसके अत्याचारों के बारे में बताता है, तब जनता के पास सुनने का भी समय नहीं था। जनता अत्याचारी राजा नंद को जल्द से जल्द खत्म कर देना चाहती है -

“नागरिक : (बीच में रोककर हल्ला मचाते हुए)- पर्याप्त है। यह पिशाच लीला और सुनने की आवश्यकता नहीं, सब प्रमाण यहीं उपस्थित हैं।

चंद्रगुप्त : ठहरिये - (नंद से) कुछ उत्तर देना चाहते हो।

नंद : कुछ नहीं। (वध करो, हत्या करो का आंतक फैलता है।)”<sup>3</sup>

अपने युग की कुठित जनता को प्रेरित करने के लिए प्रसाद ने उन्हें दिखलाया- भारत वह भूमि है। जिसका गुणगान विदेशी तक करते थे। 'कार्नेलिया' द्वारा भारत के प्रति श्रद्धा भाव दर्शाते हुए 'अरुण वह मधुमय देश हमारा' गीत गवाना, यह कहलाना 'अन्य देश तो मानव की जन्मभूमि है भारत मानवता की जन्मभूमि है'; का यही आशय था। भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक गुणों से प्रभावित होकर सिंकदर जैसा योद्धा भी नतमस्तक होते हुए कहता है - "धन्य है आप। मैं तलवार खींचे हुए भारत में आया, हृदय देकर जाता हूँ।"<sup>4</sup> इस प्रकार सांस्कृतिक अस्मिता की समस्या से जूझ रहे भारतीयों को प्रसाद ने नवीन गौरव बोध प्रदान करने का प्रयत्न किया। सांस्कृतिक गौरव बोध के साथ-साथ भारतीयों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता हेतु अपना सर्वस्व त्याग करने को प्रेरित करना आवश्यक था। प्रसाद ने 'चंद्रगुप्त' नाटक में मालविका, अलका, चाणक्य, सिंहरण, चंद्रगुप्त जैसे आदर्श पात्रों की रचना इसी उद्देश्य से किया था। मालविका तो राष्ट्र-हित में अपने प्राणों का बलिदान हँसते-हँसते कर देती है।

अनेक लोगों की मान्यता है कि भारतीयों का सिद्धांत पूर्णतः अहिंसावादी है। प्रसाद ने उन लोगों के इस भ्रम को सिंहरण, चाणक्य के माध्यम से तोड़कर दिखलाया कि भारतीय आवश्यकतानुसार हिंसा का मार्ग प्राचीनकाल से ही प्रयोग करते रहे हैं-

“सिंहरण : आर्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी अस्त्रशास्त्र की।”<sup>5</sup>

“चाणक्य : एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध सिर पर मँडराने वाली विपत्तियों से रक्त-समुद्र की आँधियों से आर्यावर्त की रक्षा करने में असमर्थ प्रमाणित होंगे।”<sup>6</sup>

“चाणक्य : अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा अर्थशास्त्र और दंड-नीति की आवश्यकता है।”<sup>7</sup>

“चाणक्य : मेरे पास पाणिनि में सिर खपाने का समय नहीं। भाषा ठीक करने से पहले मैं मनुष्यों को ठीक करना चाहता हूँ, समझे।”<sup>8</sup>

उपरोक्त कथनों के आलोक में हम कह सकते हैं कि प्रसाद आवश्यकतानुसार 'हिंसा' के प्रयोग का भी समर्थन करते हैं।

'चंद्रगुप्त' नाटक में प्रसाद ने 'अलका और मालविका' के चरित्रों द्वारा भारतीय नारियों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने को प्रेरित किया है। अलका द्वारा प्रसाद भारतीयों को विशुद्ध 'कर्म' का संदेश देकर, क्रांति का पथ दिखलाते हैं -

“हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती  
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती  
अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,  
प्रशस्त पुण्य पथ है - बढ़े चलो, बढ़े चलो।  
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी।  
सपूत मातृभूमि के रूकों न शूर साहसी  
अराति सैन्य सिंधु में - सुवाड़वाग्नि से जलो।  
प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।”

'चंद्रगुप्त' के रचनाकाल (1931) का भारत सर्वत्र पराधीनता की बेड़ियाँ काटने को उद्धत था। विवेच्य नाटक में भारतीयों की इस मनःस्थिति को 'अलका' व्यक्त करते हुए कहती है - "पराधीनता से बढ़कर विडंबना और क्या है?"<sup>10</sup> इसके पूर्व जवाहरलाल नेहरू 'पूर्ण स्वराज्य' की माँग कर चुके

थे। प्रसाद ने नेहरु के स्वर में स्वर मिलाते हुए 'चंद्रगुप्त' द्वारा भारतीयों की स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र ही घोषित करवा दिया - "प्रत्येक निरपराध आर्य स्वतंत्र है, उसे कोई बंदी नहीं बना सकता।"<sup>11</sup> प्रसाद मात्र भारतीयों की स्वतंत्रता की ही बात नहीं करते। 'चाणक्य' द्वारा संपूर्ण मानव-जाति की स्वतंत्रता की स्पष्ट घोषणा करवाते हुए कहते हैं - "स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परंतु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है, जहाँ दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा ना पड़े।"<sup>12</sup>

पूर्वोक्त उद्धरण में 'दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा ना पड़े' की बात करके प्रसाद ने इतिहास को कालातीत करते हुए, एक ही वाक्य में तीनों कालों को समन्वित कर दिया। वहीं दूसरी ओर 'ब्रिटेन' के उस दोगलेपन को दर्शाया, जिसके अनुसार अंग्रेज स्वयं तो अपने देश में स्वतंत्रता के बड़े-बड़े दावे करते थे, हकीकत में संपूर्ण विश्व को परतंत्र बनाने के बहाने ढूँढ़ते रहते थे।

भारत की संपूर्ण स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों के साथ-साथ देशी राजाओं से भी मुक्ति आवश्यक थी। 'नंद' को मारकर प्रसाद ने, जनता को इन विलासी देशी राजाओं से मुक्ति का मार्ग दर्शाया है। साथ ही साथ 'मुक्ति' का साधन भी प्रसाद ने दिखलाया है। किसी भी आंदोलन की सफलता हेतु एक योग्य तथा कुशल नेतृत्व की परिकल्पना 'चाणक्य' के रूप में जनता के समक्ष प्रसाद ने प्रस्तुत किया था। अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' के कारण भारतीयों में बढ़ते अलगाववाद की भावना को उन्होंने 'राष्ट्र-मुक्ति' के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा माना। अंग्रेजों एवं उनके देशी राजवाड़ों ने इस अलगाववादी नीति का लाभ उठाकर किस प्रकार हिंदु-मुसलमान का शोषण किया, यह प्रसाद ने अच्छी तरह देखा था। 'चंद्रगुप्त' नाटक में 'हिंदू-बौद्ध' के संघर्ष के द्वारा नंद की इस चाल को पहचाना और 'दूसरे ब्राह्मण' द्वारा इसका सजीव चित्रण करवाया- "महापद्म का जारज-पुत्र नंद केवल शस्त्र-बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के सिर पर तांडव-नृत्य कर रहा है वह सिद्धांत विहीन, नृशंस, कभी बौद्ध का पक्षपाती कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेद-नीति चलाकर बल-संचय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचायी जा रही है।"<sup>13</sup> क्या अंग्रेजों ने भी हिंदु-मुसलमान को ऐसे ही धर्म के नाम पर मूर्ख बनाकर नहीं नचाया था? इसी नाटक में प्रसाद ने यह भी दर्शाया है कि शोषकों-अत्याचारियों का कोई एक धर्म विशेष नहीं होता। अपने शोषण-चक्र में शोषक किसी को धर्म के नाम पर रियायत नहीं देता - "चाणक्य: सच है बौद्ध अमात्य, परंतु यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण का भेद न रखेंगे।"<sup>14</sup>

अंग्रेजों ने भारतीयों के मध्य 'अलगाववादी' भावना को धर्म के साथ-साथ रंग, नस्ल, भाषा, जाति, प्रांत हर स्तर पर व्याप्त कर दिया था। भारत को एक राष्ट्र न मानने के पीछे अंग्रेजों की यही मंशा थी। प्रसाद का 'चाणक्य' इस समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करवाकर, इसका समाधान भी बतलाता है- "तुम मालव हो और यह मागध, यहीं तुम्हारे मान का अवसान है न? परंतु आत्म-सम्मान इतने से ही संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मगध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।"<sup>15</sup> प्रसाद के लिए भारत के किसी एक भाग का कष्ट, संपूर्ण भारत का कष्ट था। 'सिंहरण' 'गांधार' की दुरावस्था पर प्रसाद की 'राष्ट्रीयता' की इसी भावना को व्यक्त करते हुए कहता है- "गांधार आर्यावर्त से भिन्न नहीं है, इसलिए उसके पतन को मैं अपना अपमान समझता हूँ।"<sup>16</sup>

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद भारत की तत्कालीन दुरावस्था को प्राचीन भारतीय गौरवपूर्ण इतिहास के चित्रण द्वारा दूर करना चाहते थे। वे इतिहास को चेतना का अविच्छिन्न प्रवाह मानते थे। उनकी इतिहास दृष्टि में दर्शन का भी महत्वपूर्ण स्थान था।

भारतीय इतिहास की कमी को पूरा करने के लिए उन्होंने अपने तौर पर इतिहासान्वेषण का भी प्रयास किया। अपनी इतिहास चेतना का मुख्य लक्ष्य भारतीय राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण को बनाकर भारतीयों को कुंठा से निकालकर, उनमें भारत के प्रति गर्व की भावना भरने का प्रयास किया। प्रसाद इतिहास को भविष्य की घटनाओं की पुनरावृत्ति मानते हुए भी, भविष्य में नयी घटनाओं के घटित होने की आशा रखते थे। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय इतिहास को विद्रुप होने से बचाने के लिए उन्होंने भारतीय इतिहास की खोज कर उसका वर्तमान से संवाद स्थापित करने का प्रयास किया। काल की अखंड अनुभूति एवं शाश्वत चेतना को इतिहास का मूल समझने के कारण प्रसाद ने इतिहास को मानव जीवन से संयुक्त करके प्राणवान बनाने का प्रयास किया है। उनके अनुसार कोरी भौतिक घटनाएँ मानव जीवन की दृष्टि से एकांगी है। मानव-जीवन को मुख्य मानते हुए प्रसाद ने दर्शन को उसकी अंतः प्रेरणा तथा इतिहास को बाह्य विकास माना है। प्रसाद की दृष्टि में इतिहास को सजीवता प्राप्त करने के लिए दर्शन के साथ-साथ राष्ट्रीय संस्कृति को अविच्छिन्न अंग बनाना होगा। तात्पर्य यह कि दर्शन, जीवन, इतिहास, संस्कृति और राष्ट्रीयता सभी मिलकर वास्तविक इतिहास की सृष्टि करते हैं।

### संदर्भ ग्रन्थसूची

1. रंगानुभव के बहुरंग : प्रो. रमेश गौतम, पृष्ठ-65
2. विशाख : जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-5
3. चंद्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-127
4. वही, पृष्ठ-111
5. वही, पृष्ठ-39
6. वही, पृष्ठ-53
7. वही, पृष्ठ-60
8. वही, पृष्ठ-61
9. वही, पृष्ठ-143-144
10. वही, पृष्ठ-95
11. वही, पृष्ठ-41
12. वही, पृष्ठ-128
13. वही, पृष्ठ-51
14. वही, पृष्ठ-54
15. वही, पृष्ठ-42
16. वही, पृष्ठ-43

# अष्टांग योग

डॉ० सुनिल कुमार तिवारी

एम.ए., पीएच.डी., मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

भारतीय दर्शन छः प्रकार की विचारधारा है। सांख्य योग (कपिल पतंजलि मुनि रचित है न्याय वैशेषिक दर्शन के पुरष्कर्ता कणाद जैमिनी ऋषि है। पूर्व मिमांसा उत्तर मिमांसा के पुरष्कर्ता कुमारिल भट्ट है। षट् विचारधारा अपने आपसे महत्वपूर्ण है परंतु योगदर्शन अधिक महत्वपूर्ण इसलिए है कि वह हिन्दुजीवन की जीवनशैली पद्धति से सीधा संबंधित है और अधिक व्यावहारिक एवम् उपयोगी है।

योग शब्द संस्कृत में युज् धातु से बना है जिसका अर्थ जोड़ना होता है, आत्मा-परमात्मा का मिलन, जीवात्मा का शिवात्मा से जोड़ना आदि अर्थ इससे अभिप्रेत है।

पतंजलि मुनि ने योग के आठ अंग बताये हैं। पतंजलि योगसूत्र जीवन जीने की कला सिखाता है। साधन पाद-2.11 सूत्र में अष्टांग योग का उल्लेख मिलता है।

यमन्यिमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि॥29॥

(संदर्भ-1 पतंजलि योगदर्शन)

अर्थात् यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योग के अंग है।

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह यमाः॥30॥ (संदर्भ- पतंजलि योगदर्शन)

इस सूत्र में सूत्रकार पतंजलि ने पांच यम बताये हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम है।

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। (संदर्भ-3 पतंजलि योगदर्शन)

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति- ये पांच नियम है।

## अहिंसा

अहिंसा का अर्थ हिंसा न करने, अपने स्वार्थ के लिये, अपने उपयोग के लिये, अपने आनंद के लिये, किसी को भी हानि नहीं करना, किसी को मारना, किसी की हत्या करना ही हिंसा नहीं है, किसी का मन से बुरा चाहना भी हिंसा है। द्वेष भाव भी हिंसा है, मानहानि करना भी हिंसा है। अहिंसा का अर्थ एवं भाव बहुत विशाल है। मन में किसी के प्रति नफरत या बैर का भाव न होना, सब प्राणी के प्रति सद्भावना रखना भी अहिंसा है। भगवान पतंजलि कहते हैं कि अपने मन में अहिंसा का भाव दृढ़ होने से परस्पर बैर रखने वाले प्राणी भी बैर भावना छोड़ देते हैं। इसलिए महावीर स्वामी ने भी कहा है “अहिंसा परमो धर्मः”।

## सत्य

सत्य को साक्षात् ईश्वर माना गया है। जो भाव मन में है वैसा ही वाणी रखना और ऐसा ही आचरण करना सत्य के पालन से द्वेष, ईर्ष्या, कपट-अप्रमाणिकता जैसे दोष भी दूर रहते हैं क्योंकि इन सब में असत्य भाषण करना पड़ता है।

मन में किसी को मारने की, गाली देने की इच्छा आदि आचरण करना असत्य है। सत्य का आधार एवम् मूल अहिंसा है।

मन में द्वेष रखना और मुख से मधुर भाषण करना भी असत्य है।

सत्य से वाणी प्रभावी बनती है, आशीर्वाद और शाप का असर होता है, इसलिए सत्य भाषण का बड़ा ही प्रभाव होता है।

## अस्तेय

दूसरे के स्वत्व का अपहरण करना, छल से या अन्य किसी उपाय से अन्याय पूर्वक उसे अपना बना लेना चोरी है। इसमें सरकारी टेक्स या चोरी और घुसखोरी भी शामिल है। इन सब प्रकार की चोरियों के अभाव का नाम अस्तेय है। अपने बिना हक की वस्तु अपने पास रखना भी चोरी है। इन सब प्रकार की चोरियों के अभाव का नाम अस्तेय है।

अस्तेय मनुष्य को संयमित बनाता है।

## ब्रह्मचर्य

गरूढ़ पूर्व आचार 237/6 में कहा गया है- “.....कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा सर्वत्र मैथुन त्यागी ब्रह्मचर्यं प्रयक्षते”॥

मन वाणी और शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनों को सब अवस्थाओं में सदा त्याग करके, सब प्रकार से वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है। अतः साधक को चाहिये कि न तो कामदीपन करने वाले पदार्थों का सेवन करे, न ऐसे दृश्यों को देखे, न ऐसी बातों को सुने, न ऐसे साहित्य को पढ़े और न ऐसे विचारों को ही मन में लावे। स्त्रियों का और स्त्री से आसक्त पुरुषों का संग भी ब्रह्मचर्य में बाधक है। अतः ऐसे संग से सदा सावधानी के साथ अलग रहे।

दूसरे अर्थ में लिया जाये तो ब्रह्मचर्य आत्म संयम का दूसरा नाम है। आत्मसंयमी मनुष्य आध्यात्मिक प्रगति करते हैं।

## अपरिग्रह

अपने स्वार्थ के लिये ममतापूर्वक धन, संपत्ति और भोग सामग्री का संचय करना परिग्रह है और इसके अभाव का नाम अपरिग्रह है।

अपनी आवश्यकताओं को न्यून कर सादगीपूर्ण जीवनचर्या का पालन करना अपरिग्रह है। अपने जीवन में वस्तुओं का मोह न रखना अपरिग्रह का मूलमंत्र है। अपरिग्रहधारी मनुष्य कभी दरिद्र नहीं होता। अकिंचन होने पर भी समृद्ध होता है। अपरिग्रह ऐसा गुण है जो मनुष्य को नीतिमान एवं प्रामाणिक बनाता है।

यह पांच यम महाव्रत है जो सार्वभौम है। देश-स्थान-काल की सीमा से परे है। उसका पालन मनुष्य के लिये उन्नति कारक है।

नियम भी पांच है।

**शौच:** शौच यानि पवित्रता शुद्धि, स्वच्छता। हरिप्रसाद गोयंका लिखते हैं कि जल मृत्तिकादि के द्वारा शरीर, वस्त्र और मकान आदि के मल को दूर करना बाहरी शुद्धि है। इसके सिवा अपने वर्णाश्रम और योग्यता के अनुसार न्यायपूर्वक धन को, शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक अन्न आदि पवित्र वस्तुओं को प्राप्त करके उनके द्वारा शास्त्रानुकूल शुद्ध भोजनादि करना तथा सबके साथ यथायोग्य पवित्र बर्ताव करना— यह भी बाहरी शुद्धि के ही अन्तर्गत है। जप तप और शुद्ध विचारों के द्वारा एवं

मैत्री आदि की भावना से अन्तःकरण के राग द्वेषादि मलों का नाश करना भीतर की पवित्रता है। (पतंजलि योगदर्शन- संदर्भ- 5)

**संतोषः** संतोष श्रेष्ठ गुण है। कर्तव्य पालन करते हुए जो भी प्रारब्ध के अनुसार मिले, उसमें संतुष्ट रहना संतोष है। असंतोष मनुष्य को अस्वस्थ कर देता है। अनीति अप्रमाणिकता की ओर ले जाता है। 'संतोषी नर सदा सुखी' यह कहावत सार्थक है। साधना मार्ग में संतोष व्यवधान डालते हैं।

**तपः** उदात्त लक्ष्य के लिये कठोर परिश्रम करना तप है। कष्ट को सहना प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना तप है। तप अग्नि के समान है— तप से मन की अशुद्धि जल जाती है। जिस प्रकार सोना अग्नि में तप कर शुद्ध होता है, उसी तरह मनुष्य भी तप से शुद्ध एवं पवित्र होता है। बिना तप के इष्ट की प्राप्ति नहीं होती।

**स्वाध्यायः** 'स्वेन अधीयते इति स्वाध्यायः' अर्थात् स्व-अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। प्राप्त ज्ञान का चिंतन-मनन करना, ज्ञान को आत्मसात करना आदि योग के साधकों के लिये जितना आवश्यक है, उतना ही लक्ष्य प्राप्ति के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्वाध्याय आवश्यक है।

स्वाध्याय का दूसरा अर्थ स्व का अध्ययन करना होता है अर्थात् स्व मूल्यांकन, आत्मनिरीक्षण, आत्म परीक्षण आदि। स्वाध्याय से बुद्धि स्पष्ट और निर्मल होती है।

## ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर प्रणिधान यानि ईश्वर प्रति दृढ़ श्रद्धा। ईश्वर कहता है कि हम तो केवल निर्मित हैं। सुख और दुःख दोनों को ईश्वर का प्रसाद समझकर सहर्ष स्वीकार करना ईश्वर प्रणिधान परमात्मा प्राप्ति का सरल मार्ग है। यम-नियम योगाभ्यास के लिये नींव के पत्थर के समान है। वह ऐसा सद्गुण है जो मनुष्य को देवत्व, शिवत्व प्राप्त कराते हैं। बिना सद्गुण से अगर योग से सिद्धि प्राप्त हो भी गई तो मनुष्य उसका उपयोग ध्वंस के लिये ही करेगा। यम-नियम मनुष्य को सज्जन बनाता है और सज्जन के पास जो शक्ति होती है, वह समाज के हित में ही होती है।

## आसन

योग का तीसरा अंग है आसन।

आसन से शरीर स्वस्थ, सुदृढ़ एवं संतुलित होता है। एक स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास होता है। इसलिये आसन से मन भी स्थिर, एकाग्र शांत रहता है— 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'। योग का प्रथम सोपान है शरीर को स्वस्थ रखना, जो आसन से प्राप्त होता है।

## प्राणायाम

प्राण के आयाम को प्राणायाम कहते हैं। प्राण को सुव्यवस्थित, सुनियंत्रित करना ही प्राणायाम है। प्राण जीवन शक्ति है। प्राण जितना बलवान होता है, जीवनशक्ति उतनी ही प्रबल होती है। ये प्राण प्राणायाम से बलवान होता है। प्राणायाम से नाडी शुद्धि, रक्त शुद्धि होती है। बुद्धि विकसित होती है। अज्ञान-जनित अंधकार का नाश होता है। ज्ञान का प्रकाश प्रदीप्त होता है।

## प्रत्याहार

हमारी ज्ञानेन्द्रियां बाह्य जगत् के संपर्क में होती हैं। श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा, त्वचा, नासिका बाह्य जगत् के संपर्क में होता है। इन्द्रियाँ विषयों में लीन रहती हैं। इन्द्रियों को विषयों से खिचना-जिहवा

स्वाद का अनुभव करती है, परंतु मन को इस स्वाद से अलिप्त रखने का नाम ही प्रत्याहार है। इन्द्रियों का विषय वे साथ जो संपर्क है वह मन के पास न आये, उसको ही प्रत्याहार कहा गया है। प्रत्याहार से मन का अंतर्जगत् के साथ संपर्क प्रारंभ होता है।

## धारणा

योगशिक्षा में कहा है- “इन्द्रियां प्रत्याहार से अंतर्मुखी होते जाने से मन का भटकना बंद हो जायेगा। इसलिये मन पसंद के विषय पर एकाग्र हो जाता है। इसे ही धारणा कहते हैं।” (संदर्भ-6) मानसिक शक्ति का विकास होता है, एकाग्रता प्राप्त होती है।

## ध्यान

परिपक्व धारणा को ही ध्यान कहते हैं। साधक की उच्चतम दशा है। ध्यान सहज होता है।

## समाधि

समाधि परमात्मा का साक्षात्कार होता है। ध्यान और समाधि अनुभव के विषय हैं। इसमें शिव-जीव का एकात्म होता है। साधक की आध्यात्मिक उच्चतम सिद्धि ही समाधि है।

सामान्य मनुष्य और आध्यात्मिक के पथिक दोनों के लिए अष्टांग योग जीवन जीने की संजीवनी है। महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र में वे अष्टांग योग प्राण होता है। मनुष्य मुक्ति प्राप्त करके परम लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

## संदर्भ-ग्रंथ

1. महर्षि पतंजलिकृत, योग दर्शन पृ.53
2. महर्षि पतंजलिकृत, योग दर्शन पृ.55
3. महर्षि पतंजलिकृत, योग दर्शन पृ.55
4. गरूड पूर्व आचार, (237/6) पृ. 60
5. योगदर्शन हिन्दी व्याख्यासहित, पृ. 6
6. योग शिक्षा, पृ. 30।

# दायभाग में स्त्रीधन स्वरूप

सुचिता यादव

एम०फिल्०, शोधच्छात्रा,  
विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्र, जवाहरलालनेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रस्तुत पत्र में दायविभाग के अन्तर्गत स्त्रीधन के स्वरूप विषय को आधार बनाकर विवेचनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है जो आज की एक ज्वलन्त समस्या के रूप में समाज में चारों तरफ गंभीर बीमारी के रूप में तेजी से फैल रहा है। प्रस्तुत पत्र के विषय के माध्यम से यह प्रदर्शित किया जा रहा है कि स्त्रियों को प्राचीनकाल से ही एक अभिन्न दर्जा प्रदान किया गया है जिसमें उसे सभी प्रकार के अधिकार प्रदान किये गये थे जिसमें शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक अधिकारों के साथ-साथ सबसे महत्वपूर्ण अधिकार सम्पत्ति का अधिकार प्रदान किया गया था जिससे स्त्रियां स्वावलंबी बन चुकी थी और उन्हीं अधिकारों को वर्तमान समय में उच्च तथा उच्चतम न्यायालय तथा संविधान द्वारा भी मान्यता प्रदान की गई है। अतः उन्हीं प्राचीनकाल तथा आधुनिककाल के स्त्रियों के स्त्री धन के स्वरूप का निबन्धन प्रस्तुत पत्र के माध्यम से किया जा रहा है।

धर्मशास्त्र के अन्तर्गत तीन प्रकार के विषयवस्तु का वर्णन प्राप्त होता है-

1. आचाराध्याय
2. व्यवहाराध्याय
3. प्रायश्चित्ताध्याय

इसमें व्यवहाराध्याय में व्यवहार सम्बंधी विषयों का विवेचन प्राप्त होता है। व्यवहार का अर्थ है जो अनेक संदेहों को हटाता है या दूर करता है। कात्यायन ने कहा है-

विनानार्थैऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते।

नानासन्देहहरणाद् व्यवहार इति स्मृतः॥<sup>1</sup>

यह व्युत्पत्यर्थ न्याय शासन या न्याय विधि की ओर संकेत करता है। इसके अतिरिक्त व्यवहार झगड़े या मुकदमे या विवाद को कहते हैं। किन्तु याज्ञवल्क्य विवाद को लॉ-सूट कहते हैं और व्यवहार को जुडिशियल प्रोसीड्योर कहते हैं। 'व्यवहारः तस्य पदं विषयः' अर्थात् व्यवहार के विषय को व्यवहारपद कहते हैं। सर्वप्रथम मनु ने अठारह तथा याज्ञवल्क्य ने बीस व्यवहारपदों को गिनाया है जो इस प्रकार हैं- ऋणादान, निक्षेप, अस्वामिविक्रय, सन्भूय-समुत्थान, दत्तस्यान्पाद, वेतनादान, संविद्-व्यतिक्रम, क्रय-विक्रयानशय, स्वामिपालविवाद, सीमाविवाद, वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, स्तेद्य, साहस, स्त्रीसंग्रहण, स्त्रीपुंधर्म, दायविभाग और द्यूतसमाहव्य।

इन्हीं विवादों में दायभाग एक प्रकार का विवाद है जिसका विवेचन इस प्रकार है-

मिताक्षरा के याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार दाय का अर्थ वह धन है जो उसके स्वामी के संबंध में किसी अन्य की सम्पत्ति हो जाती है- 'दायशब्देन यद्भूतं स्वामी सम्बन्धादेव निमित्तादन्यस्य स्वं भवति तदुच्यते।'<sup>2</sup> नारद ने दायभाग उसको कहा है जिसमें पुत्र अपने पिता के धन के विभाजन का प्रबन्ध करते हैं-

विभागोऽर्थस्य पित्र्यस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्पते।

दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः॥<sup>3</sup>

याज्ञवल्क्यस्मृति की मिताक्षरा के टीकाकार के अनुसार धन के मूल स्वामी के साथ रक्त संबंध के कारण स्वामी के धन पर संबंधी के अधिकार हो जाने का नाम 'दाय' है। इसके दो रूप हैं- अप्रतिबन्ध तथा सप्रतिबन्ध। दादा का पोते को तथा पिता का पुत्र को मिलने वाला धन अप्रतिबन्ध है। इसके विपरीत चाचा तथा भाई आदि के पुत्र के संबंध में भावी स्वामी के न होने पर, दूसरों को मिलने वाला धन सप्रतिबन्ध है। विभाग वह है जहाँ संयुक्त स्वामित्व हो वहाँ सम्पूर्ण सम्पत्ति के भागों की निश्चित व्यवस्था की जाती है-

‘विभागो नाम द्रव्यसमुदाय विषयाणानेकस्वाम्यानां तदेकदेशेषु व्यवस्थापनम्।<sup>4</sup>

दायभाग के चार प्रमुख विषय होते हैं- विभाजनकाल, विभाजनसम्पत्ति, विभाजनविधि और विभाजन अधिकार।

## दायभाग में स्त्रीधन अथवा स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार

दायभाग के अन्तर्गत स्त्रीधन विषय पर विवेचन किया गया है। प्राचीनकाल में पितृसत्तात्मक पारिवारिक संगठन में पुरुष सदस्य ही परिवार का मुखिया एवं सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी माना जाता था। इस काल में स्त्री को साम्पत्तिक अधिकारों से वंचित रखा गया। ऐसी स्थिति में स्त्री के साम्पत्तिक अधिकार का प्रारंभ कैसे हुआ? इस विषय में कोई ठोस तथ्य दृष्टिगत नहीं होता। संभवतः इसका प्रारंभ विवाह के समय पुत्री को दहेज में उपहारस्वरूप दिये जाने वाले आभूषण तथा वस्त्र तथा गृहस्थी के अन्य उपकरणों से हुआ। जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होता गया, समाज में स्त्री के साम्पत्तिक अधिकारों का विकास होने लगा। इस प्रकार स्त्री धन से तात्पर्य स्त्री के सम्पत्ति से है।

वैदिक साहित्य में स्त्री धन संबंधी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में विवाह के अवसर पर पतिगृह जाते समय वधू को उपहार देने का उल्लेख प्राप्त होता है। अथर्ववेद में विवाह के अवसर पर परिधान, स्वर्ण, आभूषण आदि कन्या को देने का स्पष्ट वर्णन है।

तैत्तिरीयसंहिता में पत्नी को घर का स्वामिनी कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य का संन्यास लेने से पूर्व अपनी दोनों पत्नियों मैत्रेयी एवं कात्यायनी के बीच सम्पत्ति का विभाजन करने संबंधी उल्लेख मिलता है।

इन उल्लेखों से कहा जा सकता है कि स्त्रियां साम्पत्तिक स्वत्व की अधिकारिणी होती थी तथा उनको विशेष अवसरों पर उपहारादि भी दिए जाते थे। तथापि स्त्री के उस अधिकार की क्या सीमाएं थी, इसका स्पष्टीकरण प्राप्त संदर्भों से नहीं होता है।

उत्तरवर्ती सूत्रकाल में धर्मसूत्रकार गौतम ने स्त्री की निजी सम्पत्ति का उल्लेख नहीं किया है पर स्त्रीधन के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में पुत्री को उत्तराधिकारिणी स्वीकार किया गया है।

बौधायन संभवतः स्त्री को माता से मिले धन को अथवा अन्य वस्तु को जो उसे उपहार में मिली हो, उसे स्त्रीधन स्वीकार करता है-

मातुरलङ्कारं दुहितरस्साम्प्रदायिकं लभेरन्नयद्वा।<sup>5</sup>

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम स्त्रीधन की स्पष्ट व्याख्या की है। उनके अनुसार स्त्रीधन दो प्रकार के हैं- वृत्ति तथा आबध्य। वृत्ति स्वरूप स्त्रीधन जीविका के लिए दी हुई भूमि अथवा धन है। यह कम से कम दो सहस्र पण हो सकता है। आबध्य रूप स्त्रीधन आभूषणादि हैं - 'वृत्तिराबध्यं वा स्त्रीधनम्। परिद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः। आबध्यानियमः।'<sup>6</sup>

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर के अनुसार स्त्रीधन शब्द यौगिक है, पारिभाषिक नहीं है-

स्त्रीधन शब्दश्च यौगिको न पारिभाषिकः।

योगसंभवे परिभाषाया आयुक्तत्वात्।।

‘स्त्रिया धनं स्त्रीधनं’ इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्त्री की सम्पूर्ण सम्पत्ति ही स्त्रीधन है। चाहे वह सम्पत्ति स्त्री को दाय में प्राप्त हुई हो या विभाजन के द्वारा या अन्य किसी प्रकार से।

दूसरी ओर दायभाग के रचयिता जीमूतवाहन के अनुसार स्त्रीधन शब्द पारिभाषिक है। इनके अनुसार वही स्त्रीधन है, जिसमें स्त्री का स्वत्व हो अर्थात् जिसे स्त्री को पति या अन्य किसी से पूछे बिना स्वेच्छानुसार दान, विक्रय एवम् उपभोग करने का अधिकार है।

स्मृतियों ने स्त्री धन के शाब्दिक अर्थ स्त्री की सम्पत्ति शब्दार्थ को उस प्रकार की सम्पत्ति के विशिष्ट प्रकार तक सीमित रखा है जो स्त्री को विशिष्ट अवसरों या जीवन के विभिन्न स्तरों पर प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य ने स्त्रीधन के लिए कहा है-

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।

आधिவேदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।।

बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।।<sup>7</sup>

पिता, माता, पति या भाई द्वारा दिया गया धन, विवाह के समय अग्नि के समीप प्राप्त धन, तथा पति द्वारा अन्य स्त्री से विवाह के समय प्राप्त धन ये ही स्त्री धन कहे जाते हैं। पिता के बन्धुओं द्वारा दिया गया धन, परिणय के शुल्क के रूप में दिया गया धन, विवाह के बाद पति या पितृकुल से प्राप्त धन भी स्त्री धन कहलाता है।

## स्त्रीधन के प्रकार

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार छः प्रकार के स्त्री धन का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति में मनु ने भी छः प्रकार के स्त्रीधन की चर्चा की है-

1. *अध्यग्नि स्त्रीधन* - विवाह के समय अग्नि के समक्ष जो धन दिया जाता है, वह अध्यग्नि स्त्रीधन कहलाता है।
2. *अध्यावाहनिक स्त्रीधन* - पति के घर जाते समय जो कुछ स्त्री पिता के घर से पाती है, वह अध्यावाहनिक स्त्रीधन कहलाता है।
3. *प्रीतिदत्त स्त्रीधन* - श्वसुर या सास के द्वारा जो कुछ स्नेह से दिया जाता है और श्रेष्ठजनों का वन्दन करते समय जो कुछ दिया जाता है, वह प्रीतिदत्त स्त्रीधन है।
4. *शुल्क स्त्रीधन* - जो बरतनों, भारवाही, पशुओं, दुधारु पशुओं, आभूषणों और दास-दासियों के रूप में प्राप्त होता है।
5. *अन्वाधेय स्त्रीधन* - विवाहोपरान्त पतिकुल या पितृकुल के बन्धुजनों से जो कुछ प्राप्त होता है उसे अन्वाधेय स्त्रीधन कहा जाता है।
6. *आधिவேदनिक स्त्रीधन* - पति द्वारा अन्य स्त्री से विवाह के समय जो कुछ प्राप्त होता है उसे आधिவேदनिक कहते हैं।

इनके अतिरिक्त सौदायिक स्त्री धन है जो विवाहित स्त्री को या कुमारी को अपने पिता या पति के घर से मिलता है या भाई से या माता-पिता से मिलता है-

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्माणि।

भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।<sup>8</sup>

मनु ने अन्य दो प्रकार के स्त्रीधन भी बताये हैं- अन्वाधेय एवं यौतुकम्। अन्वाधेय से अभिप्राय विवाह के बाद मिलने वाला द्रव्य है। इसी प्रकार यौतुक से अभिप्राय विवाह के समय प्राप्त धन से है।

विवाहकाले लब्धं यौतुकम्।<sup>9</sup>

नारद के अनुसार-

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं भर्तृदायस्तथैव च।

भ्रातृदत्तं पितृभ्याश्च षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।<sup>10</sup>

नारद ने भी मनु की भांति ही छः प्रकार का स्त्रीधन कहा है किन्तु मनु के प्रीतिकर्म में दिए गए धन के स्थान पर भर्तृदाय (पति द्वारा दिया गया धन) का उल्लेख किया है।

कौटिल्य ने शुल्क, अन्वाधेय, आधिवेदनिक और बन्धुदत्त को स्त्रीधन के प्रकारों में स्वीकार किया है।

मिताक्षरा के मत से किसी प्रकार का धन स्त्रीधन कहा जा सकता है, चाहे वह स्त्री द्वारा किसी पुरुष की विधवा के रूप से उत्तराधिकार में प्राप्त हो या माता के रूप में प्राप्त हो या पत्नी के रूप में प्राप्त हो।

## स्त्री धन पर स्त्री का आधिपत्य

स्त्री धन पर स्त्री का आधिपत्य तीन बातों पर निर्भर करता है। सम्पत्ति प्राप्त करने का उद्गम, प्राप्ति के समय उसकी स्थिति कि वह कुमारी है या सधवा है या विधवा है तथा वह सम्प्रदाय जिसके अनुसार उस पर स्मृति का शासन होता है।

सौदायिक धन के विनियोग के सम्बन्ध में कात्यायन ने स्त्री को पूर्ण स्वतन्त्रता दी है। यहाँ तक कि सौदायिक स्थावर सम्पत्ति के दान एवं विक्रय की पूर्ण स्वतन्त्रता है। पति या पुत्र और पिता या भाई को किसी स्त्रीधन को व्यय करने का अधिकार नहीं है। कुछ परिस्थितियों में पति को सौदायिक स्त्री धन को व्यय करने का अधिकार है। याज्ञवल्क्य का कथन है-

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके।

गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता न स्त्रियौ दातुमर्हति।<sup>11</sup>

दुर्भिक्ष, धर्मकार्य, व्याधि में तथा ऋणदाता, राजा या शत्रु द्वारा बन्दी बनाये जाने पर पति द्वारा यदि स्त्रीधन का व्यय किया जाय तो उसे लौटाने के लिए उसे बाध्य नहीं किया जा सकता है। कौटिल्य ने इस व्यवस्था को बढ़ाते हुए इतना जोड़ दिया है कि स्त्री अपनी जीविका के लिए या अपने पुत्र या पुत्रवधू की जीविका के लिए व्यय कर सकती है।

जीमूतवाहन ने स्त्रीधन के दो प्रकार की सम्पत्ति का उल्लेख किया है-

1. ऐसी सम्पत्ति जिसका उपयोग केवल स्त्री कर सकती है, किन्तु दान-विक्रयादि नहीं। इस प्रकार की सम्पत्ति में पति द्वारा प्रीतिपूर्वक दिए गए धन का समावेश है जिसमें जीमूतवाहन ने स्त्री को पति के धन में अमुक्तहस्त से उपभोग करने का अधिकार दिया है-

इदममुक्तहस्तताज्ञापनार्थम्।<sup>12</sup>

व्यास और जीमूतवाहन के अनुसार पति द्वारा पत्नी को दो सहस्र धन देने का अधिकार है, जिसका स्त्रियाँ स्वतंत्र रूप से उपभोग करती हैं। पुत्रहीन पति की मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाले धन पर स्त्रियों का सम्पूर्ण रूप से आधिपत्य रहता है। जीमूतवाहन के अनुसार स्त्री की विभाजन में प्राप्त सम्पत्ति स्त्री धन नहीं है। स्त्री द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति पर भी स्त्री को केवल उपभोग करने का अधिकार है। विधवा पत्नी द्वारा प्राप्त सम्पत्ति के विनियोग के सम्बन्ध में कात्यायन का मत है कि पुत्रहीन विधवा जो पति की शय्या को पवित्र रखते हुए, गुरुजनों के साथ स्वनियंत्रण में रहती हैं, उसे आजीवन पति की सम्पत्ति के उपभोग का अधिकार है। उसकी मृत्यु के बाद उस धन के उत्तराधिकारी पति के दायद होते हैं।

इसी प्रकार स्त्री द्वारा अपने पति के उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति के संदर्भ में जीमूतवाहन का कथन है कि उस स्त्री की मृत्यु हो जाने पर उस सम्पत्ति को धन के पूर्वस्वामी अर्थात् उस स्त्री के पिता के दायद प्राप्त करते हैं।

2. जीमूतवाहन ने जो दूसरे प्रकार की सम्पत्ति कही है, उसमें स्त्री का पूर्ण स्वत्व है अर्थात् उसे दान, विक्रय एवं उपभोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। इस प्रकार की सम्पत्ति में सौदायिक सम्पत्ति का समावेश रहता है। इस प्रकार जीमूतवाहन ने स्त्री को पति द्वारा दी गई स्थावर सम्पत्ति के दान विक्रयादि करने का निषेध किया है-

स्थावरेऽपि भर्तृदत्तमात्रे स्त्रिया दानाद्यनधिकारः।<sup>13</sup>

स्थावर से अतिरिक्त धन का स्त्री दान, व्यय आदि कर सकती है।

## स्त्रीधन का उपयोग करने के लिए दण्ड की व्यवस्था

जीमूतवाहन ने कात्यायन का उल्लेख करते हुए कहा है कि स्त्रीधन का ग्रहण पति, पिता, भाई कोई भी नहीं कर सकता है। यदि वह करता भी है तो उसे ब्याजसहित वापस करना चाहिए और राजा द्वारा उसे दण्ड दिया जाना चाहिए। यदि कोई प्रीतिपूर्वक अनुमति लेकर उसका उपयोग करता है तो उसे धनवान होने पर केवल मूलराशि वापस करनी चाहिए। जीमूतवाहन के अनुसार पति यदि स्त्री का धन लेकर दूसरी पत्नी के साथ रहने लगता है तो राजा द्वारा पति से बलपूर्वक धन ग्रहण करके पूर्व पत्नी को दिलवाना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जीमूतवाहन के अनुसार स्त्री स्त्रीधन का विनियोग करने में पूर्ण स्वतंत्र है, वह स्वेच्छा से उस धन का दान, विक्रय तथा उपभोग कर सकती है।

## स्त्रीधन के उत्तराधिकारी तथा विभाग

इस विषय में हिन्दू व्यवहारशास्त्र में बहुत मत-मतान्तर पाये जाते हैं किन्तु एक बात में सबका मत एक है। स्त्रीधन का उत्तराधिकार सर्वप्रथम कन्याओं को प्राप्त होना चाहिए। मिताक्षरा ने कहा है कि पुत्री में पुत्र की अपेक्षा माता के शरीर का अंश अधिक रहता है अतः उसे स्त्री धन की प्राप्ति में वरीयता मिलती है। किन्तु आगे चलकर पुत्रों को कन्याओं के साथ जोड़ दिया गया और कुछ स्त्रीधन में पुत्रों को वरीयता दे दी। इसका संभवतः कारण यह था कि आगे चलकर स्त्री धन की सम्पत्ति का विस्तार हो गया और लोगों को यह बात नहीं रुचिकर लगी कि स्त्रियों को लम्बी सम्पत्ति मिले।

अविवाहित कन्या के धन के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रकारों द्वारा कहा गया है कि कन्या के मर जाने पर सहोदर भ्राता तदुपरान्त माता और तत्पश्चात् पिता धन प्राप्त करता है-

मृतायां दत्तमाद्यात् परिशोध्योभयाव्ययम्।

याज्ञवल्क्य के अनुसार विवाह के प्रतिश्रुत हो जाने पर विवाह के पूर्व कन्या मर जाती है तो दोनों के पिता व्यय का शोध करके जो शेष बचे उसे वर को दे दे।

सप्रजा स्त्रीधन के सम्बन्ध में गौतम के अनुसार पुत्रियों को धन मिलता है। उसमें भी प्रथम अप्रता (अवाग्दत्ता<sup>14</sup>) का उसके उपरान्त प्रता का और इनके अभाव में विवाहित स्त्री का अधिकार है-

स्त्रीधनं दुहितृणामप्रतानामप्रतिष्ठितानाञ्च।

विवाहित पुत्रियों में भी पुत्रवती एवं संभावित पुत्री और तत्पश्चात् बन्ध्या और विधवा पुत्री का अधिकार समझना चाहिए। पुत्रियों के अभाव में पुत्रों का अधिकार होता है। तथा याज्ञवल्क्य, नारद तथा कात्यायन ने कहा है कि मातृधन को दुहिताओं के अभाव में पुत्र प्राप्त करता है। दूसरी ओर मनु के अनुसार सहोदर भाई एवं भगिनी दोनों का तुल्य अधिकार प्राप्त होता है-

मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितृणां तदन्वयः।<sup>15</sup>

दुहितृणामभावे तु रिक्थं पुत्रेषु तद् भवेत्।<sup>16</sup>

मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्यः ऋतेऽन्वयः।<sup>17</sup>

जनन्यां संस्थितायान्तु समं सर्वे सहोदराः।

भजेरन् मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः।<sup>18</sup>

कौटिल्य के अनुसार सधवा रूप में स्त्री के मर जाने पर पुत्र एवं पुत्रियां स्त्री धन बांट लेते हैं। पुत्र के अभाव में पुत्रियां तथा पुत्रों एवं पुत्रियों के अभाव में पति ले लेता है। किन्तु शुल्क, अन्वाधेय एवं स्त्रीधन के अन्य प्रकार, जो सम्बन्धियों से प्राप्त होते हैं, वे सम्बन्धियों को ही मिल जाते हैं। दायभाग के अन्तर्गत व्यभिचारिणी पुत्री को उत्तराधिकार नहीं मिलता है। किन्तु मिताक्षरा ने उसे भी अधिकार दिया है। किन्तु कुमारी या विवाहित पुत्रियों के उपरान्त ही उसे ऐसा अधिकार मिलता है। अतः व्यभिचारिणी का स्त्रीधन उसके भाई या बहन, पति अथवा पति के सम्बन्धियों को मिल जाता है।

दुहिता के अभाव में दौहित्र का धन में अधिकार माना जाता है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि पुत्री अपने पुत्र के माध्यम से पार्वण, श्राद्ध एवं पिण्डदान करती है।

दायभाग के टीकाकार श्रीकृष्ण ने दौहित्र तथा बन्ध्या एवं विधवा पुत्री के बीच सपत्नी पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र का अधिकार माना गया है क्योंकि ये भी मृत स्त्री के पति द्वारा भोगे जाने वाले पिण्ड का दान देते हैं।

## निःसन्तान स्त्री के स्त्रीधन के उत्तराधिकारी

याज्ञवल्क्यस्मृति में स्त्रीधन के स्वरूप में बन्धुदत्त, शुल्क एवं अन्वाधेयक धन का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के धन पर स्त्री के निःसन्तान मरने पर उसके भाईयों का अधिकार हो जाता है-

बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।

अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयुः।<sup>19</sup>

मनुस्मृति एवं नारदस्मृति में ब्रह्मादि-दैव-आर्ष-गान्धर्व एवं प्राजापत्य विवाह विधियों से परिणीता स्त्री के निःसन्तान मरने पर उसके धन का उत्तराधिकारी उसका पति होता है-

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्धनम्।

अप्रजायामतीतायां भतुरिव तदिष्यते।<sup>20</sup>

स्त्रीधनं तदपत्यानां भर्तुगाम्यप्रजासु तु।

ब्रह्मादिषु चतुष्वाहः पितृगामीतरेषु च।<sup>21</sup>

जबकि आसुर-राक्षस एवं पैशाच विवाह विधियों से परिणीता अन्नपत्या स्त्री के धन के उत्तराधिकारी माता-पिता होते हैं-

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वरादिषु।

अतीतायामप्रजायां बान्धवास्तदवाप्नुयुः मातापित्रोस्तदिष्यते।<sup>22</sup>

## जीमूतवाहन के दायभाग के अनुसार निःसन्तान स्त्री के उत्तराधिकार का वर्णन

स्त्री के भर्तृपर्यन्त उत्तराधिकारियों के अभाव में जीमूतवाहन के पिण्डदान की प्रत्यासत्ति के आधार पर क्रमशः देवर, देवर-पुत्र, पति के ज्येष्ठ भ्रातृपुत्र, भर्तृभगिनीपुत्र, भ्रातृपुत्र एवं पुत्री के भर्ता का अधिकार स्वीकार किया गया है। जीमूतवाहन का कथन है कि देवर मृत स्त्री को उसके पति द्वारा दिए जाने वाले तीन पितृपूर्वजों का पिण्डदान करता है। अतः पिण्डदान करने से वह मृत स्वामिनी का अधिकारी होता है। पुत्री के भर्ता का श्वाश्रू के धन में अधिकार होता है क्योंकि वह सास ससुर का पिण्डदान करता है।

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में याज्ञवल्क्यस्मृति में पिता के सम्पत्ति में पुत्र के न रहने पर पुत्री को पूरा अधिकार दिया गया है। और, कहीं-कहीं वर्णन मिलता है कि भाई पिता की सम्पत्ति के चौथाई भाग से स्त्री का विवाह करे या तो उपहारस्वरूप दे।

## आधुनिककाल में स्त्रीधन का स्वरूप

### हिन्दू स्त्री का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1937

इसके अनुसार विधवा, विधवा पुत्रवधू और विधवा पौत्र वधू को उत्तराधिकार के अधिकार दिये गये। इस प्रकार से प्राप्त सम्पत्ति को स्त्री स्त्री-सम्पदा के रूप में लेती थी न कि स्त्रीधन के रूप में। विधवाओं को ये अधिकार न केवल हिन्दू की पृथक् सम्पत्ति में दिए गये थे बल्कि उन्हें मिताक्षरा सहदायिक के अविभक्त हित में भी दिए गये थे।

### हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, धारा 14(1)

इसके अनुसार स्त्रीधन एवं नारी सम्पदा के मध्य अन्तर समाप्त कर दिया गया है तथा महिलाओं द्वारा काबिल सभी सम्पत्ति उनकी पूर्ण सम्पत्ति हो गई है। वर्तमान अधिनियम एक स्त्री द्वारा अधिकृत सारी सम्पत्ति के सम्बन्ध में चाहे वह इस अधिनियम के आरंभ के पूर्व या पश्चात् अर्जित की गई थी, स्त्रीधन विषय पर अन्य बातों के साथ प्राचीन विधि पर अधिभावी है। इस अधिनियम की धारा 14 घोषणा करती है कि ऐसी सारी सम्पत्ति उसके द्वारा पूर्ण स्वामी के रूप में धारण की जायेगी। यह अधिनियम नारी उत्तराधिकारी पर पूर्ण दाय योग्य क्षमता प्रदान करती है तथा यह धारा सम्पत्ति धारण करने तथा उसका व्ययन करने के लिए हिन्दू नारी की शक्तियों पर पारस्परिक सीमा को हटाती है। हिन्दू नारी अपना स्त्रीधन रखने के लिए स्वतंत्र है। यह अधिनियम हिन्दू नारी द्वारा अधिकृत सम्पत्ति का जो या तो सीमित सम्पदा के रूप में है अथवा स्त्रीधन के रूप में है, उत्तराधिकार का एक रूप क्रम प्रतिपादित करती है। इस प्रकार स्त्रीधन सम्पत्ति के निगमन के विभिन्न ढंगों को समाप्त करती है।

## धारा 15

निर्वसीयत मरने वाली हिन्दू नारी की सम्पत्ति धारा 15 में लिखे गये नियमों के अनुसार न्यायगत होगी-

1. पहले पुत्रों और पुत्रियों (किसी पूर्वमृत पुत्र अथवा पुत्री की सन्तान सहित) तथा पति पर।
2. पति के उत्तराधिकारियों पर।
3. पिता और माता पर।
4. पिता के उत्तराधिकारियों पर।
5. अन्त में माता के उत्तराधिकारियों पर।

### उपधारा-1 में निहित नियम

1. अपने पिता अथवा माता से प्राप्त कोई सम्पत्ति एक हिन्दू नारी द्वारा मृतक के किसी पुत्र या पुत्री की अनुपस्थिति में उपधारा-1 में सन्दर्भित अन्य उत्तराधिकारियों से उसमें निर्धारित क्रम से न्यायगत नहीं होगी।
2. अपने पति अथवा श्वसुर से प्राप्त सम्पत्ति का मृतक के पुत्र या पुत्री की अनुपस्थिति में उपधारा-1 में सन्दर्भित अन्य उत्तराधिकारियों में न्यायगत नहीं होगी किन्तु पुत्र के उत्तराधिकारियों में न्यायगत होगी।

मिताक्षरा विधि द्वारा शासित एक हिन्दू नारी एक पुत्र, एक पुत्री तथा एक सहोदर भाई को अपनी स्त्रीधन सम्पत्ति को छोड़कर मरती थी। लेकिन यह अधिनियम के पूर्व लागू थी।

उच्चतम न्यायालय में यह टिप्पणी की गई है कि एक हिन्दू विवाहिता नारी की सम्पत्ति के स्त्रीधन की स्थिति पाश्चात्य काल में पूर्णतया असंदिग्ध है। वह अपनी सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी है और अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार व्यवहार कर सकती है। वह इसका पूरा व्ययन कर सकती है और पति को संदर्भित किये बिना अपनी इच्छानुसार इच्छापात्र को दान कर सकती है। सामान्यतया पति इसमें कोई अधिकार नहीं रखता है, जिसका एकमात्र अपवाद यह कि घोर आपदा की स्थिति में जैसे अकाल, बीमारी में पति इसका प्रयोग कर सकता है। किन्तु नैतिक रूप से इसे पुनर्स्थापित करने के लिए बाध्य है अथवा वह इसका मूल्य देगा जब वह ऐसा करने में सक्षम होगा।

स्त्रीसम्पदा का विस्तृत अर्थ है सारी सम्पत्ति जो एक स्त्री के पास किसी स्रोत से आयी है और जिसमें दोनों सम्पत्तियां सम्मिलित हैं जिसमें वह पूर्ण हित (स्त्रीधन) तथा सीमित हित रखती है।

### उपसंहार

दायभाग प्रकरण में स्त्रीधन के स्वरूप से यह विदित होता है कि प्राचीन काल में भी स्त्रियों की दशा समुन्नत थी। उन्हें आदर सम्मान, शिक्षा तथा सम्पत्ति पुरुषों के समान ही प्रदान की गई थी। परन्तु मध्यकाल में आकर स्त्रियों की दशा निम्न होने लगी थी लेकिन राजा राममनोहर राय, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी तथा स्वामी विवेकानन्द आदि समाज-सुधारकों तथा विचारकों के द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार किया गया और उन्हें समाज में पुनः सम्मान का स्थान प्रदान किया गया। आज वर्तमान समय में स्त्रियों की दशा काफी समुन्नत हो गयी है। आज उन्हें पुरुषों के समान बराबर का अधिकार एवं सम्मान दिया गया है। साथ ही सम्पत्ति में भी उन्हें पिता की सम्पत्ति में भाई के बराबर ही हिस्सा दिया गया है। पुत्र की सम्पत्ति की तो वह स्वामिनी मानी गई है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में स्त्रियों के धन का स्वरूप विस्तृत हो गया है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कात्यायनस्मृति
2. याज्ञवल्क्यस्मृति - मिताक्षरा व्याख्या
3. नारदस्मृति
4. मिताक्षरा
5. बौ. ध. सू. 2.2.3.44
6. कौ. अर्थ.
7. याज्ञवल्क्यस्मृति, दायभागप्रकरण 143-144 श्लोक
8. मनुस्मृति 9.94
9. दायभाग, जीमूतवाहन 4.2.14
10. नारदस्मृति 13.4
11. याज्ञवल्क्यस्मृति 2.147
12. दायभाग 4.1.1
13. दायभाग 4.1.23
14. गौ. ध. सू. 3.10.22
15. ना. स्मृ. 13.2
16. का. स्मृ. 9.8
17. याज्ञ. स्मृ. 2.117
18. मनुस्मृति 9.192
19. याज्ञवल्क्यस्मृति 2.144
20. मनुस्मृति 9.196
21. नारदस्मृति, पृ. सं. 226
22. मनुस्मृति 9.117

# एम० एन० राय एवं वामपंथी चिन्तन

ब्रज भूषण प्रसाद

शोध छात्र, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मार्च-अप्रैल 1887 में एक शिक्षक दीनबन्धु भट्टाचार्य के घर में नरेन्द्र नाथ भट्टाचार्य (एम. एन. राय का मूल नाम) का जन्म 24 परगना जिले के अरबलिया गाँव में हुआ था। दीनबन्धु भट्टाचार्य सुधारवादी दृष्टिकोण के व्यक्ति थे। रूढ़ियों से जकड़े समाज में पिता के सुधारवादी दृष्टिकोण का प्रभाव नरेन की जिन्दगी पर पड़ा। लेकिन बंगाल के क्रांतिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव में वे अपने किशोर अवस्था में ही आ गये, जो पूरी जिन्दगी उनके साथ जुड़ा रहा। उन्हीं शुरूआती दौर में उनके कुछ मूल भावनात्मक एवं बौद्धिक सरोकारों ने आकार ग्रहण किया। नरेन एक प्रतिबद्ध क्रांतिकारी हो गये। उनकी शिक्षा बाधित हुई। उनकी पारिवारिक कठिनाइयों के चलते भी ऐसा हुआ होगा। नये स्थापित राष्ट्रीय महाविद्यालय, जिसके साथ श्री अरविन्दो जुड़े हुए थे, से नरेन ने इंट्रेस परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने बंगाल तकनीकी संस्थान में दाखिला लिया लेकिन वर्ष 1907 में एक राजनैतिक डकैती में शामिल होने के चलते, संस्थान का त्याग कर दिया।

राय की शुरूआती गतिविधियों एवं साहसिक कार्रवाइयों तथा बाद में उनके राजनैतिक एवं बौद्धिक विकास को समझने के लिये, राष्ट्रीय क्रांतिकारी आन्दोलन या “अतिवादी राष्ट्रवाद” की विचारधारा को समझना आवश्यक है।

प्रो. मजुमदार के शब्दों में बंगाल का जुझारू राष्ट्रवाद दो स्तम्भों पर टिका हुआ है। वेदान्त एवं गीता के दार्शनिक शिक्षा के आधार पर स्वामी विवेकानन्द का देशभक्ति का आह्वान तथा बंकिम चन्द्र द्वारा मातृभूमि के प्रति धार्मिक भक्ति।<sup>1</sup> लेकिन नये राष्ट्रवाद के सबसे बड़े पुरोधा श्री अरविन्दो ने इस जुझारू राष्ट्रीय आन्दोलन को भारत में एक गहरी एवं विस्तारित राजनैतिक अनुकूलता प्रदान की। भारतीय अतिभूतवादी भाषा में लिपटे उनके राष्ट्रीय दर्शन में हेगेल के दर्शन की मजबूत छाप थी।<sup>2</sup>

जिस राष्ट्रवाद की उन्होंने शिक्षा दी वह सर्वोत्तम धर्म था। चूँकि राष्ट्रीय स्वतंत्रता ईश्वर प्रदत्त है इसलिए राष्ट्रीय संघर्ष एक पवित्र (धार्मिक) उद्देश्य है जिसमें सभी तरह के संकीर्ण स्वार्थों, संबंधों, यहाँ तक कि सामान्य नैतिक विचारों को पीछे छोड़ना पड़ता है। वे स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये तथा उसे प्राप्त करने के तरीके के बारे में कोई समझौता करने के लिये तैयार नहीं थे। सुधारवादी कांग्रेसजनों के राजनैतिक कार्यकलापों के ठीक उलट उनकी राजनीति के महत्व एवं निहितार्थों को समझा जा सकता है। यह बात उस समय सामने आई जब 1907 के सूत कांग्रेस (सम्मेलन) में सुधारवादी कांग्रेसजनों को इन अतिवादियों के गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा, उस समय तक कांग्रेस पर इन्हीं सुधारवादी या उदारवादियों का वर्चस्व था। ये सुधारवादी प्रशासन में भारतीयों की पूर्ण भागीदारी, सही कर नीतियों के जरिये भारतीय उद्योगों की सुरक्षा आदि माँगें रखते थे। वस्तुतः ब्रिटिश शासित राज्य, विकास के रास्ते के बारे में एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा था। इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिये ये उदारवादी संवैधानिकता का सहारा ले रहे थे। वे बार-बार ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता की दुहाई देते थे तथा कभी-कभी उनकी आवाज गिड़गिड़ाहट में बदल जाती थी। बौद्धिक रूप से अतिवादी विचारधारा के सबसे तेजस्वी प्रणेता के रूप में श्री अरविन्दो ने इन उदारवादी कांग्रेसी नेताओं की कटुतम शब्दों में निन्दा की। राजनैतिक स्वतंत्रता किसी भी देश के लिये हमारी सांस के समान है।<sup>3</sup>

राजनैतिक स्वतंत्रता का लक्ष्य हासिल किये बगैर, सामाजिक सुधार, शिक्षा में सुधार, उद्योगों का विस्तार एवं राष्ट्रीय जाति के नैतिक मूल्यों के उत्थान के प्रयास, मूर्खता की हद एवं बेकार की बात है। उन्होंने जोर देकर कहा कि एक पराधीन राष्ट्र स्वतंत्रता हासिल करने के लिए धीरे-धीरे अपने को तैयार नहीं करता है, यह स्वतंत्रता हासिल कर प्रगति की ओर बढ़ता है।<sup>4</sup> उन्होंने भिक्षा माँगने के तरीके तथा प्रार्थना एवं आवेदन करने एवं प्रतिरोध करने की नीतियों की खिल्ली उड़ाई। राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये विस्तारित सामाजिक आधार की कल्पना, उनके राजनीति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी। उन्होंने सुधारवादियों के मध्यवर्ग के प्रति एक खास तरह की पक्षधरता, उनकी आम जनता के प्रति विश्वास का अभाव, उद्योग, व्यापार, पेशा, प्रशासन में लगे मध्य वर्ग के प्रति मोहग्रस्तता की तीखी आलोचना की।<sup>5</sup> इसके विपरीत उन्होंने बहुत ही प्रगतिशील लहजे में कहा कि इस परिस्थिति से लड़ने की कुंजी सर्वहारा है। जो कोई भी सर्वहारा की स्थिति को समझने की कोशिश करता है और उसकी ताकत को अपने पक्ष में करता है, वही परिस्थिति का मालिक होगा। हमारा पहला एवं सबसे पवित्र उद्देश्य सर्वहारा को ऊपर उठाना और उसे ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करना है। एक धार्मिक राष्ट्रवादी जो समाजवादी नहीं है, उसके मुँह से सर्वहारा की बात सुनना, एक तरह से असंगत लगता है। लेकिन बंगाल के जुझारू राष्ट्रीय आन्दोलन को अरविन्दो ने जो नयी ऊर्जा एवं उसे नयी स्थिति प्रदान की, उसमें इन विचारों का एक बड़ा प्रभाव होगा। कम से कम उच्च मध्यवर्ग एवं उनकी राजनीति के बारे में वितृष्णा का भाव तो होगा ही।<sup>6</sup>

19वीं सदी के अन्तिम समय में बंगाल के उग्र युवाओं ने स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा प्राप्त करते हुए लाठी का प्रयोग करने तथा शारीरिक व्यायाम के लिये व्यायाम शालाएँ स्थापित की। इन व्यायाम शालाओं ने 1901 में प्रमथ मित्रा के नेतृत्व में सर्वविदित क्रांतिकारी संस्था अनुशीलन समिति के गठन का आधार प्रदान किया।<sup>7</sup> करीब-करीब उसी समय श्री अरविन्दो ने इसी तरह की संस्था के गठन पर विचार किया। वस्तुतः उन्होंने बड़ौदा से जतीन मुखर्जी एवं अपने छोटे भाई बरिन्द्र घोष को इस उद्देश्य के लिए बंगाल भेजा। लेकिन जल्द ही उनका संगठन अनुशीलन समिति के साथ समाहित हो गया जो बंगाल और भारत के अन्य हिस्सों में गुप्त गतिविधियों का प्रमुख संगठन हो गया। बंकिम चन्द्र के आनंद मठ का संगठन पर प्रभाव तथा बंगाल में अनुशीलन समिति का अनुशासन तथा 1904 में महाराष्ट्र में उसी तरह का संगठन नवभारत बहुत मजबूती से उभरा। आनंद मठ मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये संन्यासियों के समूह की एक संघर्षपूर्ण कहानी है। आनंद मठ से लिया गया राष्ट्रीय गीत “वन्देमातरम” बंकिम चन्द्र की भावना का उद्रेक और भारत माता की पूजा में गाया गया गीत है।<sup>8</sup> संगठन में नये आगंतुकों के लिये जो शपथ दिलाई जाती थी उसमें भारत माता की स्वतंत्रता के लिये पूर्ण प्रतिबद्धता सिखाई जाती थी तथा भारत माता का नाम बहुत आदर एवं भक्तिभाव से ली जाती थी। संगठन के बारे में रायबाबू याद करते हैं कि आनंद मठ हमारी प्रेरणा का समान श्रोत था। उस उपन्यास से हमें क्रांतिकारी आदर्श का दर्शन होता था। वस्तुतः हमलोगों ने उस नाटक के मुख्य पात्रों की भूमिका का बंटवारा अपने बीच कर लिया था। वे संन्यासी थे। हमलोगों ने उनके रास्तों पर चलने की प्रतिज्ञा की थी।<sup>9</sup>

बंगाल के बंटवारे से (1905) पूरे देश में, खासकर बंगाल में क्रोध की लहर दौड़ गई। जुझारू राष्ट्रीयतावाद को और आगे बढ़ने का मौका मिला। आक्रोश से भरे बंगाल के क्रांतिकारी आगे की योजना बनाने में जुट गये। जल्द ही उनके बीच मतभेद उभर गये। उनके बीच जो अतिवादी थे, वे ब्रिटिश शासकों के खिलाफ आंतकवादी कार्रवाई के जरिये उनके हौसले को तोड़ना चाहते थे तथा प्रशासन को प्रभावहीन बनाना चाहते थे। दूसरे लोग आंतकवाद को तिलांजलि देकर अंतिम तौर पर

सत्ता पर कब्जा करने के लिये संगठित सैनिक तैयारी करना चाहते थे। इस समूह के नेता अनुभवी प्रमथ मित्रा थे। उनकी मृत्यु के बाद नेतृत्व का भार जतीन मुखर्जी के कंधे पर आ गया। नरेन भट्टाचार्य उनके सिपहसालाकारों में से एक हो गये।<sup>10</sup>

हालांकि नरेन की साहसिक कार्रवाइयों का विस्तार प्रथम विश्वयुद्ध के शुरू होने के बाद हुआ लेकिन उस समय तक वे एक अति साहसी क्रांतिकारी बन चुके थे। वे 1907 में 'चिंगरीपोटा' डकैती मामले में गिरफ्तार हुए लेकिन पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में मुक्त कर दिये गये। वे फिर 1910 में हावड़ा षड्यंत्र मामले में गिरफ्तार किये गये और एक अभियोगी कैदी के रूप में 20 महीनों तक जेल में बंद रहे। जेल से छूटने के बाद, वे थोड़े दिनों के लिये सन्यासी बन गये, लेकिन जल्द ही वे राजनीति में लौट आये।

युद्ध के छिड़ने के बाद, जर्मनी की आर्थिक मदद से बंगाल के क्रांतिकारियों ने एक बड़े हमले की योजना बनाई। उन्होंने आनेवाली क्रान्ति के लिये एक 'जेनरल स्टाफ' का गठन किया तथा जतीन मुखर्जी को उसका प्रधान सेनापति बनाया।<sup>11</sup> कोष की वसूली के लिये उनलोगों की कई डकैतियों (दोनों डकैतियाँ फरवरी 1915 में हुईं) में नरेन शामिल थे। लेकिन उनकी योजना का केन्द्र बिन्दु गुप्त रूप से जर्मनी से बड़े पैमाने पर अस्त्र प्राप्त करना था। जर्मनी और फ्रांसिसको में कार्यरत भारतीय क्रांतिकारियों से संबंध स्थापित किये गये। पूर्व निर्धारित योजना के मुताबिक एस. एस. मेमरिक को अस्त्र लादकर भारत आना था। अस्त्रों को पहुँचाने की व्यवस्था के लिये अप्रैल 1915 में नरेन को बटाविया भेजा गया। उन्होंने अपना नाम सी. मार्टिन रख लिया। वे बटाविया में जर्मनी के वाणिज्य दूत थियोडोर टेलफी से मिले। अस्त्र से भरे जहाज को उड़ीसा तट पर भेजने की योजना बनाकर, वे वापस चले आये। एस. एस. मेमरिक, अमरीकी एवं ब्रिटिश अधिकारियों के चपेट में पड़ गये और अपने नियत स्थान पर नहीं पहुँच सके। नरेन ने फिर अगस्त में दूसरी बार जावा की यात्रा की। लेकिन इस बार की असफलता के बाद वे भारत नहीं लौटे और अपना भाग्य आजमाने जापान चले गये। रास बिहारी बोस से निराशा के बाद, चूँकि उनसे नरेन की ज्यादा अपेक्षा थी, उन्होंने सनयात सेन से भेंट की जिन्होंने जापान में आश्रय लिया था। सनयात सेन ने उनके सामने प्रस्ताव रखा कि अगर वे जर्मनी के राजदूत से 50 लाख डॉलर प्राप्त करने में सफल हों तो वे उस रूपये का उपयोग यू आन शी काई को परास्त करने में करेंगे और तीसरी क्रान्ति को सफल बनायेंगे।<sup>12</sup> इस क्रान्ति को पूरा होने के बाद, जो बेकार अस्त्र-शस्त्र होंगे वे उत्तर सीमांत की ओर से भारत भेज दिये जायेंगे। इस महायोजना ने मेरी साहसिक ऊर्जा को पंख लगा दिया। बहुतेरे साहसिक कारनामों के बाद उन्होंने चीन में जर्मनी के राजदूत एडमिरल वॉन हिन्ज से मुलाकात की। राजदूत ने उन्हें सलाह दिया कि इतनी बड़ी रकम आवंटित करने का काम जर्मन शाही सेनापति ही कर सकते हैं, अतः आप जर्मनी चले जाँयें।<sup>13</sup>

चीन और जापान में सम्मानजनक कार्य नहीं करने की स्थिति में उन्होंने बर्लिन जाने से पहले, अमेरिका में रहने वाले क्रांतिकारियों से संबंध स्थापित करने का निर्णय लिया। बहुतेरे रोमांचक कारनामों के बाद नरेन 1916 में अन्ततः सन फ्रांसिसको पहुँच गये। लेकिन पुलिस से होनेवाली मुश्किलों को भांपते हुए वे स्टेन फोर्ड विश्वविद्यालय वाले शहर पालो आल्टो चले गये। वहाँ वे धन-गोपाल मुखर्जी से मिले जो जादु गोपाल मुखर्जी के छोटे भाई थे। जादु गोपाल मुखर्जी, नरेन के भारत में क्रांतिकारी सहयोगी थे। धन गोपाल मुखर्जी के सुझाव पर उन्होंने अपना नाम एम. एन. राय रख लिया। उसी विश्वविद्यालय परिसर में उन्हें एक स्नातक महिला एवलिन से मुलाकात हुई। उनलोगों ने आपस में विवाह करने का निर्णय लिया और वे वहाँ से न्यूयार्क रवाना हो गये, जहाँ उन्होंने लाला लाजपत राय के साथ दोस्ती गांठी। लाजपत राय उन दोनों के प्रति स्नेहशील थे और

राय के बारे में उनकी सोच सकारात्मक थी। यही पर नरेन मार्क्सवाद की ओर मुड़े, लेकिन उनके बौद्धिक विकास का वाजिब श्रेय एवलिन को दिया जाना चाहिये। न्यूयार्क में लाजपत राय और राय आमतौर पर प्रगतिशील लोगों, समाजवादियों, अराजकतावादियों संघवादियों के साथ वाद-विवाद में मार्क्सवादी भौतिकवाद का विरोध करते थे।<sup>14</sup> इस वाद विवाद में वे आध्यात्मिक ज्ञान का सहारा लेते थे। वाद-विवाद में प्रभावी ढंग से हिस्सा लेने के लिये राय ने मार्क्सवादी साहित्य का अध्ययन किया। लेकिन इस संबंध में याद करते हुए वो कहते हैं कि इस अध्ययन ने उनके उद्देश्य को पराजित करने की स्थिति पैदा कर दी। एक दिन जब लाजपत राय साम्राज्यवादी शोषण के चलते भारत की गरीबी की हृदयविदारक तस्वीर पेश कर रहे थे, एक क्रांतिकारी ने उनसे प्रश्न किया कि भारत की स्वाधीनता के बाद भारतीय कैसे देश से गरीबी खत्म करने का काम करेंगे? लाजपत राय द्वारा इस संबंध में दिये गये असंतोषजनक उत्तर के बाद फिर एक प्रश्न पूछा गया कि भारतीय जनता को इस बात से क्या फर्क पड़ता है कि उनका शोषण विदेशी साम्राज्यवादियों के बदले देशी पूँजीपतियों द्वारा हो रहा है?<sup>15</sup>

हालांकि लाजपत राय क्रोधित हो गये लेकिन इस प्रश्न ने राय के विचार में पूर्ण बदलाव ला दिया। राय ने इस संबंध में याद करते हुए कहा है, कि मैं इस प्रश्न के सामने अन्दर से बेचैनी महसूस कर रहा था, हमारे मामले में कुछ बातें गलत थीं। अचानक मेरे मस्तिष्क में एक प्रकाश कौंध गया और यह एक नये ढंग का प्रकाश था। न्यूयार्क सार्वजनिक पुस्तकालय में उन्होंने कार्ल मार्क्स की कृतियों का गहराई से अध्ययन किया और उसमें उन्होंने नया अर्थ ढूँढा। वे आगे कहते हैं, कि उसके बाद मैंने भौतिकवादी दर्शन को छोड़कर, समाजवाद ग्रहण कर लिया। वह अन्तिम प्रयास था, जिसकी रक्षा मैंने लम्बे समय तक की। वर्ष 1917 के शुरूआती समय में वे जर्मन-हिन्दू षडयंत्र मामले में गिरफ्तार किये गये और न्यायालय के सामने प्रस्तुत किये गये। न्यायालय ने उन्हें वहाँ से भागने के विरुद्ध चेतावनी दी। लेकिन कानून के रक्षकों को झांसा देने में माहिर राय भागकर मैक्सिको चले गये।<sup>16</sup>

मैक्सिको न सिर्फ सुरक्षित और रहने लायक ही जगह था, बल्कि उसने इनके ऊपर कल्पना से परे सम्मान, अवसर एवं सहूलियतें न्योछावर कर दी। एक अजीब तरह के षडयंत्रकारी घटना क्रम के दौरान राय को जर्मनी के श्रोत से तथा मैक्सिको सरकार से अप्रत्याशित आर्थिक मदद मिल गई। वे ऊँची राजनैतिक, सामाजिक और खासकर समाजवादी खेमे में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में पहचाने जाने लगे जिससे सभी मिलना चाहते हो। यह एक ऐसा अनुभव था जिससे मुझे भाग्य पर भरोसा होने लगता लेकिन चूँकि मैं जन्म से ही शंकालू था, इसलिये मैं भाग्यवादी होने से बच गया।<sup>17</sup>

जब नरेन मैक्सिको में थे उसी समय बोल्शेविक क्रान्ति हुई। मैक्सिको के तमाम वामपंथी समाजवादियों पर इसका ऊर्जामय प्रभाव पड़ा। राय ने इस प्रभाव का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया है। मैं इस ऊर्जामय प्रभाव के वशीभूत हो गया। यह मेरे राजनैतिक विकास का नविनीकरण था। यह एक कट्टर राष्ट्रवादी का साम्यवाद की ओर छलांग थी। इस बदलाव का आंतरिक मनोविज्ञान बहुत रोचक है।

राय द्वारा बाद में दी गई बातों की जानकारी नीचे दी जा रही है। (हालांकि ये जानकारियाँ तार्किकता के तत्व से एकदम मुक्त नहीं हो सकती हैं) जिससे उनके बौद्धिक विकास का संभावित सूत्र प्राप्त होता है। राय कहते हैं कि “सबसे क्रान्तिकारी विश्वास के प्रतिनिष्ठा व्यक्त करना एक भावनात्मक संतुष्टि थी। सांस्कृतिक तौर पर मैं अभी भी राष्ट्रवादी था। और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक ऐसा दुराग्रह है जो बहुत देर तक जकड़े रहता है। अपने साम्राज्यवाद विरोधी वैचारिक तेवर के चलते

समाजवाद, मुझे एक सही विचारधारा लग रहा था। इसके आदर्शवादी एवं मानवीय पहलू उनके लिये उतने नये नहीं थे, जिन्होंने आनन्दमठ से क्रांतिकारी प्रेरणा ग्रहण की थी।

राष्ट्रीय क्रांति का पुराना परिपेक्ष्य अब समाजवादी परिपेक्ष्य के रूप में सामने आ चुका था। इसके साथ ही, जहाँ तक पुराने कामरेडों को सहायता देने का सवाल है, यह उनका कर्तव्य है। जर्मनी का दृष्टिकोण उत्साहजनक था। वस्तुतः यूरोप में अपनी हार के बाद उन्होंने अपनी महत्वाकांक्षी रणनीति को लागू करने के लिये व्याकुलता के साथ भारत और अन्य क्षेत्रों का उपयोग करने के लिये उनकी ओर हाथ बढ़ाया। जर्मनी का शाही वाणिज्यिक अधिकारी, मैक्सिको आया और राय के साथ चीनी अस्त्र खरीदने की पुरानी योजना पर चर्चा की। राय को सभी संभव सुविधाएँ प्रदान करने का आश्वासन दिया गया तथा मैक्सिको के राष्ट्रपति “कोरेन्जा” जिन्हें सारी बातों की जानकारी थी, उन्होंने इस योजना में राय के कामयाबी की कामना करते हुए उनके यात्रा का पूरा इंतजाम किया। लेकिन मैक्सिको के जमीन एवं समुद्री मार्ग के द्वारा मैक्सिको तट के इर्द-गिर्द थकावट पूर्ण यात्रा के बाद राय ने इस योजना पर कार्य करना बंद कर दिया और मैक्सिको लौट आए। उन्होंने राष्ट्रीय राजनीति के पुराने रास्ते को पुरी तरह तिलांजली दे दी और अपने नये आदर्श समाजवाद को साकार करने में पूरी निष्ठा से कूद पड़े।<sup>18</sup>

सरकारी संरक्षण एवं पैसे की अधिकता से राय एक आरामदायक जिन्दगी, यहाँ तक कि ऐशपूर्ण जिन्दगी जी सकते थे। उनके जो पुराने सात्विक संकोच थे वे धीरे-धीरे समाप्त हो गये और उन्होंने जीवन से जुड़ी अच्छी चीजों की प्रशंसा शुरू कर दी। वे अच्छे भोजन, पेय पदार्थों, नृत्य, गीत आदि का आनंद लेने लगे। यह उनकी जीवन दृष्टि में एक मौलिक परिवर्तन का द्योतक था। हालाँकि बहुत बाद में उन्होंने भौतिकवाद को जिन्दगी से जुड़ा दर्शन बतलाया, लेकिन वे खुद भौतिकवादी हो गये थे क्योंकि वे जीवन के आनंद में शामिल होना कोई बुराई नहीं समझते थे। और उन्होंने सात्विकता को अवैज्ञानिक, अमानवीय एवं ढोंगीपन के रूप में देखना शुरू किया। यह उनके साथ एक प्रतिबद्ध विचारधारा के रूप में जुड़ा रहा जो उनके मानवतावादी दर्शन का आधार बना।<sup>19</sup>

लेकिन सबसे उनके जीवन का नाटकीय पहलू, उनका देश के सार्वजनिक जीवन में प्रसिद्धि पाना है। एक अनजाने विदेशी के साथ राष्ट्रपति एवं अन्य मंत्रियों द्वारा देश की ऊँची राजनीति के बारे में सलाह-मशविरा और उनका एक राजनेता के रूप में सम्मान तथा विशेष भोज में स्वागत सत्कार तथा देश के बौद्धिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में बिना माँगे एवं अप्रत्याशित ढंग से नेतृत्वकारी भूमिका प्रदान करना, निश्चय ही विस्मयकारी है। ऐसे अवसरों के मर्मस्पर्शी अनुभवों को राय ने अपनी प्रतिक्रिया में इस तरह व्यक्त किया है – ऐसे तमाम घटनाक्रम “हॉस्य ओपेरा” से लिये गये दृश्यों की तरह होता था। यह एक जासूसी कहानी की तरह लगता था। ऐसा प्रतीत होता था कि भाग्य मुझे फिर से मेरी निष्ठा को हासिल करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ है।

एक बुद्धिजीवी के रूप में राय ने एक अच्छी शुरूआत की। उन्होंने स्पेनिश भाषा सीखी और वामपंथी स्पेनिश पत्रिकाओं में लिखना शुरू किया। भारत पर स्पेनिश में उनकी किताब “ला इंडिया: सू पसाडे, सूप्रेजेन्ट, सूपोरमेनीर 1918 में प्रकाशित हुई। इस छोटी किताब में मोनरो सिद्धान्त पर लिखा—“दी वे टू डुरेबुल पीस” जब अमरीका में राय थे तब लिखा गया था, जोड़ दिया गया। इस किताब को प्रशंसा मिली। विश्वविद्यालय के रेक्टर मेस्ट्रो कैसास के आमंत्रण पर उन्होंने एक भाषण दिया। यह एक ऐसे आदमी के लिये जिसे किसी औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं मिला है, अत्यन्त ही आनन्ददायक बात थी। मैक्सिको के समाजवादी आन्दोलन में राय का चमत्कारिक महत्व था। इसमें कोई शंका नहीं कि मैक्सिको की सरकार और वहाँ का समाजवादी आन्दोलन जिस तरह राय

के व्यक्तित्व का इस्तेमाल करना चाहते थे उससे राय की इतनी ऊँची हैसियत हो गई थी। लेकिन यह राय की कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी कि वे इस परिस्थिति के अनुरूप एक बड़ी हस्ती बन गये थे। एक बौद्धिक एवं राजनैतिक नेता के रूप में अपने को सम्पन्न साबित करने में वे आश्चर्यजनक रूप से कामयाब रहे। दिसम्बर 1918 में मैक्सिको की समाजवादी पार्टी के महासचिव चुने जाने के बाद उन्होंने उस पार्टी को वर्ष 1919 में कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह रूस के बाहर पहली कम्युनिस्ट पार्टी थी।<sup>20</sup>

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रतिनिधि के तौर मैक्सिको आये बोरोदिन ने इस बात के लिये प्रमुख रूप से पहल किया। मैक्सिको आने के बाद बोरोदिन ने राय से गहरी मित्रता गाँठ ली। हालांकि राय ने बोरोदिन को आर्थिक संकट एवं अन्य संकटों से मुक्त होने में सहायता की लेकिन बोरोदिन की मित्रता से राय की जिन्दगी में एक बड़ा बदलाव आ गया। राय के अनुसार बोरोदिन ने उन्हें हेगेल के द्वन्द्ववाद की गुन्थियों से साक्षात्कार कराया, जो मार्क्सवाद की कुंजी है। भारतीय ज्ञान के संबन्ध में जो लम्बे समय से चला आ रहा विश्वास था, वह धूमिल पड़ता गया और उनसे मैंने यूरोप की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त किया। बोरोदिन ने उन्हें मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि के रूप में “कम्युनिस्ट इंटरनेशनल” के दूसरे सम्मेलन में शामिल होने के लिये राजी किया। उन्होंने राय द्वारा उनके पुनर्जन्म की जगह को छोड़े जाने में हो रही हिचकिचाहट को दूर किया और कहा कि अपने देश को मत भूलो, मास्को तो रास्ते में है। राय ने टिप्पणी की कि इस बात से उनके सामने एक नया दृश्य कौंध गया, यह मेरे जीवन का नया अध्याय था।

मास्को की उनकी यात्रा उत्तेजनापूर्ण अनुभवों के बगैर पूरी नहीं हुई। इस बार उन्होंने वी. ग्रेसिया के नाम से यात्रा की और मैक्सिको की सरकार ने उन्हें बहुत सारी सहूलियतें प्रदान की। रास्ते में वे बर्लिन में रूक गये (दिसम्बर 1919 से अप्रैल 1920)। यह उनकी अंतिम यात्रा नहीं थी। बर्लिन में ठहरना, उनके लिये बहुत उपयोगी साबित हुआ। मैंने बहुत कुछ सीखा और बहुत से नये मित्र और परिचित बनाये।<sup>21</sup>

जिनको मित्र बनाया और नये लोगों से परिचित हुए उनमें जर्मन सामाजिक जनवादी आन्दोलन के पुराने कद्दावर नेता, बर्न्स्टीन, काउत्सकी, हलफरडिंग और नये कम्युनिस्ट नेता थैलिमर, ब्रान्डलर, फुक्स, एनेस्ट मेयर, इसके साथ-साथ उन्हें विश्व के विभिन्न हिस्सों के क्रांतिकारियों के साथ क्रांति की समस्या पर बात करने का अवसर मिला। यह जर्मनी में कम्युनिस्ट क्रान्ति का घटनाओं से भरा दौर था। यह गौरवशाली संघर्षों एवं दर्दनाक पराजय का दौर था। बर्लिन में रूकने से उनकी सैद्धांतिक समझ ज्यादा समृद्ध तथा व्यवहारिक अर्न्तदृष्टि गहरा हुआ होगा। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के बहसों में जो बाद में उन्होंने हिस्सा लिया, वह ठोस आकार ग्रहण कर रहा था। जर्मनी में अनेकों महीनों तक रहने से मुझे यूरोप के हालात का पता चला और उनके तात्कालिक परिप्रेक्ष्य से मेरी यह समझ बनी कि महानगरीय देशों के सर्वहारा सत्ता हासिल करने के साहसिक प्रयास में तबतक सफल नहीं होंगे जबतक कि औपनिवेशिक देशों की जनता विद्रोह के जरिये साम्राज्यवाद को कमजोर न कर दे।

मास्को पहुँचने के बाद उनकी मुलाकात रूस की कम्युनिस्ट पार्टी एवं कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के शीर्ष नेतृत्वकारी साथियों से हुई। उन दिनों के उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख किया जा सकता है। बोल्शेविकवाद की माँ बालबानोवा के साथ एक बैठक के दौरान, राय को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के दूसरे सम्मेलनों के लिये लेनिन द्वारा राष्ट्रीय एवं औपनिवेशिक प्रश्न पर तैयार सैद्धान्तिक दस्तावेज दिया गया। ऊपर के पृष्ठ के बाये कोने पर लेनिन ने लिखा था, राय के आने पर उनकी आलोचना एवं सुझाव लिये जाँय। राय ने इसका वर्णन करते हुए कहा कि सचमुच

में मेरे लिये यह सातवें आसमान पर उड़ने वाली बात थी। राय को कुछ देर के बाद लेनिन से मिलने के लिये कहा गया। उत्तेजना के मारे वे उस दस्तावेज को लेनिन से मिलने से पहले सावधानी पूर्वक नहीं पढ़ सके। लेनिन के साथ राय की पहली मुलाकात अत्यन्त संक्षिप्त थी, लेकिन यह उनकी जिन्दगी के लिये सबसे स्मरणीय घटना थी। राय ने कामिन्टर्न के दूसरे सम्मेलन में औपनिवेशिक एवं पराश्रयी देशों में कम्युनिस्ट पार्टी की रणनीति एवं कार्यनीति के सवाल पर लेनिन के साथ बहस किया। राय का लेनिन के साथ प्रसिद्ध विवाद, किसी नौसिखुए महत्वाकांक्षी व्यक्ति का नाटकीय ढंग से हठधर्मिता दिखलाना नहीं था। उनका लेनिन के साथ निजी तौर पर बहस हुआ था। उसके बाद उन्होंने लेनिन के ही कहने पर अपनी ओर से एक पूरक दस्तावेज प्रस्तुत किया। लेनिन का विचार था कि औपनिवेशिक एवं अर्द्ध औपनिवेशिक देशों में साम्राज्यवाद का आधार देशी सामन्तवाद के बीच है और इसके आलोक में चूँकि पूँजीवादी राष्ट्रीय आन्दोलन प्रगतिशील प्रकृति का है। अतः इस संदर्भ में इसे सभी कम्युनिस्टों का समर्थन मिलना चाहिये।<sup>५</sup>

भारतीय पृष्ठभूमि के आधार पर बोलते हुए राय ने विचार व्यक्त किया कि पूँजीपतियों की शक्ति को कम करके आंका जा रहा है और उसकी प्रकृति को समझने में भूल की गई है। हमलोगों ने देखा है कि किस तरह बंगाल के जुझारू राष्ट्रवादी कांग्रेसी उदारवादियों के आवेदन देने, प्रार्थना करने और प्रतिरोध करने की बात को नापसन्द करते थे। श्री अरविन्दो ने सर्वहारा के हितों और उसकी संभावनाओं के बारे में खुलकर बातें रखी थीं। एक मार्क्सवादी होने के नाते, लेनिन के साम्राज्यवाद संबंधी सिद्धांतों के आधार पर वे भारतीय क्रांति को एक भिन्न परिपेक्ष्य में देखते थे। हालांकि यह समाजवादी क्रांति नहीं था लेकिन यह पूँजीवादी जनवादी क्रांति के दौर से बहुत आगे था। युद्ध के बाद भारत में आर्थिक विकास के क्रम में उन्होंने इस नीति की कल्पना की जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार की ओर से भारतीय पूँजीपतियों को छूट दी जायेगी और भारत का पूँजीपति वर्ग उसके साथ समझौता करेगा। राष्ट्रवादी राय के लिये पूँजीपतियों के व्यवहार पर विश्वास करना संभव नहीं था और एक मार्क्सवादी राय के लिये तो यह और भी दुष्कर बात थी। वे भारत में समाजवादी क्रांति के विकास के लिये इसमें और ज्यादा गहरा महत्व खोजने लगे। इसीलिये राय ने शुरू से ही पूँजीपतियों के प्रति सावधानी बरतने की नीति अपनाई और सही सामाजिक आधारों, मजदूरों, किसानों तथा निम्न पूँजीपतियों पर विश्वास करने की बात कही। इसके आगे उन्होंने कहा कि साम्राज्यवादी मुल्कों द्वारा औपनिवेशिक देशों के शोषण से लिये गये अत्यधिक मुनाफे के कारण ही ये देश टिके हुए हैं इसलिये क्रांति का भविष्य पूर्व की जीत पर ही निर्भर है।<sup>22</sup>

हालांकि रूसी एवं अन्य कम्युनिस्ट नेता राय के विचार से पूरी तरह सहमत नहीं हुए लेकिन उनसे वे प्रभावित जरूर हुए। उन्हें जिम्मेदारी वाला पद दिया गया और वे पूर्व के देशों के प्रधान प्रवक्ता के रूप में सम्मानित किये गये।

सम्मेलन के बाद राय को ताशकन्द में क्रांतिकारी आधार तैयार करने की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी गई। भारतीय सीमा के साथ इसकी नजदीकी और रूसी सरकार का अफगानी सरकार के साथ दोस्ताना संबंध के चलते, वहाँ क्रांति के सैनिकों को तैयार करना एक अच्छा एवं संभावना से भरा लक्ष्य था। ताशकन्द में राय के ठहरने के दौरान उन्हें उत्तेजनात्मक अनुभवों से गुजरना पड़ा।

उसी समय भारत में खिलाफत आन्दोलन परवान चढ़ रहा था तथा मुजाहिरों का एक समूह लम्बे एवं कठिनाइयों से गुजरते हुए पैदल तुर्की जाने के बजाय ताशकन्द पहुँचा। राय ने इन लोगों के राजनैतिक शिक्षण का काम किया एवं उनके लिये भारतीय सैनिक स्कूल में सैनिक शिक्षा का प्रबंध किया। प्रवासी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन 1920 के अन्त में या 1921 की शुरूआत में हुआ। लेकिन

ब्रिटेन के विरोध के चलते सैनिक विद्यालय को बन्द करना पड़ा। प्रवासी कम्युनिस्ट पार्टी का मुख्यालय मास्को चला गया। राजनैतिक क्रांतिकारियों की राजनैतिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिये पूर्व के श्रमिकों के लिये कम्युनिस्ट विश्वविद्यालय की स्थापना 1922 में की गई। राय को इस विश्वविद्यालय का निदेशक नियुक्त किया गया। इस विश्वविद्यालय में हो. ची. मिन्ट के एक छात्र के रूप में दाखिले की चर्चा है।

कॉमिन्टर्न में राय का उत्थान बहुत तेज गति से तथा अर्चभित करने वाला था। 1922 में इसके कार्यकारिणी समिति के उम्मीदवार सदस्य के रूप में शुरू करते हुए, 1924 में ये इस समिति में मतदान के अधिकार के साथ पूर्ण सदस्य हो गये तथा 1926 तक इनके प्रभाव ने अन्तिम ऊँचाई प्राप्त कर ली। उन्होंने कॉमिन्टर्न के एक के बाद एक होनेवाले सम्मेलनों (1921 तीसरा सम्मेलन, चौथा 1922, पाँचवाँ 1924) में औपनिवेशिक एवं पराश्रयी मुल्कों में क्रांति की राजनीति एवं कार्यनीति के संबंध में पारित प्रस्तावों एवं नीतिगत प्रश्नों पर राय के प्रभाव को देखा जा सकता है।<sup>23</sup>

1928 के छठे कॉमिन्टर्न के सम्मेलन में निष्कासन के पहले तक, राय एक मार्क्सवादी लेखक, पत्रकार एवं संगठक के रूप में बहुत सक्रिय थे। इन वर्षों के दौरान इन्होंने दो महत्वपूर्ण किताबें लिखीं। (1) “इंडिया इन ट्रांजीशन (भारत परिवर्तन के दौर में) (2) “दी फ्यूचर ऑफ इंडियन पालिटिक्स” (भारतीय राजनीति का भविष्य)। ये किताबें उन्होंने अपनी खास अंदाज में लिखीं। परिस्थितियों के अनुकूल बर्लिन, ज्यूरिख, एन्ने और पेरिस में रहने के दौरान उन्होंने दो पत्रिकाओं को सम्पादित किया। “वेनार्ड ऑफ इंडियन इंडिपेन्डेन्स” (भारतीय स्वाधीनता का अगुआ दस्ता) इन पत्रिकाओं की प्रतियों को उन्होंने चोरी-छिपे भारत में भेजने की व्यवस्था की। उन्होंने कॉमिन्टर्न के मुख पत्र, इन्फेकर में लेखन के माध्यम से योगदान किया। हालांकि उन्होंने भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन की ताकत को बढ़ा-चढ़ाकर तथा गांधी की ताकत को कम करके आंका लेकिन वे भारतीय राजनीति में एक हद तक क्रांतिकारी (मौलिक सुधारवादी) रूझान पैदा करने में सफल हुए तथा भारत में साम्यवाद के विकास के लिये जगह मिली।

चीन की पराजय और उससे जुड़ी परिस्थितियों के बाद कॉमिन्टर्न से निष्कासन की घटनाओं का जिक्र अध्याय पाँच में है। वे 1930 में भारत लौट गये। लेकिन 1924 एवं 1926 के कम्युनिस्ट षड्यंत्र मामले के अभियुक्त के नाते उन्हें 6 वर्ष के लिये कारावास की दण्ड सुनाई गई। 1936 में अपनी रिहाई के बाद उन्होंने “एलेन” से विवाह किया, जिनसे उनका परिचय भारत आने से पहले जर्मनी में हुआ था। (एवलिन और राय 1926) में एक-दूसरे से अलग हो चुके थे) राय के प्रति एलेन की प्रतिबद्धता तथा उनके साथ सहयोग की बातें रायवादियों के बीच मशहूर हैं।

राय ने तत्काल राजनैतिक गतिविधियों में हिस्सा लेना शुरू किया, लेकिन इस बीच में वे बड़े तौर पर बदल चुके थे। जेल के अन्दर उन्होंने दर्शन पर ढेरों किताबें पढ़ीं। हालांकि अभी भी वे राजनैतिक समस्याओं के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाते थे लेकिन अब उनके ऊपर दार्शनिकता की छाप ज्यादा दिखाई पड़ती थी। वे मार्क्सवाद को एक नई रोशनी में देखने लगे। करीब 6 वर्षों तक उनके अन्दर बौद्धिक जंग जारी रहा।<sup>24</sup>

यह संघर्ष अपने तर्क पर आधारित था जिसके फलस्वरूप नव मानवतावाद का जन्म हुआ। यहाँ यह कहना माकूल होगा कि राय की राजनीति से निराशा और उसे नहीं पसंद करने के पीछे, उनके विचार में हुआ परिवर्तन उत्तरदायी था। जेल से निकलने के बाद उनके द्वारा लिखी गई ढेरों पुस्तकें, उनके इस वैचारिक परिवर्तन की तरफ इशारा करती हैं।

तीसवें एवं चालीसवें दशक में राय का राजनैतिक अनुभव, बहुत अच्छा नहीं था। वे कांग्रेस को अपनी तरफ मोड़ना चाहते थे लेकिन कांग्रेसी नेता उनके लिये बहुत चालाक निकले। उन्होंने अपने से सहानुभूति रखनेवालों एवं प्रशंसक समूहों को लेकर “रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी” का गठन वर्ष 1940 में किया। यह भारतीय राजनीति में अपनी पहचान नहीं बना सका। धर्म एवं राष्ट्रवाद के बारे में उनकी क्रांतिकारी एवं अलोकप्रिय (अग्राह्य) विचार इसके प्रमुख कारण थे। 1931 के पहले तक के राय “एक साजिशकर्ता” एक संगठन एवं कार्यनीति निर्धारण करने वाले के रूप में जो भी कहा जाय लेकिन उसके बाद राजनैतिक स्वार्थ परायणता के प्रति उनका कोई लगाव नहीं रहा। उसके बाद एक उद्देश्य के प्रति समर्पित एक बड़े चिन्तक के रूप में उन्होंने काम करना शुरू किया। उनकी मोटी पुस्तकों का बड़ा हिस्सा धर्म और राष्ट्रवाद की आलोचना से जुड़ा हुआ है। हमलोगों को धर्म के बारे में उनके विचारों के बारे में इस अध्ययन के दौर में और बहुत सी बातें कहनी होंगी।<sup>25</sup>

राष्ट्रवाद के खिलाफ उनकी लगातार आलोचना के पीछे उनका स्पष्ट अभियोग था कि राष्ट्रवाद में फासीवाद अन्तर्निहित है। गांधीजी के राष्ट्रवाद और धर्म के बारे में उनकी यही समझ थी। उनका मानना था कि जबतक इन विचारधाराओं के खिलाफ अन्त तक लड़ाई नहीं चलाई जायेगी, भारत में जनतंत्र का भविष्य सुरक्षित नहीं हो सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उन्होंने फासीवाद विरोधी मोर्चा की पुरजोर वकालत करते हुए कांग्रेस की इस बात के लिये आलोचना की कि वह ब्रिटेन के मुश्किलों का फायदा उठाना चाहती है। राय एक बार फिर गांधी को समझने में भूल कर गये, लेकिन यह दूसरा मामला है।

आश्चर्य नहीं कि राय की रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी भारतीय राजनीति में थोड़ा भी आगे नहीं बढ़ सकी। उनकी असफलता भी उतनी ही बड़ी साबित हुई। ऐसा मालूम पड़ता था कि उनका राजनैतिक इतिहास, उनके दार्शनिक यात्रा की तैयारी थी। अपने ऐश्वर्यशाली राजनैतिक जीवन के इस निस्तेज अंत से उन्हें थोड़ा भी पाश्चाताप नहीं था। वे राजनीति से मुक्त होना चाहते थे। अपनी कष्ट साध्य जिन्दगी एवं स्व विश्लेषण के दौरान उन्होंने अपने सहयोगियों से कहा (जो उनकी राजनीति के प्रति शंकालू हो रहे थे) कि मैं राजनीति में बहुत बेचैनी महसूस करता हूँ। मैं पानी से बाहर रहने वाली मछली की तरह अनुभव करता हूँ। लेकिन अपने प्रारंभिक जीवन से ही इस झंझावात में शामिल हो जाने के बाद, इससे निकल नहीं पा रहा हूँ। अब समय आ रहा है, जब मैं ऐसा कर सकूँगा।<sup>26</sup>

शीघ्र ही वह समय आ गया। राजनीति से उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया और नवमानवतावाद को परिभाषित करने में अपना पूरा ध्यान लगा दिया। नवमानवतावाद के दर्शन के मुताबिक दलीय राजनीति की असंगतता के चलते “रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी” 1948 में भंग कर दी गई। मानवतावादी आन्दोलन को निर्देशित करने के लिये नवमानवतावाद, एक नये नवजागरण की हुंकार है जो विश्व को वर्तमान संकट से मुक्त करेगा और एक अच्छी जिंदगी सामने आयेगी। 1954 में अपनी मृत्यु तक उन्होंने अपनी पूरी ऊर्जा नवमानवतावाद के प्रचार और उसे और आगे बढ़ाने में लगाया।

## संदर्भ ग्रन्थसूची

1. हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया ले. आर. सी. मजूमदार, खंड II, पृ. 167.
2. वही, खंड ए पृ. 423.
3. द प्रफेट ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, ले. कर्ण सिंह, पृ. 82.
4. वही, पृ. 90.

5. वही, पृ. 89.
6. वही, पृ. 53.
7. वही, खंड I, पृ. 458.
8. एम. एन. राय मेमोयर्स, पृ. 98.
9. रिसर्जेन्स ऑफ इंडिया, शिशिर मित्रा, पृ. 367.
10. मेमोयर्स, पृ. 3.
11. वही, पृ. 7.
12. वही, पृ. 14.
13. वही, पृ. 27.
14. वही, पृ. 28.
15. वही, पृ. 29.
16. वही, पृ. 62.
17. वही, पृ. 59.
18. वही, पृ. 61.
19. वही, पृ. 71.
20. वही, पृ. 195.
21. वही, पृ. 212.
22. वही, पृ. 214.
23. द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया एण्ड इट्स फार्मेशन एवोर्ड, मुजफ्फर अहमद, पृ. 87-88.
24. एम. एन. राय एण्ड रेडिकल ह्यूमनिज्म, ले. जी. पी. भट्टाचार्य, पृ. 2.
25. एम. एन. राय एण्ड कमिनटर्न, ले. जे. पी. हैथोयेक्स, पृ. 144.
26. सर्वोदय सोशल आर्डर, जयप्रकाश नारायण, पृ. 91.

# साम्प्रदायिकता और भारतीय राजनीति

कमलेश कुमार राम

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सत्यदेव डिग्री कॉलेज, गाजीपुर, उ०प्र०

## भूमिका

मानव की उन्मुक्त प्रगति और विकास में जितनी बाधाएँ हैं, उनमें साम्प्रदायिकता भी एक है। यह वह विष वृक्ष है जो एक बार उग जाने पर आसानी से नष्ट नहीं होते हैं। हमारा देश भारत विभिन्न धर्मों और जातियों का निवास-स्थल रहा है। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी सभी भाईचारे के साथ यहाँ सदियों से रहते आये हैं। सद्भाव एवं समन्वय भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। भारतीय सम्भता एवं संस्कृति की विशेषता रही है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का लक्ष्य मानवतावाद एवं “वसुधैव कुटुम्बकम्” रहा है। यही कारण है कि अंग्रेजों ने जब देश में पैर जमाया और देश को चूसने लगे तो हिन्दू और मुसलमान एक साथ उठ खड़े हुए और आजादी की जंग छेड़ दी। अंग्रेजों के लिए यह खतरे की घंटी थी। अतः उन्होंने साम्प्रदायिकता का बीज बोया ताकि वे जमात खड़ी की जो लगातार एक दूसरे सम्प्रदाय के खिलाफ जहर उगलती रही, परिणामस्वरूप मार-काट और दंगा प्रारम्भ हो गया और अंततः देश दो भागों में बंट गया। खेद तो इस बात का है कि जिस विष वृक्ष के प्रभाव से हमारा देश दो भागों में बंट गया, वह विष वृक्ष अभी तक नहीं सूखा है और न जाने कब तक इसकी चपेट में कितने लोगों की जाने जाएगी। कितनी माताओं के गोद सूने होंगे और कितने लोगों के भाई-बहन बिछुड़ेंगे?

सच तो यह है कि भारत ही नहीं अनेक देश इसकी चपेट में हैं। यह शोला कभी भारत के मुंबई में सुलगती है, तो कभी गुजरात में, कभी भागलपुर में, कभी असम, उड़ीसा और कभी दिल्ली में सुलगते रहती है। इजरायल और फिलीस्तीन भी इससे अछूता नहीं रहा है। खेद तो इस बात का है कि यह सब धर्म के नाम पर होता है जबकि सभी धर्मों की बुनियाद ह-प्रेम, भाई-चारा, सहानुभूति, दया और परोपकार। फिर चाहे राम हो या रहीम, गुरुनानक हो या ईसा सभी धर्म के मानने वाले सभी मानव दीनबंधू हैं।

## साम्प्रदायिकता का अर्थ

साम्प्रदायिकता एक मनोवृत्ति है जिससे विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति अपने सीमित हितों और अधिकारों की रक्षा के लिए दूसरे व्यक्तियों के हितों और अधिकारों पर कुठाराघात करते हैं। यह एक ऐसी भावना है जो धर्म, भाषा और जाति पर आधारित होती है तथा देश के हितों की उपेक्षा करके साम्प्रदायिक हितों की महत्ता प्रदान की जाती है। यह सामुदायिक मस्तिष्क की उपज है। यह आर्थिक पूर्वाग्रहों और धार्मिक अंधभक्ति से जुड़ी है इससे प्रेरित व्यक्ति यह मानने लगता है कि उसका मत और विश्वास ही सर्वोपरि है। दूसरे को तुच्छ समझते हुए उसे समाप्त करने की बात सोचने लगता है। इसके पीछे एक तरह का भय एवं आशंका होती है कि उक्त सम्प्रदाय हमारी संस्कृति और मूल्यों को नष्ट कर देगा। वर्तमान समय में साम्प्रदायिकता का आधार केवल धर्म ही नहीं है, बल्कि इसके साथ-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक ध्येय से जुड़े हैं। यह प्रवृत्ति स्वार्थपूर्णता के लिए धर्म का सहारा लेती है, जिससे तनाव बढ़ता है।

पं. जवाहर लाल नेहरू साम्प्रदायिक को भारत का शत्रु नम्बर एक मानते थे। अपने भाषण में उन्होंने कहा था— “साम्प्रदायिकता के मुद्दे पर कोई समझौता नहीं होना चाहिए चाहे वह मुस्लिम

साम्प्रदायिकता क्यों न हो? क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रत्व और भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध एक भारी चुनौती है।” रेण्डम हाउस डिक्शनरी के अनुसार, “अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय अथवा सम्प्रदायों के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, दयादृष्टि, घृणा, विरोध और आक्रमण की भावना साम्प्रदायिकता है, जिसका आधार वह वास्तविकता या काल्पनिक भय या आशंका है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे अपने सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देने या हमें जान-माल की क्षति पहुंचाने के लिए कटिबद्ध हैं।”

साम्प्रदायिकता की उपर्युक्त परिभाषाओं से निम्नलिखित विशेषताएं प्रकट होती हैं—

- (1) साम्प्रदायिकता का संबंध धार्मिक समूहों से है।
- (2) साम्प्रदायिकता में यह भाव विद्यमान होते हैं कि अपना ही धर्म या पंथ श्रेष्ठ है, अपनी ही भाषा एवं संस्कृति श्रेष्ठ है।
- (3) इसमें अन्य धर्मों, भाषाओं एवं संस्कृतियों के प्रति घृणा, तिरस्कार एवं उपेक्षा के भाव पाये जाते हैं। ये विरोधी भाव ही साम्प्रदायिक तनाव एवं संघर्ष पैदा करते हैं।
- (4) साम्प्रदायिक पारस्परिक स्नेह एवं सहयोग के स्थान पर सामाजिक एवं राजनीतिक अलगाव पैदा करती है।
- (5) साम्प्रदायिक का आधार लोगों में उत्पन्न वह वास्तविकता या काल्पनिक भय है कि अन्य धार्मिक समूह उनके सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देंगे और जान-माल की क्षति पहुंचायेगे।

प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि साम्प्रदायिकता के उद्भाव के कौन-कौन से कारक थे तथा उसके विकास में कौन-कौन से कारकों ने सहयोग प्रदान किया। दूसरी ओर इसके अद्यतन विध्वंसात्मक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

साम्प्रदायिकता के विशेषताओं और कारणों पर गौर करते हुए निःसंदेह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता सामुदायिक रूप से मानव मस्तिष्क की उपज है। यह आर्थिक पूर्वाग्रहों और धार्मिक अंधभक्ति से जुड़ी है इससे प्रेरित व्यक्ति यह मानने लगता है कि उसका मत और विश्वास ही सर्वोपरि है। दूसरे को तुच्छ समझते हुए उसे समाप्त करने की बात सोचने लगता है। इसके पीछे एक तरह का भय एवं आशंका होती है कि उक्त सम्प्रदाय हमारी संस्कृति और मूल्यों को नष्ट कर देगा। वर्तमान समय में साम्प्रदायिकता का आधार केवल धर्म ही नहीं है बल्कि इसके साथ-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक ध्येय भी जुड़े हैं। यह प्रवृत्ति स्वार्थपूर्णता के लिए धर्म का सहारा लेती है, जिससे तनाव बढ़ता है।

भारत में उग्र साम्प्रदायिकता का उदय चाहे 19वीं एवं 20वीं सदी में हुआ हो किन्तु इसका इतिहास अति प्राचीन है। प्राचीन समय से ही अनेक आक्रमणकारी समूहों के रूप में भारत आते रहे। हिन्दू साम्प्रदायिकता के आलोचकों ने साम्प्रदायिकता की खोज दयानंद सरस्वती के आर्य समाज के आंदोलन से की जो इसाईयत और इस्लाम के खिलाफ रहा। हिन्दू महासभा के नेता वीर सावरकर ने हिन्दू को परिभाषित करते हुए कहा “जो भारत को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि और पूण्य-भूमि समझता है वही वास्तव में हिन्दू होता है।” ऐसी व्याख्या इस्लाम विरोधी थी क्योंकि मुसलमान भारतवर्ष को पूण्य भूमि स्वीकार करने को तैयार नहीं हो सकते। सन् 1925 में डॉ. केशवराय बलिराम हैडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना की जिसमें हिन्दू समुदाय को सैन्य प्रशिक्षण प्रदान करना शुरू किया। संगठन ने हिन्दू राष्ट्रवाद की कल्पना प्रस्तुत करते हुए गैर हिन्दुओं को इससे विमुख कर दिया। मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय सन् 1920 में अहमद बरेलवी द्वारा चलाये गए जिहाद आंदोलन से हुआ। सन् 1975 में अलीगढ़ आन्दोलन ने वैमणस्यता को बढ़ाया।

सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला। इसी क्रम में मौलाना मौदूदी द्वारा स्थापित जमाते इस्लामी, 1953 में अलीगढ़ और 1961 में नई दिल्ली में हुए मुस्लिम कन्वेंशनों ने साम्प्रदायिकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इन संगठनों ने मुस्लिम समुदाय को सक्रिय करके एक दबावकारी गुट बना दिया ताकि विशेष अधिकार प्राप्त किया जा सके। अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीति ने उग्र साम्प्रदायिकता को जन्म दिया।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का कहना था कि यदि साम्प्रदायिकता के इतिहास का तटस्थ अध्ययन करें तो यह ज्ञात होगा कि जब-जब हिन्दू मुस्लिम एकता के करीब पहुंचे, कार्यों में सामन्जस्य हुआ, अधिकारों की मांग की तब-तब साम्प्रदायिकता का नंगा नाच हुआ। बाँटों और खाओ की नीति का पहला लाभांश मार्ले मिण्टो सुधार के रूप में देखने को मिला। लेकिन मूलरूप सन् 1919 के सुधारों ने आधुनिक राजनीतिक साम्प्रदायिकता का उद्घाटन किया। फलतः देश दो भागों में बँट गया।

प्रस्तुत अध्ययन 'साम्प्रदायिकता की समस्या का राजनैतिक विश्लेषण' को चुनने का निम्नलिखित उद्देश्य है—

- (1) साम्प्रदायिकता के उद्भव के कारणों का पता लगाना।
- (2) इसके विकास में किन-किन कारणों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, इसकी खोज करना।
- (3) इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक कारकों में कौन से कारण अधिक उत्तरदायी हैं, इस पर प्रकाश डालना।
- (4) साम्प्रदायिक हिंसा का प्राचीन काल से लेकर आज तक के इतिहास पर प्रकाश डालना।
- (5) साम्प्रदायिकता के अद्यतन विध्वंससात्मक पहलुओं की खोज करना।
- (6) इस शोध-पत्र द्वारा यह पता लगाया जायेगा कि सरकारी स्तर पर इसके रोकथाम के लिए क्या प्रयास किये जा रहे हैं।
- (7) इस शोध-पत्र के माध्यम से यह सुझाव दिया जायेगा कि सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर क्या प्रयास किये गये।

## शोध की उपकल्पनाएँ

किसी भी विषय का वैज्ञानिक अध्ययन सफलतापूर्वक तब तक संभव नहीं है जब तक अध्ययन से संबंधित विषय का आरंभिक ज्ञान न हो। फलतः विषय को दिशा एवं वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए अध्ययन से संबंधित निम्नलिखित उपकल्पनाओं का निर्माण किया गया है:—

- (1) साम्प्रदायिकता एक संकीर्ण मानसिकता है जिससे भारत के विकास में अवरोध उत्पन्न हो रहा है।
- (2) साम्प्रदायिकता की समस्या आज उत्पन्न नहीं हुई है बल्कि प्राचीन काल में ही इसका बीज रोपण हो गया था।
- (3) साम्प्रदायिकता से सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता नष्ट होती है।
- (4) साम्प्रदायिकता को शिक्षा, सहिष्णुता एवं सामाजिक विकास से रोका जा सकता है।
- (5) भारत सरकार के कानून में ढिलापन भी इसके लिए कम जिम्मेवार नहीं है।
- (6) गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक साम्प्रदायिकता तनाव देखे जाते हैं।
- (7) राजनीतिक व्यवस्था साम्प्रदायिकता तनाव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- (8) साम्प्रदायिक तनाव भूमंडलीकरण के इस दौर में कम होता प्रतीत हो रहा है।

(9) हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान अधिक साम्प्रदायिक होते हैं। क्योंकि उन्हें सांस्कृतिक लोप का डर बना रहता है।

## अध्ययन की समीक्षा

प्रस्तुत अध्ययन इस बात को स्पष्ट करते हैं कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित होने पर भी साम्प्रदायिक तनाव का होना प्रजातांत्रिक मूल्यों का आभाव बताता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के व्यावहारिक विकास को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता राष्ट्र के समक्ष एक बड़ी आंतरिक चुनौती है।

साम्प्रदायिकता के अस्तित्व को स्वीकार करने का अर्थ है धर्मनिरपेक्ष भारत के अस्तित्व को नकार देना और इसी अर्थ में विभाजनकारी प्रवृत्ति राष्ट्र एवं समाज के प्रति इनसे शक्तिशाली एवं वास्तविक खतरा है। यह होना चाहिए था कि औद्योगिक सामाजिक एवं शैक्षणिक विकास के द्वारा हमारे समाज में धर्म निरपेक्ष शक्तियाँ अधिक सशक्त होती और धार्मिक कठमुल्लेपन की भावना में कमी आती, लेकिन हुआ इसके विपरीत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में साम्प्रदायिक शक्तियाँ अत्यधिक बलवती होती गईं। समकालीन भारत में साम्प्रदायिकता दो विशिष्ट कारणों से खतरनाक आयाम ग्रहण कर चुकी हैं—

(क) साम्प्रदायिकता की मनोवृत्ति शहरों की दीवारों को तोड़कर सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में सौहार्दपूर्ण वातावरण में तेजी से फैल रही है।

(ख) इसमें क्रमशः जन-आंदोलन का रूप ले लिया है। जैसे रामजन्म भूमि, बाबरी मस्जिद विवाद।

## विश्लेषण

आमतौर से साम्प्रदायिकता का अर्थ समाज को धार्मिक दृष्टि से देखने का एक जरिया माना जाता है। यह एक नकारात्मक नीति है जो राष्ट्र निर्माण के बाधक तत्वों में सर्वाधिक प्रबल परिलक्षित होती है। यदि पूरे दक्षिण एशिया को ध्यान में रखकर साम्प्रदायिकता को परिभाषित किया जाए तो यह “सामाजिक धार्मिक समूहों की वह प्रवृत्ति है जिसके द्वारा वे दूसरे और अधिक सामाजिक एवं राजनीतिक ताकत को आधुनिकीकरण तथा परिवर्तन विरोधी अवधारणा बहुधार्मिक तथा बहुभाषायी समुदायों के सह अस्तित्व के लिए चुनौती है। इसकी सुस्पष्ट अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक हिंसा या दंगों के रूप में होती है।

विपिन चन्द्रा ने अपनी पुस्तक ‘भारत का स्वतंत्र संघर्ष में साम्प्रदायिक विचारधारा के तीन तत्व या चरण बताए हैं, जिनमें आपस में तारतम्य होता है। इस क्रम में सबसे पहला स्थान इस विश्वास का है कि एक ही धर्म मानने वालों के सांसारिक हित यानी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हित भी एक जैसे होते हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा के उदय का यह पहला आधार है। इसका दूसरा तत्व यह विश्वास है कि भारत जैसे बहुभाषीय समाज में एक धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हित यानी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक हित अन्य किसी भी धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हितों से भिन्न है। साम्प्रदायिकता अपने तीसरे चरण में तब प्रवेश करती है जब यह मान लिया जाता है कि विभिन्न धर्मों के अनुनायियों या समुदायों के हित एक-दूसरे के विरोधी हैं। इस चरण में आकर साम्प्रदायिक जोर देकर यह कहने लगता है कि दो समुदायों या समूहों के हित एक हो ही नहीं सकते, उनमें परस्पर विरोध होना स्वभाविक है।

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि व्यक्ति, दल या आन्दोलन में साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म पहले चरण से आरम्भ होता है। दूसरे चरण जिसे ‘उदार साम्प्रदायिकता’ कहा जाता है से होते हुए

अंतिम चरण 'उग्र साम्प्रदायिकता' के रूप में परिणत हो जाता है। अंग्रेजों के आगमन के बाद आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। कृषि और उद्योग के क्षेत्र में नये प्रयोगों का शुभारंभ हुआ। अर्थव्यवस्था बदलनी शुरू हुई तो समाज में बदलाव स्वतः होना स्वाभाविक है। आधार बदलेगा तो अधिरचनाएँ बदल ही जायेगी। वैसे कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में विकास अंग्रेजों के द्वारा संतोषजनक तो नहीं हुआ यदि हुआ भी तो असंतुलित विकास, जिसने सामाजिक तनावों में पर्याप्त वृद्धि अवश्य कर दी। असंतुलित विकास ने समाज में पुराने सामाजिक तनावों को उजागर किया तथा अलगाव एवं शत्रुता को उत्पन्न किया।

जैसे-जैसे अंग्रेजी प्रभुत्व ने अपनी सत्ता को सुदृढ़ करना शुरू किया वैसे ही हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच ब्रिटिश शासन के प्रति दो विभिन्न प्रकार की अवधारणाओं ने जन्म लिया। आरंभ में हिन्दुओं ने राजनीतिक सत्ता के इस हस्तान्तरण को प्राचीनता से आधुनिकता में आगमन माना। किन्तु मुसलमानों ने इस नवीन शासन को बिल्कुल भिन्न प्रकार से देखा। उन्होंने अंग्रेजों को अपने राजनीतिक सत्ता का हनन करनेवाला माना। विशेषकर मुसलमानों के कुलीन वर्ग में अपमान एवं पराजय की गहरी भावना घर कर गयी। इतना ही नहीं परंपरागत कारीगरी में आयी गिरावट, हिन्दू व्यापारियों में तथा महाजनों के हाथों धन के एकाग्रिकरण में मुसलमानों की मुश्किलों को और बढ़ाया। परिणामतः शुरू में अंग्रेजों का हिन्दुओं के साथ तादात्म्य स्थापित रहा तो आगे चलकर मुसलमान इनके प्रिय हो गये। स्पष्ट है कि ये दोनों धर्मों का उपयोग अपने स्वार्थ की पूर्ति एवं परिस्थिति को अपने अनुरूप करने के लिए करते रहे।

जिस साम्प्रदायिकता का बीजारोपण अंग्रेजों के द्वारा औपनिवेशिक काल में किया गया, उसका प्रभाव राष्ट्रीय आंदोलन पर भी पड़ा। एक सामान्य लक्ष्य स्वतंत्रता की प्राप्ति हेतु यद्यपि सभी दल कटिबद्ध दिखे, फिर भी समय-समय पर उनमें मतभेद अवश्य उभरे। जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलन सशक्त हुआ, वैसे-वैसे यह तत्व भी अपनी जड़ मजबूत करता गया। भारत शासन अधिनियम 1909 में साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व का ऐसा बीज पड़ा जिसकी परिणति राष्ट्र के विभाजन के रूप में देखने को मिलता है। जवाहरलाल नेहरू ने साम्प्रदायिकता को प्रगति तथा प्रतिक्रिया के बीच के संघर्ष के रूप में वर्णित किया है। यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों और धार्मिक सुधार के क्षेत्रों में सभी प्रकार के क्रांतिकारी शक्तियों का विरोध करती है। यह समाजवाद एवं सामाजिक समानता का भी विरोधी है। साम्प्रदायिकता के कारणों की छानबीन की जाये तो व्यक्तिगत सोच, आर्थिक विकास का मनोनुकूल न होना, अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक विभेद आदि तो है ही किन्तु सबसे प्रभावशाली कारण रहा है राजनीतिक जिसके तहत सत्ता प्राप्ति या बनाए रखने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से धर्म को आधार बनाकर हितों की पूर्ति की जाती है।

जहाँ तक व्यक्तिगत सोच की बात है यह वह स्थिति है जहाँ कोई व्यक्ति अपने धर्म में इतना अधिक तल्लीन हो जाता है कि अन्य सभी धर्मों से वह अपने धर्म को श्रेष्ठ समझने लगता है तो ऐसे व्यक्ति के अभिप्रेत विचारों से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है। हालांकि यह स्थिति व्यवहारिक रूप में कम ही देखने को मिलती है। कुल मिलाकर सभी राजनीतिक दल लोगों की धार्मिक भावनाओं का शोषण कर रहे हैं। इस संदर्भ में आशीष नन्दी का कहना ठीक ही है कि धर्म के नाम पर दंगों को संगठित किया जाना भारतीय समाज में सबसे अधिक धर्मनिरपेक्ष घटना है। वे उनको इस प्रकार आयोजित करते हैं जैसे कि एक राजनैतिक रैली या एक हड़ताल को संगठित किया जाता है। यदि मुख्यमंत्री को हटाना हो, चुनाव अभियान में मदद करनी हो या फिर किसी एक गुट की सहायता करनी हो दंगों को करवाया जाता है। भारत में कुछ राजनैतिक दलों के पास आज

ऐसे व्यवसायी हैं जो दंगा कराने में पूर्ण रूप से निपुण हैं। मेरठ का दंगा हो या भागलपुर का या फिर गुजरात का, सभी में राजनैतिक सलिप्तता पायी गयी है।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता एक जटिल समस्या है, जो दिन प्रतिदिन गहराता ही जा रहा है। सृजन के बदले यह विध्वंसात्मक विचारधारा है। आज इस समस्या से निजात पाने की आवश्यकता तीव्रता से महसूस हो रही है, ताकि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को अंतिम रूप देकर लोकतांत्रिक मूल्यों को वास्तविक रूप में स्थापित किया जा सके।

## सुझाव एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि साम्प्रदायिकता की समस्या एकएक खत्म होनेवाली नहीं है। इसके लिए कुछ सशक्त पहल करने की जरूरत है। इस संदर्भ में कुछ निम्नलिखित सुझाव उपयोगी साबित हो सकते हैं।

- (1) शिक्षा के द्वारा काफी हद तक इस समस्या से मुक्ति मिल सकता है। अतः बच्चों के सिलेबस में प्रारम्भिक अवस्था से ही कविता, कहानी के द्वारा इसके अर्थ को समझाया जाय।
- (2) धर्म को सही अर्थ में परिभाषित करना। धर्म नैतिकता का पोषक है। दुनिया का कोई भी धर्म यदि शास्त्रों के आलोक में बात की जाये तो स्पष्ट तौर पर हिंसा का निषेध करता है।
- (3) सामाजिकरण के साधन को सशक्त किया जाना चाहिए।
- (4) सरकार के तरफ ऐसी परिस्थितियों के सृजन का प्रयास होना चाहिए जिसमें एक समान नागरिक संहिता आसानी से कार्यान्वित किया जा सके।
- (5) मिडिया अगर अपने दायित्वों का निर्वहन निष्पक्षतापूर्वक करे तो निश्चय ही प्रभाव सकारात्मक होगा।

यदि उपर्युक्त सुझावों पर पहल किया गया तो निश्चित रूप से इस दिशा में सकारात्मक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। वैसे किसी भी जटिल सामाजिक समस्या का पूर्ण समाधान एक लंबे प्रयास के बाद ही फलीभूत होता है। अतः विश्व शांति के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के बीच सामंजस्य एवं एकता आवश्यक है। तभी भारत एक विवेकशील राष्ट्र बन सकेगा।

## संदर्भ सूची

- (1) योजना, कुरुक्षेत्र से एकत्रित तथ्य
- (2) आधुनिक भारत - सुमित सरकार
- (3) भारत का स्वतंत्रता संघर्ष - विपिन चंद्रा
- (4) भारतीय समाज - एस.एल. दोषी एवं जैन
- (5) प्रतियोगिता दर्पण - मार्च, 2006
- (6) भारतीय राजनीतिक व्यवस्था - एस.एम. सईद
- (7) प्रतियोगिता दर्पण - सितम्बर, 2007
- (8) रिलिजन ऑफ इंडिया - ए. वार्थ
- (9) रिलिजन इन इंडिया - टी.एन. मदन
- (10) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम - बी.एल. ग़ोबर

# भारत में जमीनी जनतंत्र: पंचायती राज व्यवस्था

चन्दन कुमार

*सीनियर रिसर्च फेलो, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी*

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में व्यापक राजनीतिक सहभागिता एवं व्यापक विकास के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था को स्थापित किया गया है। भारत में शासन के तीन स्तर हैं - केन्द्रीय स्तर, राज्य स्तर एवं स्थानीय स्तर। तीसरे स्तर जिसे स्थानीय स्तर कहा गया है, के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र के लिए पंचायती राज व्यवस्था तथा नगरीय क्षेत्रों के लिए नगर पंचायत/नगरपालिका/नगर निगम की व्यवस्था की गई है। जिनका मुख्य उद्देश्य स्थानीय समस्याओं का समाधान तथा व्यापक राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करना है।

स्थानीय स्वशासन का अर्थ है कि स्थानीय क्षेत्रों का प्रशासन वहां के निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा चलाया जाए। स्थानीय स्वशासन में जनता की सीधी भागीदारी होती है। इसलिए उसे स्थानीय स्वशासन का नाम दिया जाता है। स्थानीय स्वशासन 'सत्ता के विकेन्द्रीकरण' पर आधारित एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था है।

## पंचायतों का इतिहास

### प्राचीन भारत में पंचायतें

भारत में प्राचीन काल से ही पंचायती संस्थाओं का अस्तित्व रहा है। भारत में वैदिक काल में ग्राम, प्रशासन का उत्तरदायित्व पंचायतों पर ही था जो गांव के प्रमुख व्यक्तियों की सहायता से कार्य करता था। मौर्यकाल में स्थानीय शासन बहुत विकसित था। कौटिल्य ने ग्रामशासन के सन्दर्भ में 'अर्थशास्त्र' में पर्याप्त चर्चा की है। डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि "विशाल साम्राज्य में एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना होते हुए भी ग्राम शासन को अपने विषयों में पूर्णतः स्वतंत्रता प्राप्त थी। यह स्थानीय शासन के लिए नियम कानून तय करती थी।" मौर्य काल में ग्राम, शासन की सबसे निचली ईकाई थी, जिसका शासक 'ग्रामिक' कहलाता था। इसके साथ ही अन्य अधिकारियों का विवरण मिलता है। मौर्य काल के इन अधिकारियों के लिए 'स्थानीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त' लागू किया गया था।

गुप्त काल में ग्राम प्रशासन के लिए 5 सदस्यीय समितियों की स्थापना की गई थी और इनको पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। डॉ० अल्लेकर ने गुप्त प्रशासन के बारे में लिखा है - "गुप्तकालीन शासन प्रणाली तथा उसकी उपलब्धियों के विषय में हमारे पास विस्तृत साक्ष्य उपलब्ध है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह केन्द्र, प्रांत एवं स्थानीय स्तर पर बहुत ही सुव्यवस्थित थी।" चोल प्रशासन में तो "पूर्ण स्वायत्त" ग्रामीण शासन की पूर्ण व्यवस्था।

राजपूतकालीन समय में ग्राम, प्रशासन की सबसे छोटी ईकाई थी। ग्राम का प्रबंध ग्राम सभाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता था। प्रत्येक ग्राम की एक सभा होती थी जो अपने क्षेत्र में शासन का समस्त कार्य संभालती थी।

सुल्तनत कालीन प्रशासन मूलतः सैनिक था और सुल्तान निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी थे। इस काल में नगर प्रशासन केन्द्रीकृत नौकरशाही द्वारा संचालित था, किंतु गांव अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र थे।

मुगलशासन काल में भी ग्राम स्वायत्त शासन के सबसे महत्वपूर्ण निकाय थे। गांवों का प्रबंध पंचायते करती थी तथा पंचायते ही स्थानीय मामलों के सन्दर्भ में फैसला लेती थी। गांवों में तीन प्रमुख पदाधिकारी होते थे – मुकद्दम, पटवारी और चौधरी। बाद के मुस्लिम शासनकाल में स्थानीय संस्थाओं की स्थिति में परिवर्तन देखने को मिलता है। इस काल की स्थानीय संस्थाएं प्राचीन भारत के स्थानीय संस्थाओं के समान स्वतंत्र एवं लोकतांत्रिक नहीं थीं।

### **ब्रिटिशकाल में स्थानीय स्वशासन**

यद्यपि भारत में स्थानीय शासन प्राचीन काल से ही विद्यमान था, किन्तु वर्तमान संगठन एवं कार्य प्रणाली के रूप में उसका प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही हुआ है। न तो प्राचीन युग में प्रचलित ग्रामीण स्वशासन की व्यवस्था में और न ही उस समय की नगरीय शासन प्रणाली में ही ऐसा शासन देखने को मिलता था जिसका समय-समय पर निर्वाचन होता हो, और जो निर्वाचकगण के प्रति उत्तरदायी हो। ऐसी व्यवस्था का विकास पश्चिम में हुआ और ब्रिटिश सरकार ने भारत में उसका सूत्रपात किया था। “स्थानीय स्वशासन का अर्थ ऐसा प्रतिनिधि संगठन है जो एक निर्वाचक मण्डल के प्रति उत्तरदायी हो, प्रशासन तथा करारोपण की-विस्तृत शक्तियों का उपभोग करता हो और उत्तरदायित्व की शिक्षा देने वाली पाठशाला तथा किसी देश के शासन का निर्माण करने वाले अवयवों की श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी, इन दोनों रूपों में कार्य करता हो। प्राचीन ग्रामीण समाजों का निर्माण वंशानुगत विशेषाधिकार अथवा जाति के आधार पर होता था, उसका कार्यक्षेत्र अत्यधिक सीमित था, राजस्व वसूल करना तथा जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करना उनके मुख्य काम थे, वे न तो राजनीतिक शिक्षा के सजग साधन थे और न ही प्रशासनिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग थे।”

अंग्रेजी शासन काल में ग्रामीण प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। धीरे-धीरे ग्रामीण प्रशासन का स्रोत पंचायती संस्थाएं समाप्त होने लगीं। सभी कार्य प्रादेशिक सरकारें करने लगीं। जमींदारों को ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ अधिकार दिये गए। 1882 के पूर्व तक स्थानीय शासन पूर्णतः अभासी बना रहा, इसलिए भारतीय दृष्टिकोण से यह बहुत अंशों में न तो ‘स्थानीय’ था और न ‘स्वशासी’। इस बीच भारतीयों में राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ, जिसने नवीन आकांक्षाओं को जन्म दिया। लार्ड मेयो के बाद लार्ड रिपन गर्वनर जनरल नियुक्त हुआ। उसने 1882 में स्थानीय स्वशासन को स्वशासी बनाने का प्रस्ताव किया। उसे स्थानीय शासन के नवीन दर्शन के प्रतिपादन का श्रेय दिया जाता है। उसकी दृष्टि में स्थानीय शासन प्रधानतः ‘राजनीतिक तथा सार्वजनिक शिक्षा का एक साधन’ था। जिस प्रस्ताव में इन सिद्धान्तों का समावेश किया गया उसे एक महान अधिकार पत्र और उसके प्रणेता लार्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक कहा गया।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सर्वप्रथम कांग्रेस द्वारा ग्रामीण प्रशासन के लिए पंचायतों को पुनर्जीवित करने की मांग सन् 1909 के लाहौर अधिवेशन में रखी गई। 14 फरवरी 1916 को गांधी जी ने इस मांग को मद्रास मिशनरी सम्मेलन में पुनः उठाया। ब्रिटिश शासकों ने ग्रामीण प्रशासन की स्थिति की जांच तथा उनके सन्दर्भ में सिफारिश करने के लिए सन् 1882, 1907 एवं 1920 में शाही आयोग नियुक्त किये। शाही आयोग ने ग्रामीण प्रशासन के विकास पर बल दिया। सन् 1920 में संयुक्त प्रांत, असम, बंगाल, बिहार, मद्रास और पंजाब में ग्रामीण उत्थान के लिए पंचायतों की स्थापना के लिए कानून बनाये गए।

## स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिए संविधान निर्माताओं ने संविधान में अनुच्छेद 40 को सम्मिलित किया। इस अनुच्छेद के अनुसार “राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिए कदम उठायेगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियाँ प्रदान करेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की ईकाई के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।”<sup>2</sup> परन्तु यह अनुच्छेद संविधान के भाग-3 के मूल अधिकारों में शामिल नहीं किया गया बल्कि इसे भाग-4 के नीति निर्देशक तत्वों (Directive Principles of State Policy) में सम्मिलित किए जाने से इस दिशा में कोई कानून बनाने की पहल नहीं की गई। उल्लेखनीय है कि ‘स्थानीय स्वशासन’ (Local Self Government) जिसके अन्तर्गत ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र दोनों ही आते हैं अनन्य रूप से राज्य सूची का विषय है।

2 अक्टूबर, 1952 को प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा पंचायती राज एवं सामुदायिक विकास मंत्रालय के तत्वाधान में ‘सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के अधीन विकासखण्ड को ईकाई मानकर ब्लाक (Block) में विकास हेतु सरकारी कर्मचारियों के साथ-साथ सामान्य जनता को जोड़ने का प्रयास किया गया लेकिन सामान्य जनता को अधिकार न दिये जाने के कारण यह कार्यक्रम सरकारी अधिकारियों तक सीमित रह गया और किल हो गया। 2 अक्टूबर 1953 को ‘राष्ट्रीय प्रसार सेवा’ कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, किन्तु वह भी असफल सिद्ध हुआ।

## पंचायतों से संबंधित गठित प्रमुख समितियाँ ( Various Committes Related to Panchayat)

स्वतंत्रता के बाद पंचायतों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए समय-समय पर विभिन्न समितियों का गठन किया गया जो इस प्रकार हैं-

### बलवंतराय मेहता समिति 1957

‘सामुदायिक विकास कार्यक्रम’ की किलता के बाद बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया इस समिति की प्रमुख स्फारिशें निम्न प्रकार थी-

- त्रिस्तरीय पंचायत राज संस्थाओं की स्थापना की जाए, जिसके अन्तर्गत ग्राम स्तर पर ‘ग्राम पंचायते’ ब्लाक स्तर पर ‘पंचायत समितियाँ’ तथा जिला स्तर पर ‘जिला परिषद्’ का गठन हो।
- प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralization) की मूल ईकाई प्रखण्ड या समिति स्तर पर हो।

### पंचायती राज का शुभारम्भ

मेहता समिति की स्फारिश के आधार पर प्रधानमंत्री नेहरू ने स्वतंत्र भारत में सर्वप्रथम 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में ‘प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण’ की योजना का शुभारम्भ/उद्घाटन किया जिसे ‘पंचायती राज’ कहा गया। इस अवसर पर पंडित नेहरू ने इसे नए भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक कदम बताते हुए कहा था कि “याद रखो यह एक ऐतिहासिक कदम है जैसे-जैसे कदम उठे, अंग्रेजी राज्य खत्म हो कर यहां स्वराज्य आया, रजवाड़े अलग हुए। वह भी एक जनता के राज्य में शरीक हुए जागीरदारी प्रथा का अन्त हुआ। अब जनता के हाथ में सारी बागडोर आ गई है। पहले दो चीजे थी, राजा और प्रजा, अब वो दो चीजे नहीं रही। क्योंकि राजा भी प्रजा हो गया, और प्रजा राजा हो गई। आज से पंचायती राज की शुरुआत हो गई

है।<sup>13</sup> उल्लेखनीय है कि 'पंचायती राज' का श्री गणेश राजस्थान के नागौर में 02 अक्टूबर 1959 को पंडित नेहरू द्वारा निम्न उद्देश्यों के लिए किया गया - गांवों के लोग अपने शासन का उत्तरदायित्व स्वयं संभालेंगे। यह आवश्यक है कि ग्रामीण जन कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा, सिंचाई, पशुपालन, परिवहन बाजार हाट आदि से संबंधित विकास प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग ले उन्हें यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं और अनिवार्यताओं के विषय में स्वयं ही निर्णय ले सकें। लोग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से स्थानीय नीतियों का निर्धारण करे और जनता की वास्तविक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए कार्यक्रम को लागू करे।<sup>14</sup>

### **अशोक मेहता समिति, 1977**

बलवंत राय मेहता द्वारा की गई सिफारिशों में आई कमियों को दूर करने के लिए वर्ष 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायती राज समिति का गठन किया गया। इस समिति ने सन् 1978 में अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को प्रस्तुत की जिसकी प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थी-

- पंचायते दो स्तर पर गठित हो जिसके अन्तर्गत जिला स्तर पर 'जिला परिषद' तथा ब्लाक स्तर पर 'मण्डल पंचायत' हो।
- ग्राम स्तर पर पंचायतों का गठन न किया जाए।
- ग्राम पंचायत के स्थान पर 'मण्डल पंचायत' हो जिसकी जनसंख्या 15 से 20 हजार हो।
- सभी विकास योजनाएं जिला परिषद द्वारा तैयार किया जाए और उनका क्रियान्वयन 'मण्डल पंचायत' द्वारा होना चाहिए।
- राज्य स्तर पर पंचायती राज वित्त आयोग हो।
- जिला परिषद को 'लघु सचिवालय' का रूप दिया जाए।

### **जे.के. वी. राव समिति, 1985**

"ग्रामीण विकास एवं उन्मूलन से संबंधित, प्रशासनिक, व्यवस्था" पर सिफारिश करने के लिए सन् 1985 में जे० के० वी० (J.K.V.) की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति की सिफारिशें थीं -

- राज्य स्तर पर विकास परिषद् का गठन किया जाए।
- कार्य सम्पादन हेतु जिला परिषदों की विभिन्न समितियों का गठन किया जाए।

### **एल० एम० सिंधवी समिति, 1986**

पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों की समीक्षा एवं लोकतंत्र के विकास हेतु पंचायती राज संस्थाओं के पुनर्जीवन पर सन् 1986 में एल.एम. सिंधवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति की प्रमुख सिफारिशें थी -

- पंचायती राज प्रणाली के कुछ पहलुओं को 'संवैधानिक दर्जा' दिया जाए ताकि इन्हें राजनीतिज्ञों व नौकरशाहों के हस्तक्षेप से दूर रखा जा सके।
- ग्राम पंचायतों को अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए जाए।

### **पी.के. थुंगन समिति, 1988**

सन् 1988 में पी.के. थुंगन की अध्यक्षता में (जिला नियोजन पर) संसद की एक सलाहकार समिति का गठन किया गया। इस समिति ने पंचायती राज को सशक्त करने के लिए अनेक सिफारिशें की, जिसमें एक प्रमुख सिफारिश थी कि पंचायतों को 'संवैधानिक दर्जा' दिया जाए।

## भारत में पंचायती राज के विभिन्न काल

- **उत्थान काल (Phase of Ascendancy)** वर्ष 1959 से 1964 तक के पंचायती राज के कार्यकाल को 'उत्थान काल' कहा जाता है।
- **ठहराव काल (Phase of Stagnation)** वर्ष 1965 से 1969 तक की कार्य विधि को 'ठहराव काल' कहा जाता है।
- **ह्रास काल (Phase of Decline)** वर्ष 1969 से 1983 तक की कार्यविधि को 'ह्रास काल' माना जाता है।
- **जीवन काल में पुनरोदय (Phase of Revival)**- वर्ष 1983 के बाद से पंचायती राज संस्थाओं के जीवनकाल में पुनरोदय शुरू होता है।

## 64वां संविधान संशोधन विधेयक, 1989<sup>5</sup>

15 मई, 1989 को राजीव गांधी की सरकार ने पंचायतों से संबंधित 64वां संविधान संशोधन विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। यह विधेयक लोकसभा में तो पारित हो गया, परन्तु राज्यसभा में पारित नहीं हो सका। वस्तुतः यही वह आधार (विधेयक) है, जो भविष्य में परिवर्धित होकर 73वें संविधान संशोधन के रूप में सामने आया।

## 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992<sup>6</sup>

73वें संविधान संशोधन विधेयक के रूप में 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा तथा 23 दिसम्बर 1992 को राज्यसभा द्वारा पारित किया गया, बाद में राष्ट्रपति से स्वीकृति प्राप्त होने पर यह विधेयक 24 अप्रैल, 1993 को अधिनियम के रूप में लागू हुआ। 73वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से पंचायतों को संविधान के भाग-9 में शामिल कर संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा संविधान में एक 11वीं अनुसूची जोड़ी गई।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ-

1. **ग्राम सभा का गठन**- पंचायत व्यवस्था के तहत एक ग्राम सभा होगी, जो पंचायत व्यवस्था के सबसे निचले स्तर पर होगी।
2. **पंचायतों का गठन** -प्रत्येक राज्य में ग्राम, खण्ड (Block) और जिला स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायतों का गठन किया जायेगा परन्तु मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन उस राज्य में नहीं किया जायेगा जिसकी जनसंख्या 20 लाख से कम है।
3. **पंचायतों की संरचना** -पंचायत के तीनों स्तरों पर सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से होगा, लेकिन अध्यक्ष पद के लिए निचले स्तर पर अर्थात् ग्राम पंचायत को छोड़कर खण्ड एवं जिला स्तर पर चुनाव में चुने गए सदस्यों द्वारा अपने में से किया जायेगा।
4. **स्थानों का आरक्षण** :- पंचायत के तीनों स्तरों में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के सदस्यों का आरक्षण उनकी जनसंख्या के अनुपात में होगा तथा इनमें एक तिहाई आरक्षण महिलाओं का भी होगा।
5. **पंचायतों की अवधि** :- पंचायतों के सभी स्तरों का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा लेकिन इससे पहले भी इसका विघटन किया जा सकता है। लेकिन 6 मास के अन्दर चुनाव कराना आवश्यक होगा।

6. **राज्य निर्वाचन आयोग का गठन :-**पंचायतों के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए और उन सभी निर्वाचनों के संचालन एवं निर्देशन व नियंत्रण हेतु राज्य निर्वाचन आयोग होगा, जो राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त होगा।
7. **राज्य वित्त आयोग का गठन :-** प्रत्येक पांच वर्ष की समाप्ति पर राज्यपाल राज्य वित्त आयोग का गठन करेगा, जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनर्विलोकन करेगा।
8. **अधिनियम का कुछ क्षेत्रों में लागू न होना -** यह अधिनियम निम्न क्षेत्रों में लागू नहीं होगा-
  - विशिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों
  - नागालैण्ड, मेघालय और मिजोरम राज्यों में
  - मणिपुर राज्य के ऐसे पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ पर्वतीय परिषद् विद्यमान है।
  - पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले की दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् पर।
9. **11वीं अनुसूची में कार्यों का उल्लेख<sup>7</sup>-** 73 वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में एक ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गई जिसमें कुल 29 विषय हैं। जो पंचायतों के कार्यों से संबंधित हैं। यह इस प्रकार है -
  1. कृषि (कृषि विस्तार सहित)
  2. भूमि सुधार कार्यान्वयन
  3. लघु सिंचाई, जलप्रबंध
  4. पशुपालन, डेयरी
  5. मत्स्य पालन
  6. सामाजिक एवं फार्म वनोद्योग
  7. लघु वन उत्पाद
  8. खादी ग्राम व कुटीर उद्योग
  9. लघु उद्योग
  10. ग्रामीण आवास
  11. पेयजल
  12. ईंधन एवं चारा
  13. सड़क, पुल, फेरी मार्ग
  14. ग्रामीण विद्युतीकरण
  15. गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत
  16. निर्धनता निवारण कार्यक्रम
  17. शिक्षा
  18. तकनीकी प्रशिक्षण व व्यावसायिक शिक्षा
  19. पुस्तकालय
  20. सांस्कृतिक गतिविधियाँ
  21. प्रौढ़ व अनौपचारिक शिक्षा
  22. बजार व मेले
  23. स्वास्थ्य एवं सफाई

24. परिवार कल्याण
25. महिला एवं बाल कल्याण
26. समाज कल्याण
27. कमजोर वर्गों का कल्याण
28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली
29. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण

## संविधान का भाग-IX

### पंचायतें: एक दृष्टि में

73वां संविधान संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा पंचायतों को संविधान के भाग-9 में शामिल कर 'संवैधानिक दर्जा' प्रदान किया गया। संविधान के इस भाग-9 में कुल 16 अनुच्छेद जोड़े गए हैं। (अनुच्छेद 243 से 243 ण तक)<sup>8</sup>, जो पंचायतों से संबंधित हैं, यह इस प्रकार हैं -

- अनुच्छेद 243 : परिभाषाएं
- अनुच्छेद 243 क : ग्राम सभा
- अनुच्छेद 243 ख : पंचायतों का गठन
- अनुच्छेद 243 ग : पंचायतों की संरचना
- अनुच्छेद 243 घ : स्थानों का आरक्षण
- अनुच्छेद 243 ङ. : पंचायतों की अवधि
- अनुच्छेद 243 च : सदस्यता के लिए निरर्हताएं
- अनुच्छेद 243 छ : पंचायतों की शक्तियां और उत्तरदायित्व
- अनुच्छेद 243 ज : पंचायतों द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्तियां
- अनुच्छेद 243 झ : वित्तीय स्थिति के पुनर्विलोकन हेतु वित्त आयोग का गठन
- अनुच्छेद 243 ञ : पंचायतों के लेखाओं की संपरीक्षा।
- अनुच्छेद 243 ट : पंचायतों के लिए निर्वाचन
- अनुच्छेद 243 ठ : संघ राज्य क्षेत्रों को लागू करना।
- अनुच्छेद 243 ड : इस भाग का कुछ क्षेत्रों में लागू न होना
- अनुच्छेद 243 ढ : विद्यमान विधियों और पंचायतों का बना रहना।
- अनुच्छेद 243 ण : निर्वाचन सम्बन्धी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्णन

### पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम (Panchayat Extension to Schedule Areas Act (PESA), 1996<sup>9</sup>

73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल 1993 से लागू तो हो गया परन्तु आदिवासी बहुल अनुसूचित क्षेत्रों को इस संविधान संशोधन की परिधि से बाहर रखा गया, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 243 ड. के खण्ड 4 (ख) के अनुसार संसद कानून बनाकर इसे वर्जित अनुसूचित क्षेत्रों तथा आदिवासी क्षेत्रों में भी लागू कर सकती है। इस ध्येय को ध्यान में रखकर 73वें संशोधन के लाभों को आदिवासियों तक पहुंचाने के लिए संसद ने पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) विधेयक दिसम्बर, 1996 में पारित किया तथा राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद यह विधेयक 24 दिसम्बर 1996 से

लागू हो गया। इस अधिनियम को PESA के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान में यह भारत के उन राज्यों में लागू है, जहां अनुच्छेद 244(1) के अन्तर्गत 5वीं अनुसूची के प्रावधान प्रवर्तित हैं।

## वर्तमान सन्दर्भ में पंचायती राज

### पंचायती राज मंत्रालय

भारत में केन्द्रीय स्तर पर पंचायती राज के कार्य निर्देशित एवं समन्वित करने के लिए पृथक से एक मंत्रालय की स्थापना 27 मई, 2004 को हुई। इससे पूर्व इस मंत्रालय से संबंधित कार्य ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा निर्वाहित होते थे। इस नए पंचायती राज मंत्रालय का राजनीतिक नेतृत्व पंचायती राज मंत्री द्वारा किया जाता है।<sup>10</sup>

### पंचायती राज मंत्रालय के प्रमुख कार्य

- पंचायती राज सशक्तिकरण हेतु राज्यों में समन्वय करना
- पंचायती राज तथा पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित नीति, कानून एवं कार्यक्रमों का निर्माण एवं क्रियान्वयन करना।
- पंचायत विकास और प्रशिक्षण योजना के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित जन प्रतिनिधियों एवं लोक सेवकों की क्षमता वृद्धि करना।
- संविधान की मूल भावना के अनुरूप पंचायतों को कार्य, कोष तथा कार्मिक हस्तांतरित कराने में मार्गदर्शन देना।
- राष्ट्रीय पंचायत पोर्टल को अद्यतन करना।
- गोलमेज सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों का क्रियान्वयन सुनिश्चित कराना।

### मनरेगा एवं पंचायती राज (MGNREGA & Panchayati Raj )'

महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम - 'मनरेगा' (2005) की शुरुआत 2 फरवरी, 2006 को देश के 200 जिलों में हुई। बाद में इसका देशभर में विस्तार हो गया मनरेगा योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को वर्ष में कम-से-कम 100 दिन अकुशल श्रम वाले रोजगार की गारंटी दी गई है। मनरेगा की धारा 13 से 17 के बीच पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का उल्लेख किया गया है-मनरेगा का 50 प्रतिशत धन पंचायती राज संस्था (ग्राम पंचायत) द्वारा प्रत्यक्ष व्यय किया जाएगा। मनरेगा की धारा-13 के अन्तर्गत ग्राम, ब्लाक व जिला स्तर पर मनरेगा की योजना बनाने एवं इसको लागू करने का प्राधिकार होगा। ग्राम सभा ग्राम पंचायत को विशेषीकृत परियोजनाओं की सलाह दे सकेगी। मनरेगा की धारा-17 के अनुसार ग्राम सभा, ग्राम पंचायत के अन्तर्गत कार्य को लागू करने की निगरानी करेगी। ग्रामसभा, ग्राम पंचायत के अन्तर्गत प्रारम्भ की गई योजनाओं के अधीन सभी परियोजनाओं का नियमित सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit) करेगी।

### ई-पंचायत (e-Panchayat )

पंचायतों में शासन की गुणवत्ता सुधार हेतु केन्द्र सरकार ने सभी पंचायतों को ई-सक्षम करने के लिए 'ई पंचायत'<sup>12</sup> मिशन मोड परियोजना (Mission Mode Project) (MMPs) नामक एक परियोजना प्रारम्भ की है। जिससे इन्हें स्वशासन की आधुनिक संस्थाओं के रूप में तैयार किया जा सके।

ई-पंचायत का उद्देश्य पंचायती राज संस्थाओं को आधुनिक दक्षता, उत्तरदायित्व का प्रतीक बनाना तथा सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) के प्रति वृहत्त ग्रामीण आबादी को अभिप्रेरित करना है।

## निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि संविधान के 73वें संशोधन के जरिये भारत में जमीनी जनतंत्र लागू हो चुका है। पंचायती राज संस्थाएं बहुत ही सक्रिय एवं मजबूत हुई हैं तथा व्यवस्था में इनकी भागीदारी बढ़ी है यद्यपि की ये संस्थाएं वित्तीय संकटों से भी जूझ रही हैं इनके लिये कोष के नियमन एवं इसके उचित प्रबंधन की आवश्यकता है। साथ ही साथ इनके उत्तरदायित्वों को सुनिश्चित करना अभी शेष है जिसपर गंभीरता पूर्वक विचार कर इन संस्थाओं को और अधिक क्रियाशील एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था की मजबूत और रीढ़ बनाया जा सके।

## संदर्भ सूची

1. Government of India: Memorandum of the Development and working of Representative institution in the sphere of Local Self Government, Vol-V p-1056
2. Constitution of India (Article-40)
3. प्रतियोगिता दर्पण/जनवरी/2007
4. वही
5. 64Th Constitutional Amendment Act, 1964
6. 73rd Constitutional Amendment Act, 1992
7. Constitution of India: "ELEVENTH SCHEDULE" power, authority and responsibility of Panchyats.
8. Constitution of India: PART-IX (Art-243 to 243O)
9. Panchyat Extension Shedule Act (PESA), 1996
10. भारत: प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2005
11. MGNAREGA & Panchyati Raj Act-2005
12. योजना : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2009
  - Maheswari, S.R., *Local Government in India*, New Delhi, Orient Longman, New Delhi, 2010
  - Joshi, R.P. & Narwani, G.S., *Panchyati Raj in India: Emenging Trends*, Rawat Publication, Jaipur, 2002
  - Mishra, S.N., *Dream and Realities: Expections from Panchyati Raj*, New Delhi, IIPA, 1996
  - Jha, S.N. and Mathur, P.C., *Decentralization and Local Politics*, New Delhi, 1999
  - सईद, एस.एम., *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था*, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2007
  - मंगलानी, डॉ० रूपा, *भारतीय शासन एवं राजनीति*, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011
  - नारंग, ए.एस., *भारतीय शासन एवं राजनीति*, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2005

## Reports

- Balwant Rai Mehta Committee Report-1957
- Ashok Mehta Committee Report-1977
- J.K.V. Rao Committee Report-1985
- L.M. Singhavi Committee Report-1986
- P.K. Thungan Committee Report-1988

# आपातकाल के बाद प्रेस की स्वतंत्रता

कुमारी रीना

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

जनता पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र में नागरिक अधिकारों की पुनर्प्राप्ति और संरक्षण की बात थी, जिसमें प्रेस की स्वतंत्रता भी शामिल थी। अतः प्रेस का देसाई सरकार से प्रारंभिक संबंध मधुर रहा। जनता सरकार के सत्तारूढ़ होने की प्रेस में भरपूर प्रशंसा की गई। उनके द्वारा नियुक्त आयोगों और आपातकालीन स्थिति में हुई सरकारी ज्यादतियों संबंधी खोजों को भी प्रेस में पर्याप्त महत्व व स्थान दिया गया। परन्तु साथ ही प्रेस बहुत समय तक राष्ट्र की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दशा की अवहेलना नहीं कर सका।

जनता दल की अंदरूनी कलह, नेतृत्व के लिए प्रतियोगिता, दलबदल और अन्य घोटालों की सूचना प्रेस द्वारा जनता तक पहुंचाई गई। परिणामस्वरूप जो राष्ट्र का चित्र समाचारपत्रों में बना, वह एक विघटित, विभाजित और कमजोर समस्याग्रस्त राष्ट्र का था, जिसका प्रशासन और नेतृत्व राष्ट्र को प्रगति की ओर ले जाने में अक्षम था। यह चित्र प्रायः सभी समाचार-पत्रों ने खींचा। उनमें केवल मात्रात्मक अंतर था। अतः 1980 में इंदिरा गांधी पुनः सत्ता में आ गई जिसमें जनता के साथ-साथ प्रेस का समर्थन भी शामिल था। ऐसा नहीं कि प्रेस की निष्ठाएँ बदल गई हों, परन्तु वस्तुस्थिति को निष्पक्ष और सत्य बयान करने में प्रेस ने ईमानदारी से कार्य किया था। सत्ता-परिवर्तन उसका स्वाभाविक परिणाम था।

आपातकालीन अल्पावधि को छोड़कर अधिकांशतः भारतीय राजनीतिक नेतृत्व व्यापक तौर पर प्रेस की स्वतंत्रता के प्रति उत्सुक और प्रतिबद्ध रहा है। यह स्वतंत्रता भारत के मौलिक अधिकारों में वर्णित 'भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' (अनु. 19(1)) की ही अभिन्न भाग मानी गई है जिस पर अनु. 19(2) के अन्तर्गत कुछ प्रतिबंध राष्ट्रीय और सामाजिक हित में लगाए जा सकते हैं। साथ ही यह भी आवश्यक माना गया है कि पत्रकारिता के अति उच्च स्तर तक पहुंचा जाए तथा पत्रकारों, समाचार-पत्र/पत्रिकाओं और समाचार एजेंसियों द्वारा एक आचार-संहिता का निर्माण और पालन किया जाए ताकि पत्रकारिता में उत्तरदायित्व और सार्वजनिक सेवा जैसी भावनाओं को प्रोत्साहन मिले। उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह उचित समझा गया कि एक वैधानिक संस्था का गठन किया जाए। अतः 1965 के केन्द्रीय अधिनियम, प्रेस परिषद् अधिनियम द्वारा 'प्रेस परिषद्' का गठन किया गया जिसे 1969 और 1970 में संशोधित किया गया। ऐसा प्रथम प्रेस आयोग (1954) की सिफारिशों के आधार पर किया गया।

प्रेस परिषद् का उद्देश्य प्रेस की स्वतंत्रता का संरक्षण और समाचार पत्रों और समाचार एजेंसियों के स्तर में सुधार और रख-रखाव था। इनके लिए उसे प्रेस पर एकाधिकार की समाप्ति के लिए आचार संहिता का निर्माण और उनमें सार्वजनिक हित के लिए उत्तरदायित्व की भावना इत्यादि के लिए प्रयत्न करने का अधिकार था।

परिषद् में अध्यक्ष के अतिरिक्त 29 अन्य सदस्यों का प्रावधान था जिनमें लोकसभा के स्पीकर, राज्य सभा के सभापति, भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ-साथ समाचारपत्रों के संपादक, प्रबंधक, पत्रकारों और संसद सदस्यों में से मनोनीत सदस्य हो सकते थे। साथ ही विभिन्न साहित्यिक और

व्यावसायिक संस्थाओं जैसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) बार काउंसिल और साहित्य अकादमी से भी सदस्यों का मनोनयन संभव था। पहली प्रेस परिषद् लगभग 9 वर्ष रही।

प्रेस परिषद् को 1976 में निरस्त कर दिया गया था, परन्तु 1978 में जनता सरकार के शासन में उसे पुनर्जीवित किया गया। नवीन प्रेस परिषद् की सदस्य संख्या बढ़ाकर 29 कर दी गई जिसमें एक अध्यक्ष व 28 अन्य सदस्य होते थे। यह 1988 में पुनः गठित की गई। अध्यक्ष और सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष का होता है और कोई व्यक्ति दो बार से अधिक सदस्य नहीं बनाया जा सकता। अपने स्वरूप में भारतीय प्रेस परिषद् विश्व की अनेक प्रेस परिषदों से अधिक स्वतंत्र भी है और शक्तिशाली भी। प्रेस परिषद् ने अपनी भूमिका निभाते हुए अपने लिए एक सम्माननीय स्थान बना लिया है। न केवल इसने सरकार के खिलाफ समाचारपत्रों की शिकायतों को सुना है बल्कि समाचारपत्रों के खिलाफ सरकारी और व्यक्तिगत शिकायतों को भी सुना है, उनकी जाँच करवाई है और अपने निर्णय भी दिए हैं।

इस प्रकार परिषद् सरकार और जनता दोनों का विश्वास प्राप्त कर सकी है तथा नागरिकों और न्यायालयों के बीच एक मध्यवर्ती कड़ी का काम भी कर रही हैं। परन्तु पत्रकारों का एक समूह मानता है कि सरकार द्वारा गठित और अनुदानप्राप्त संस्था के रूप में परिषद् की ऐसी सीमाएँ हैं जो उसकी विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगा सकती है।

भारत की प्रमुख समाचार समितियाँ प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (1948), यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (1960), हिन्दुस्तान समाचार और समाचार भारती है। प्रेस आयोग ने समाचार समितियों की तटस्थता और निष्पक्षता की आवश्यकता पर बल दिया। परन्तु प्रायः विरोध पक्ष द्वारा इन पर शासकीय और बड़े औद्योगिक घरानों के नियंत्रण का आरोप लगाया जाता है जो पूर्णतः असत्य भी नहीं है।

भारत का समाचारपत्र उद्योग भी काफी सजग और संगठित हो गया है। इनके कुछ उल्लेखनीय संगठन भारतीय समाचारपत्र समाज, प्रेस की राष्ट्रीय समन्वय समिति, भारतीय संपादक गिल्ड, छोटे और मध्यम दर्जे के समाचारपत्रों का संघ, आल इंडिया न्यूज पेपर एडीटर्स कान्फ्रेंस भारतीय और प्रांतीय पत्रकार संघ एण्ड इस्टर्न न्यूज पेपर्स सोसाइटी, इंडियन लैंग्वेज न्यूज पेपर एसोसिएशन इत्यादि हैं। ये संगठन अपने समूहगत हितों के साथ-साथ प्रेस की स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए भी कार्य करते हैं। राजीव गांधी सरकार द्वारा 1988 में मानहानि विधेयक की वापसी इन संगठनों की एकता व शक्ति का परिणाम थी।

भारतीय प्रेस ने स्वयं अपनी स्वतंत्रता को मर्यादित करने के लिए आचार संहिता बनाने के अनेक बार प्रयत्न किये हैं जिनमें से दो मुख्यतः उल्लेखनीय हैं। प्रथम, 1953 में अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन की स्थायी समिति द्वारा स्वीकृत आचार संहिता जिसके 15 सूत्र थे और 1975 में वरिष्ठ संपादकों और पत्रकारों द्वारा स्वीकृत आचार संहिता जिसमें 14 सूत्र थे। इनके अतिरिक्त प्रथम प्रेस आयोग (1952-54) द्वारा 1954 में एक 17 सूत्रीय संहिता का प्रस्ताव किया गया था। तीनों संहिताओं में अनेक समानताएँ हैं। लगभग सभी ने अनुच्छेद 19(2) में वर्णित मर्यादाओं या सीमाओं को ही सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। परन्तु तीनों आचार संहिताओं में से कोई भी पत्रकार और सरकार द्वारा उसी रूप में स्वीकार नहीं की गई है।

1966 में नियुक्त प्रेस-परिषद् का भी एक दायित्व समाचार-पत्रों, समाचार समितियों और पत्रकारों के लिए 'उच्च व्यावसायिक स्तर' के अनुरूप आचार-संहिता निर्मित करना था। इसके स्थान पर

उसने यह मत दिया कि किसी संहिता के निर्धारण के स्थान पर जो शिकायतें परिषद् के सामने आएँ, उन पर उसके द्वारा किए गए निर्णयों के संकलन में से, व्यवहार के सिद्धान्त विकसित होने चाहिए, क्योंकि संगठित संहिता से दृष्टिकोण इतना कठोर हो सकता है कि उससे लाभ से अधिक हानि हो सकती है। एडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया ने भी इसका समर्थन करते हुए यह मत दिया कि 'उत्तरदायी व्यक्ति औपचारिक संहिताओं से नियंत्रित नहीं किए जा सकते।'

भारत के दूसरे प्रेस आयोग (1978-82) ने भी 1982 में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में उपर्युक्त मत का समर्थन किया। 1976 में संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् में भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया गया था कि इस बात का भय है कि उत्तरदायित्वयुक्त स्वतंत्रता का सिद्धांत इतनी दूर तक ले जाया जाए कि उत्तरदायित्व पर दिया गया जोर स्वतंत्रता को विलुप्त कर दे। अतः विकसित और अविकसित सभी राष्ट्रों में उत्तरदायित्व और स्वतंत्रता के बीच उचित संतुलन ही प्रेस की स्वतंत्रता का स्थायी आधार हो सकता है।

# उत्तर-पूर्वी राज्यों में अलगाववाद भारत-म्यांमार संबंध

डॉ० पप्पु कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, बाल्मीकि सिंह डिग्री कॉलेज, वृन्दावन थावे, गोपालगंज

भारत के उत्तर-पूर्वी हिस्से में 8 राज्य हैं। प्रत्येक राज्य की अपनी खास संस्कृति एवं परम्परा है। भारत के इस हिस्से को अलगाववादी आंदोलन को पैदा करने वाले हिस्से के रूप में दर्शाया जाता है। चारों ओर जमीन से घिरे इस क्षेत्र में 30 विद्रोही संगठन फल-फूल रहे हैं। ये विद्रोही संगठन नई दिल्ली से स्वायत्तता या स्व-शासन की माँग के लिए संघर्षरत हैं। नेपाल, भूटान, तिब्बत, बर्मा और बांग्लादेश से घिरे इस क्षेत्र का भारत के साथ जुड़ाव, भारतीय सीमा रेखा के 3 प्रतिशत हिस्से के जरिये ही हो पाता है।

भारतीय संघ ने इस क्षेत्र को दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व एशिया में एक व्यापारिक क्षेत्र के रूप में विकसित करने के लिए बहुत-सी योजनाओं एवं प्रस्तावों का मसौदा तैयार किया है। नई दिल्ली की 'पूर्व की ओर देखो नीति', इस क्षेत्र के मूलवासियों को आर्थिक लाभ देने की नीति है। बर्मा के पश्चिमी समुद्री किनारा स्थित अराकान में सिन्वे बंदरगाह को विकसित करने के लिए भारत ने करोड़ों अमरीकी डॉलर की एक कालादान परियोजना को लागू करने का निश्चय किया है। यह पश्चिमी बर्मा को मिजोरम से जोड़ेगा। इसके साथ ही भारत-बर्मा गैस पाइप लाईन भी उत्तर-पूर्व के आर्थिक हितों के एक बड़े अवसर के रूप में प्रचारित किया गया। हालांकि यह परियोजना अभी ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है (खासकर बांग्लादेश ने जब इस पाइप लाईन को अपने क्षेत्र से गुजरने की इजाजत नहीं दी)।

भारत के लिए परिस्थिति तब तक अनुकूल चल रही थी, लेकिन बर्मा में अचानक जनविद्रोह भड़क उठा। भारत सरकार द्वारा सैनिक शासकों को खुश करने की नीति की अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों, जिसमें संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं यूरोपीय संघ शामिल हैं, ने आलोचना की, लेकिन भारत के लिए असली चुनौती उन अलगाववादी क्षेत्रों से आ रही है, जहाँ आम सभाओं, रैलियों तथा अन्य पहलों को अच्छा समर्थन हासिल हो रहा है। इसके माध्यम से इस क्षेत्र की जनता बर्मा में जारी जनविद्रोह का समर्थन कर रही है तथा बर्मा के जनतंत्र समर्थक महानायिका डाउ ऑग-सू-की के पक्ष में खड़ी है।

बर्मा की सीमा से सटे उत्तर पूर्व के राज्य मणिपुर में हाल में आयोजित एक सम्मेलन में सर्वसम्मति से बर्मा की जनता द्वारा जनतंत्र को लागू करने के संघर्ष को समर्थन देने का निर्णय लिया। 'मानव-अधिकारों की रक्षा के लिए नागा जन-आंदोलन' की ओर से 13 अक्टूबर को उखरूल में इस सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न सामाजिक संगठनों, गिरिजाघरों के प्रतिनिधियों, गैर सरकारी संगठनों एवं अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस सम्मेलन ने बर्मा की सैनिक सत्ता का आह्वान करते हुए कहा कि बर्मा की लम्बे समय से उलझी समस्याओं को शांतिपूर्ण जनतांत्रिक ढंग से सुलझाई जाय।

इसके पूर्व इस राज्य में 2 अक्टूबर को एक एकजुटता बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक ने मजबूती से भारत सरकार से आग्रह किया कि वह सैनिक जनता के साथ अपने सभी संबंधों को खत्म करें। प्रमुख कानून निर्माताओं, राजनैतिक कार्यकर्ताओं, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, शांति के

लिए कार्यरत कार्यकर्ताओं तथा अन्य लोगों ने बैठक में शिरकत की। बैठक ने अपने प्रस्ताव के जरिये बर्मा के जनतांत्रिक आंदोलन को बिना शर्त समर्थन करने की घोषणा की।

अभी हाल में मणिपुर में हजारों ईसाइयों ने एक प्रार्थना अभियान में शामिल होकर बर्मा में जनतंत्र एवं स्वतंत्रता का समर्थन किया। 21 अक्टूबर को म्यांमार ईसाई फेलोशिप, जिसमें बर्मा के प्रवासी ईसाई भी शामिल हैं, ने आँग-शान-सू-की के प्रति अपनी एकजुटता प्रदर्शित करते हुए, सर्वशक्तिमान भगवान से प्रार्थना करते हुए माँग की कि बर्मा के सभी राजनैतिक बंदियों को रिहा किया जाय जिसमें बर्मा की महानायिका भी शामिल हैं।

इसके पूर्व 6 अक्टूबर को मेघालय, नागालैंड, असम के नागरिक समाज ने स्वतंत्र बर्मा के पक्ष में विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से वैश्विक आन्दोलन दिवस के रूप में मनाया। इसी दिन इन राज्यों में आयोजित प्रदर्शनों के जरिये बर्मा के शांतिपूर्ण ढंग से संघर्षरत भिक्षुओं, जिन्हें बर्मा की सत्ता ने क्रूरतापूर्वक कुचल दिया, के प्रति समान रूप से अपनी चिंता प्रकट की गई। शिलांग के पास माउफ्लांग में करीब 20 हजार लोग इकट्ठे हुए और केन्द्र से अनुरोध किया कि वह बर्मा में उत्पन्न संकट में हस्तक्षेप करें तथा सैनिक शासन पर राजनयिक दबाव डालकर उसे जनतांत्रिक शक्तियों से वार्ता के लिए राजी करें।

बर्मा की सीमा से सटे दूसरे राज्य नागालैंड में वहाँ के मूल निवासियों ने एक रैली के जरिये संयुक्त राष्ट्रसंघ से तत्काल हस्तक्षेप की माँग करते हुए कहा कि बर्मा की सेना के अधिकारी समूह के खिलाफ सख्त कार्रवाईयाँ की जाय तथा वहाँ लम्बे समय से चले आ रहे संकट को सुलझाया जाय। नागा हो हो, नागा छात्र फेडरेशन, नागा पीपुल्स मूवमेण्ट फार ह्यूमेन राइट्स, नागालैंड बैपटिस्ट चर्च तथा अन्य प्रभावी नागरिक सामाजिक समूहों द्वारा आयोजित इस रैली में हाथ में लिये हुए पट्टी के माध्यम से 'शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर हमला बंद करो', 'बर्मा की जनता को सैनिक शासन से मुक्त करो' तथा '1988 की हत्याकांड मत दुहराओ' आदि नारे प्रदर्शनकारी लगा रहे थे।

इसी तरह असम में मोमबत्ती जलाकर सैकड़ों लोगों ने बर्मा की संघर्षरत जनता के प्रति एकजुटता प्रदर्शित की। उत्तर-पूर्व जनता की पहल द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में सैकड़ों लोग शामिल हुए। इसके माध्यम से नोबेल विजेता आँग-शान-सू-की के प्रति समर्थन व्यक्त करते हुए इस संदेश को दूर-दूर तक फैलाया गया। आँग-शान-सू-की पिछले चार वर्षों से रंगून की जेल में बंद हैं।

इसके पूर्व 4 अक्टूबर को गुवाहाटी में नागरिकों की एक बैठक में केन्द्रीय सरकार से अनुरोध किया गया कि बर्मा की सैनिक सत्ता पर राजनयिक दबाव डाला जाय और उसे हिदायत दी जाय कि जनतांत्रिक आंदोलन से जुड़े लोगों के खिलाफ कोई दमनात्मक कार्यवाई न की जाय। असम के पत्रकार मंच द्वारा आयोजित इस बैठक में एक प्रस्ताव के जरिये भारत सरकार से कहा गया कि अपने पड़ोसी देश में घट रही घटनाओं के प्रति वह मूकदर्शक न हो तथा अपनी क्षमता के अनुरूप वहाँ जनतंत्र के शांतिपूर्ण रूपान्तरण का रास्ता प्रशस्त करें।

इसी तरह बर्मा में जनतंत्र के लिए मिजोरम कमिटी ने नई दिल्ली की सरकार को बर्मा की सैनिक सत्ता को अपना संविधान बदलने तथा जनतांत्रिक व्यवस्था कायम करने के लिए राजी करने में सक्रिय भूमिका निभाने की अपील की। 20 अक्टूबर को अजबैल में एक पत्रकार सम्मेलन में कमिटी ने इस बात पर जोर देते हुए कहा कि वह बर्मा में जनतंत्र चाहती है। इस कमिटी में नागरिक समाज मानव अधिकार कार्यकर्ता-बुद्धिजीवी तथा मिजोरम की चेतनशील जनता शामिल थी। इस कमिटी ने जोर देते हुए कहा कि केन्द्र सरकार बर्मा के वर्तमान राजनैतिक संकट में हस्तक्षेप करें। इसके पूर्व 4 अक्टूबर को बर्मा की सीमा से सटे राज्य में एक एकजुटता बैठक के जरिये माँग की गई कि नई

दिल्ली बर्मा की सैनिक सत्ता के साथ अपने सभी संबंध तब तक तोड़ ले जब तक कि बर्मा में जनतंत्र की पुनर्स्थापना न हो जाय। मिजोरम में आयोजित बर्मा की सैनिक सत्ता के खिलाफ बैठक का महत्व इस अर्थ में बहुत ज्यादा है क्योंकि इस छोटे से राज्य में बर्मा से आए हुए करीब 40 हजार चिन शरणार्थी हैं जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के उच्चायुक्त द्वारा अभी भी शरणार्थी का दर्जा देना बांकी है। 1988 में बर्मा में हुए जनविद्रोह के दौरान हुए दमन के बाद विभिन्न समूहों में भारत के अन्दर प्रवेश किया। वे मिजोरम में अपने को सुरक्षित समझते हैं क्योंकि मीजो एवं चिन आदिवासी के बीच भाषाई समानता है तथा सामाजिक एवं धार्मिक नैतिकता भी एक ही तरह की है।

बर्मा के सैनिक शासन के साथ अपने रणनीतिक संबंधों को लेकर आलोचना का शिकार होने के बावजूद नई दिल्ली अपने कदम को लगातार सही करार दे रही है। इसके तर्क हैं कि वह सैनिक जनता को अलग-अलग करने के बजाय उसके साथ बातचीत कर रही है। उत्तर-पूर्व के दौरे पर अभी हाल में आये विदेश मंत्री ने इस बात को दुहराया कि नई दिल्ली म्यांमार के साथ बहुत-सी परियोजनाओं में शामिल है। विभिन्न क्षेत्रों की परियोजनाएँ जैसे पथनिर्माण, रेल, दूर संचार, सूचना तकनीक, विज्ञान एवं तकनीक, ऊर्जा इसमें प्रमुख हैं। गुवाहाटी में 'पूर्व की ओर देखो' नीति पर बोलते हुए प्रणव मुखर्जी ने इस बात पर जोर देते हुए कहा कि एक मित्र पड़ोसी के रूप में भारत एक शान्तिपूर्ण, समृद्धशाली एवं स्थिर म्यांमार देखना चाहता है, जहाँ सभी तबकों के लोग राष्ट्रीय सहमति एवं राजनैतिक सुधार की विस्तृत आधार वाली प्रक्रिया में शामिल हों।'

1990 के दशक के शुरुआती दौर तथा भारत ने बर्मा के जनतांत्रिक आंदोलन का समर्थन किया था लेकिन उस देश में चीन के बढ़ते प्रभाव से भारत चिन्तित है। भारत ने बर्मा के बारे में अपनी नीतियों में बदलाव लाया तथा बर्मा की सैनिक सत्ता के साथ बड़े आर्थिक सहयोग के रास्ते पर चलने लगा। भारत की दूसरी सबसे बड़ी चिन्ता उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में बढ़ती विद्रोही गतिविधियाँ हैं। सशस्त्र विद्रोही समूह उत्तर बर्मा के घने जंगलों का इस्तेमाल अस्त्र-शस्त्र के प्रशिक्षण केन्द्रों के रूप में कर रहे हैं। भारत का तर्क है कि वह सैनिक सत्ता के प्रति आँखें नहीं मूँद सकता है क्योंकि वह भारत-बर्मा से जुड़े 1600 कि.मी. लम्बे खुले सीमा पर चल रहे विद्रोही गतिविधियों पर काबू पाने में मदद कर रहा है।

लेकिन जमीनी सच्चाई यही है कि नई दिल्ली के खिलाफ उत्तर-पूर्व के लोगों में बहुत ज्यादा क्षोभ व्याप्त है। यहाँ के मूल निवासियों की यह समझ है कि केन्द्र सरकार इस क्षेत्र के तेल, कोयला, चाय, जंगल जैसे संसाधनों का दोहन करती है लेकिन उत्तर-पूर्व राज्यों की शाश्वत समस्याओं के प्रति बहरी बनी रहती है। अलग-थलग पड़े उत्तर-पूर्व क्षेत्र के निवासियों के बढ़ते गुस्से का सामना करना, भारत सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती है। हालांकि इसमें कोई शंका नहीं है कि उत्तर-पूर्व के लोग विभिन्न मोर्चों पर लम्बे समय से संकट का सामना कर रहे हैं और अस्थिर बर्मा के चलते इसके महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। जहाँ एक ओर यह क्षेत्र बर्मा से आने वाले शरणार्थियों की शरणस्थली बना हुआ है, वहीं इसके निवासी अवैध नशीले पदार्थों के व्यापार, अस्त्र-शस्त्र के अवैध कारोबार को अपने सामने होते देखते रहते हैं। अतः इस क्षेत्र के गरीब लोग इस कारोबार से जुड़ जाते हैं। उत्तर-पूर्व के लोगों के बीच एच.आई.वी. एड्स चिन्ताजनक स्तर पर पहुँच चुका है।

हमारे देश के खेलों के लिए बड़े-बड़े खिलाड़ियों का निर्माण करने वाला राज्य आज एच.आई.वी. संक्रमित सबसे बड़े राज्य में बदल गया है। इस क्षेत्र के प्रतिभाशाली एवं क्षमतावान युवा नशे के दलदल में फँस रहे हैं। बर्मा से नशीले पदार्थों के अवैध आपूर्ति के चलते दूसरी खतरनाक बीमारियाँ भी पैदा हो सकती हैं। प्रश्न उठता है कि क्या नई दिल्ली को इन तमाम घटना विकासों के प्रति

उदासीन रहना चाहिए, जो इन क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है। वस्तुतः यह उत्तर-पूर्व के हित में है कि बर्मा में स्थिर एवं जनतांत्रिक सरकार है। केन्द्रीय सरकार को उत्तर-पूर्व की समस्याओं को हल करने के सिलसिले में वहाँ की परिस्थितियों को सही तरीके से समझना चाहिए। उस क्षेत्र में स्वाधीनता के बाद से ही भारत विरोधी आवाजें उठती रही हैं। उत्तर-पूर्व के लोगों में अगर बर्मा के सैनिक शासकों के खिलाफ क्षोभ बढ़ेगा तो इसके चलते भारत सरकार की मुश्किलें आने वाले समय में बढ़ेंगी।

पिछले कुछ दिनों में बर्मा के सैनिक शासन द्वारा शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों तथा बौद्धभिक्षुओं के खिलाफ की गई क्रूरतापूर्ण कार्रवाईयों के चलते हुए बौद्ध भिक्षुओं की संभावित मृत्यु की अन्तर्राष्ट्रीय जगत में बड़ी आलोचनाएँ हुई हैं। जनतंत्र पक्षी कार्यकर्ताओं ने सैनिक शासन के खिलाफ अपना संघर्ष तेज कर दिया है। अतः म्यांमार की परिस्थिति का उत्तर-पूर्व के राज्यों पर क्या असर पड़ रहा है, इसकी जाँच आवश्यक है। हमें अभी इस संबंध में तमाम पहलुओं पर नजर डालनी होगी। सीमा व्यापार, बर्मा और उत्तर-पूर्व की जनता के बीच आपसी संबंध का अभाव तथा भारत के 'पूर्व की ओर देखो नीति' के निर्धारण में उत्तर-पूर्व के राज्यों का प्रभाव आदि।

उत्तर-पूर्व राज्य म्यांमार से लगातार जुड़ा हुआ है जो करीब 1600 किमी. की सीमा तक फैला हुआ है। दोनों क्षेत्रों के बीच सीमा व्यापार महत्वपूर्ण स्थान रखता है लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के कुछ जगहों पर ही यह सीमित है। बर्मा के सैनिक शासकों द्वारा म्यांमार से जुड़े सीमा पर सेनाओं की बड़े पैमाने पर आवाजाही के चलते इस व्यापार में कमी आई है। इस तरह के भड़काऊ उपस्थिति में व्यापारी लोक कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहते हैं।

माण्डले और यागोन के बाजार बंद कर दिये गये हैं तथा नामधा लॉग स्थित सीमा व्यापार चौकी भी बंद कर गयी है जिसके चलते योरहे के जरिये मणिपुर में होने वाले व्यापार पर प्रभाव पड़ा है। इस बात पर गौर करना महत्वपूर्ण है कि म्यांमार के साथ व्यापार के लिए मणिपुर एवं मिजोरम राज्यों के पास विशेष नीतियाँ हैं। ये नीतियाँ भारत सरकार की नीतियों से मेल नहीं खाती हैं। भारतवर्ष की बर्मा के सम्बन्ध में नीति ऊर्जा एवं रणनीतिक हितों से जुड़ी हुई है।

तेजी से विकसित हो रहे दक्षिण पूर्व एशियाई मुल्कों के साथ उत्तर-पूर्व के जुड़ाव में बर्मा प्रधान बाधा के रूप में है। अगर दक्षिण पूर्व एशिया के साथ उत्तर-पूर्व क्षेत्र का जुड़ाव हो जाय तो यह समृद्ध आर्थिक गतिविधि के केन्द्र के रूप में उभरेगा और इससे बड़े स्तर पर क्षेत्रीय जुड़ाव होगा। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के विद्रोहियों के प्रशिक्षण शिविर म्यांमार में तभी तक फले-फूलेंगे, जब तक वहाँ सैनिक शासन रहता है, क्योंकि इस गतिविधि से म्यांमार के सैनिक सत्ता को भारत के खिलाफ लाभ की स्थिति बनी रहती है। बर्मा के सैनिक शासन के साथ भारत का खुल्लम खुल्ला संबंध पूरी तरह गलत है और भारत इस बात को समझ नहीं पा रहा है कि बर्मा में जनतंत्र के फलने-फूलने से इस क्षेत्र की क्षमता का पूरा दोहन हो सकेगा तथा यह इस क्षेत्र और भारत के राष्ट्रीय हितों में होगा।

ऊपरी असम के डिब्रूगढ़ के मनकोट्टा रोड पर असम की जनता अपनी प्रतिदिन की गतिविधियों के लिए आती जाती रहती है। यह विडंबना ही है कि इसका नाम ब्रिटिश शासन के समय उत्तर-पूर्व भारत पर हमला करने वाले बर्मा-वासियों के नाम पर रखा गया है। हमलावर बर्मियों द्वारा उत्तर-पूर्व के लोगों पर किये गये अत्याचारों की कहानियाँ आज भी लोगों की यादों का हिस्सा बनी हुई हैं। इन घटनाओं की पृष्ठभूमि में उत्तर-पूर्व की जनता का म्यांमार के साथ संबंध को लेकर एक मनोवैज्ञानिक दुराव एवं घृणा की भावना है। पीढ़ियों के गुजरने के साथ-साथ अब यह बात खत्म हो चुकी है। आज क्षेत्रीय सहयोग एवं एक-दूसरे के लाभ की बात हो रही है।

यह भी एक महत्वपूर्ण बात है कि अहोम जाति के लोगों को ही बर्मा के शासकों ने सबसे पहले निर्वासित किया था और वे लम्बा रास्ता तय कर असम में 1228 ए.डी. में आकर बसे। मूलतः वे दक्षिणी बर्मा में रह रहे शान आदिवासी समुदाय से आते थे जिन्होंने 600 वर्षों तक असम पर शासन किया था। इस ऐतिहासिक मेल-मिलाप के बावजूद आज इस वैश्विक दुनियाँ में आम जनों के बीच का रिश्ता टूट गया है। इसका कारण भारत एवं बर्मा की नीतियाँ हैं जिसने बर्मा और उत्तर-पूर्व की जनता के बीच एक बनावटी दीवार खड़ी कर दी है।

उत्तर-पूर्व के लोगों एवं म्यांमार के लोगों के बीच आपसी संबंध कायम करने की बात भारत सरकार के कार्यक्रम का हिस्सा नहीं है। म्यांमार के साथ एक संवेदनशील नीति अपनाये जाने के लिए इस तरह की आपसी बातचीत बहुत आवश्यक है। भारत-एशियान कार रैली की सफलता के बावजूद सीमा को खोला नहीं गया है। इस क्षेत्र की जनता ने इस कार्यक्रम का बहुत ही उत्साह एवं आशा से स्वीकार किया। कोलकाता की मजबूत लॉबी इस तरह के कार्यक्रम को आगे बढ़ने से रोकती रही है, क्योंकि म्यांमार के साथ होने वाला व्यापार कोलकाता के माध्यम से होता है। शुरुआती दौर में प्रस्तावित कालादान गैस पाइप लाईन परियोजना भी उत्तर-पूर्व राज्यों को इस तरह अलग-थलग करने की नीति से वहाँ विकास का अभाव है और इसके चलते विद्रोही गतिविधियाँ बढ़ रही हैं। उत्तर-पूर्व राज्यों के पास वह राजनैतिक शक्ति नहीं है जिसके आधार पर एक ही झटके में केन्द्रीय सरकार की नीतियों को बदल दे और यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत अभी तक नीतियों में इस तरह के बदलाव से होने वाले लाभों के प्रति जागरूक नहीं है।

उत्तर-पूर्व भारत की जनता तथा म्यांमार द्वारा बड़े पैमाने पर निर्वासित जनता के बीच म्यांमार में जनतंत्र की पुनर्स्थापना की माँग के प्रति बड़ा समर्थन है। भारत को अपनी अवसरवादी एवं बनावटी नीतियों को त्यागकर इस भावना के साथ पूरी तरह जुड़ना चाहिए। यह कोई संकीर्ण उप-राष्ट्रीयता का हित नहीं है बल्कि स्वाभाविक जुड़ाव है जिसकी क्षमता का उपयोग कर इस क्षेत्र का सर्वांगीण विकास किया जाना चाहिए और इस बनावटी बंटवारे के आर-पार के लोगों की आशाओं एवं आकांक्षाओं को पूरा करना चाहिए। जैसे अगर एक कौवा गुवाहाटी के आसमान में उड़ता है तो यह दिल्ली की अपेक्षा हमोई के ज्यादा निकट है।

## उत्तर-पूर्व की विद्रोही गतिविधियों पर काबू पाने के लिए म्यांमार के साथ समझौता

अपने पड़ोसी देश की जमीन से सक्रिय विद्रोही समूहों की गतिविधियों पर काबू पाने के लिए भारत ने दोनों पक्षों के लिए कानूनी सहायता समझौता पर हस्ताक्षर किया है, जिसके तहत म्यांमार में पकड़े जाने वाले भारतीय विद्रोह लड़ाके, भारत भेजे जा सकें जिससे उनके खिलाफ भारतीय कानून के अन्तर्गत कार्रवाई की जा सके।

भारत, म्यांमार के साथ इस तरह के समझौते के लिए पिछले ढाई दशकों से कोशिश कर रहा था। म्यांमार की सैनिक सरकार के प्रधान थानस्वे की भारत यात्रा के दौरान 25-26 जुलाई को इस समझौते पर हस्ताक्षर हुआ।

इस समझौते से भारत को सीमा के आर-पार होने वाले संगठित अपराधों, आतंकवादी गतिविधियों, नशीली दवाओं के अवैध व्यापार, रुपयों की कालाबाजारी, नकली नोटों के कारोबार तथा अस्त्र-शस्त्रों के अवैध व्यापार जैसी समस्याओं से निबटने में सहायता मिलेगी। भारत के गृह मंत्रालय के अनुसार म्यांमार में पकड़े जाने वाले भारतीय विद्रोहियों को भारत सरकार के हाथों सौंप

दिया जायेगा। विदेश मंत्री के एक अनाम अधिकारी के अनुसार तब उन विद्रोहियों के खिलाफ भारतीय कानूनों के अन्तर्गत मुकद्दमा चलाया जायेगा। दोनों अधिकारियों ने अपना नाम गुप्त रखने की शर्त पर उपरोक्त बातें कहीं।

भारत, म्यांमार के बीच 1600 किमी. का बिना बाड़ की सीमा है। उत्तर-पूर्व के आदिवासी एवं आदिम आदिवासी समुदायों के भारतीय विद्रोही इस खुली सीमा का उपयोग करते हुए भारतीय क्षेत्र के अन्दर आकर 'मारो और भाग जाओ' की रणनीति का इस्तेमाल करते रहे हैं। उत्तर-पूर्व के आदिवासी एवं आदिम आदिवासी समूह ज्यादा स्वायत्तता या स्वाधीनता के लिए संघर्षरत हैं।

कम से कम इस तरह के आधे दर्जन संगठन, जिसमें असम का यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट (उल्फा), नेशनलिस्ट कौंसिल ऑफ नागालैंड, खापलों गुट के बारे में कहा जाता है कि उत्तर म्यांमार के अन्दर इनके प्रशिक्षण शिविर हैं। हालांकि वे अपनी गतिविधियों को भूटान, बंगला देश और नेपाल से भी चलाते हैं और अपनी जगह बदलते रहते हैं।

उत्तर-पूर्व राज्य मणिपुर के पूर्व राज्यपाल वेद मरवाह का कहना है कि इस समझौते से भारत को विद्रोही गतिविधियों से लड़ने का एक महत्वपूर्ण हथियार मिला है। मणिपुर, म्यांमार की सीमा से जुड़ा हुआ है।

इस समझौते से विद्रोहियों को यह साफ संदेश भेजा गया है कि पड़ोसी भूमि से वे अपनी गतिविधियाँ चलाने में अब उतने सुरक्षित एवं निश्चित नहीं है जितना वो समझते हैं। भारत की आन्तरिक सुरक्षा से जुड़े गृहमंत्रालय के पूर्व अधिकारी वेद मरवाह का ऐसा कहना है।

विदेश मंत्रालय के एक-दूसरे अधिकारी ने कहा कि जनतंत्र का अभाव एवं मानव अधिकारों के बारे में बहुत बुरे इतिहास के कारण अन्तर्राष्ट्रीय आलोचनाओं एवं प्रतिबंधों का सामना कर रहे म्यांमार ने इस तरह के समझौते पर किसी देश के साथ हस्ताक्षर किया है। अपना नाम गुप्त रखने के आधार पर उन्होंने कहा कि इस तरह की सहायता के लिए हम 80 के दशक से ही जोर लगाते रहे हैं। भारत के अपराधियों की सूची में शामिल बहुत से लोग म्यांमार के जेलों में बंद हैं।

1980 एवं 1990 के दशकों में भारत ने आँग-शान-सू-की के नेतृत्व में चलने वाले जनतंत्र पक्षी संघर्ष को अपना भरपूर समर्थन दिया। लेकिन उत्तर-पूर्व के विद्रोही समूहों द्वारा म्यांमार के अन्दर से चलाये जा रहे गतिविधियों को देखते हुए इसने अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया। उस समय से भारत ने सैनिक सरकार के साथ अपना संबंध कायम कर लिया है। भारत ने म्यांमार के आधारभूत संरचनाओं के विकास, तेल एवं गैस की खोज तथा कर्ज देकर अपना निवेश बढ़ाया है। थानस्वे के भारत आगमन पर भारत ने म्यांमार में पथ निर्माण, कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी तथा बिजली संचरण लाईनों एवं रेलवे के विकास के लिए 2000 मिलियन अमरीकी डॉलर (करीब 930 करोड़ रुपये) देने का आश्वासन दिया है। विदेशी मामलों के समीक्षकों की राय है कि इस समझौते से दोनों देशों को लाभ मिलेगा।

दुनिया में कुछ ही देश हैं, उनमें भारत एक है जो म्यांमार से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में विदेशी मामलों के अध्ययन से जुड़ी प्राध्यापिका मनमोहली कौल का कहना है कि भारत, म्यांमार में चीन के बढ़ते प्रभाव को संतुलित करना चाहता है जो दुनिया का सबसे बड़ा जनतांत्रिक देश एवं आर्थिक शक्ति है। भारत ने इस तरह के कानूनी सहायता आधारित समझौते 30 देशों के साथ किये हैं जिसमें नेपाल, बांग्लादेश, अमेरिका, ब्रिटेन, रूस तथा संयुक्त अरब अमीरात शामिल हैं, ऐसा गृह मंत्रालय का कहना है। बांग्लादेश द्वारा उल्फा आतंकवादियों, जिसमें

संगठन के उच्च पदस्थ नेता अरविन्द राज खोबा तथा सेना के संचालन से जुड़े उप प्रधान राजू बरूआ को भारत के हाथों सौंपे जाने से इस समझौते का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

दूसरे अधिकारी के अनुसार इस तरह का सहयोग, राजनैतिक इच्छा शक्ति पर निभर करता है। ऐसे भी उदाहरण हैं जब बहुत से देश एक-दूसरे की सहायता करने से इनकार कर देते हैं जबकि उनके साथ ऐसा समझौता है। उदाहरण के लिए सार्क देशों (क्षेत्रीय सहयोग के लिए दक्षिण पूर्व देशों का संघ) के बीच आतंकवाद पर एक सहमति है जिसके तहत सभी सदस्य देशों को आतंकवाद के खिलाफ एक-दूसरे की सहायता करनी है। लेकिन कुछ देश कुछ कानूनी समस्याओं एवं अन्य कठिनाईयों का हवाला देकर कोई रास्ता निकाल लेते हैं, ऐसा एक अधिकारी ने अपना नाम गुप्त रखने की शर्त पर कहा। लेकिन बंगलादेश की सरकार एक ऐसा उदाहरण है जिसने खूंखार आतंकवादियों के बारे में जानकारी दी और उसे भारत के हाथों सुपुर्द कर दिया।

बाद में यागोन के सैनिक शासन के राजकीय शान्ति एवं विकास परिषद् के उपाध्यक्ष माँग आर के नेतृत्व में 16 सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल नवंबर 2000 में भारत आया और यात्रा के दौरान सीमा के आर-पार परिवहन, संचार के आधारभूत संरचना की स्थापना के लिए आपसी सहयोग को बढ़ाने पर सहमति जताई जिससे व्यापार एवं लेन-देन के संबंध में बढ़ोतरी हो। एक संयुक्त वक्तव्य के माध्यम से दोनों देशों में आतंकवादी गतिविधियों पर काबू पाने तथा आर्थिक संबंधों को सीमा के पास आगे बढ़ाने के लिए कदम उठाने पर सहमति बनी।

उत्तर-पूर्व सीमा पर स्थित मणिपुर राज्य के शहर मोरेह से म्यांमार के चिन्दविन नदी के पास कलेवा को जोड़ते हुए ऐतिहासिक भारत-म्यांमार पथ का निर्माण भारतीय सेना ने की, जिसका उद्घाटन 13 फरवरी, 2001 को हुआ। दोनों ओर के समाचार माध्यमों ने इस अवसर का स्वागत करते हुए इसे भिन्नता के नये युग की शुरुआत बताई। दोनों देशों को जोड़ने वाले पथों का खुलना दोनों देशों के राजनैतिक, आर्थिक एवं रणनीतिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है। एशियाई उच्च पथ को यूरोपीय महादेश से जोड़ने में यह पथ प्रमुख भूमिका निभायेगा।

उसके बाद से दोनों देशों के व्यापारिक रिश्तों में बहुत विस्तार हुआ है। आज भारत, चीन, सिंगापुर, थाइलैंड के बाद म्यांमार का चौथा बड़ा व्यापारिक साझेदार है। 1994 से शुरू हुआ तीन निर्धारित बिन्दुओं से सीमा व्यापार, जो मणिपुर, मिजोरम एवं नागालैंड की सीमाओं पर अवस्थित है, में तीव्रता आई है। हालांकि व्यापार का लाइसेंस प्राप्त करने तथा विभिन्न विद्रोही समूहों द्वारा डराने एवं पैसे की मांग करने से कठिनाईयाँ बरकरार हैं।

अब यागोन इस बात पर राजी हो चुका है कि अगर भारत और म्यांमार मिलकर काम करें तो एक-दूसरे की समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। म्यांमार की नीति विद्रोही गतिविधियों वाले सीमा क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाओं के विकास के साथ उन जगहों को केन्द्र से जोड़ने पर विशेष जोर है। अब जबकि पश्चिमी देशों के आर्थिक प्रतिबंधों के चलते अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में म्यांमार अलग-थलग पड़ गया है, उस परिस्थिति में भारत के साथ संबंध से उसे सहायता मिलेगी। जहाँ एक ओर भारत अपनी सुरक्षा एवं रणनीतिक हितों के लिए उत्पन्न खतरों का मुकाबला करने के लिए अपनी नीति निर्धारित कर रहा है, वहीं यह दक्षिण-पूर्व एशिया में अपनी उपस्थिति एवं प्रभाव बढ़ाने का भी काम करेगा। बदले परिदृश्य में म्यांमार ने अपने क्षेत्र में शरण लिये हुए भारतीय विद्रोहियों के खिलाफ कार्रवाई करने के प्रति ज्यादा प्रतिबद्धता दिखाई है। इस देश ने भारत विरोधी समूहों पर कार्रवाई शुरू करने के लिए भारत से सैनिक सहायता की माँग की है। बहुक्षेत्रीय तकनीक एवं आर्थिक सहयोग बंगाल की खाड़ी की पहल द्वारा आयोजित शिलांग की बैठक में शामिल होने के

लिए आये, म्यांमार के भारत स्थित राजदूत यू-की थिये ने बताया कि म्यांमार ने भारत से भारत विरोधी गतिविधियों में संलग्न विद्रोहियों के म्यांमार में छिपी जगहों से उन्हें बाहर निकालने के लिए सामूहिक पहल के लिए भारत आवश्यक सैनिक सहायता प्रदान करें, हालांकि उन्होंने विस्तृत जानकारी नहीं दी।

म्यांमार, बांग्लादेश और भूटान जैसे पड़ोसी देशों की जमीन से भारत विरोधी गतिविधियों में लिप्त आतंकवादी संगठन कार्यरत हैं। इसके चलते सबको पता है कि भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र में विद्रोही आंदोलन की गंभीर समस्या है। लेफ्टिनेंट जनरल एन.के. सिंह के मुताबिक म्यांमार की जमीन पर उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के 30 विद्रोही संगठनों के शिविर कार्यरत हैं। उल्फा के सैनिक प्रधान परेश बरूआ अपने 800 कार्यकर्ताओं के साथ म्यांमार में शरण लिए हुए हैं।

ढाका में सत्ता परिवर्तन के बाद आतंकवादी समूहों को बांग्लादेश की जमीन से भारत विरोधी गतिविधियाँ चलाना कठिन हो रहा है। अतः उत्तर-पूर्व के विद्रोहियों के लिए म्यांमार अभी भी सबसे सुरक्षित क्षेत्र है। भारत के तीन उत्तर-पूर्व राज्यों मणिपुर, नागालैंड एवं मिजोरम की 1643 किमी. की बाड़ रहित सीमा म्यांमार से जुड़ी हुई है। भारत और म्यांमार ने सुनहरी चिड़िया (गोल्डेनबर्ड) के नाम से उत्तर-पूर्वी राज्यों के विद्रोही समूहों के खिलाफ संयुक्त कार्रवाई की थी। हालांकि आँग-शान-सू-की को भारत सरकार द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समझ के लिए नेहरू शान्ति पुरस्कार देने के बाद यह कार्रवाई रोक दी गई, लेकिन उसके बाद फरवरी, 2000 से मई, 2001 तक म्यांमार ने फिर से विद्रोहियों के खिलाफ सैनिक कार्रवाई शुरू की।

म्यांमार के सैनिक शासन प्रधान थानस्वे की 24 अक्टूबर, 2004 के भारत यात्रा के दौरान म्यांमार की सेना ने भारतीय विद्रोहियों के खिलाफ वर्ष 2005 एवं 2006 में कार्रवाईयों की। लेकिन म्यांमार की प्रतिबद्धता के अभाव में इन कार्रवाईयों का नतीजा अप्रभावी साबित हुआ। वर्ष 2006 में भारत के सेनानायक जनरल जे.जे. सिंह ने म्यांमार के सेनानायक माँग-आए से यागोन में भेंट की। उसके बाद से दोनों देशों के तीनों सैनिक सेवाओं (जल, थल एवं नभ) के सेनापतियों ने एक-दूसरे से भेंट की है। भारत ने उसके बाद म्यांमार की सेना को लड़ाई के मैदान के लिए प्रशिक्षण देने एवं वर्दी की आपूर्ति करने की बात कही है। भारत ने हेलीकॉप्टर का एक बेड़ा तथा म्यांमार की सेना में रूसी हथियारों के रख-रखाव में भी सहायता करने का आश्वासन दिया है। म्यांमार को भी विद्रोही गतिविधियों का सामना करना पड़ता है। इसके ऊपरी क्षेत्र में करेन राष्ट्रीय मुक्ति सेना तथा कचिन स्वाधीन सेना जैसे विद्रोही संगठन सक्रिय हैं। इन विद्रोही संगठनों की मजबूत उपस्थिति के चलते, यागोन की राजनैतिक सत्ता की उपस्थिति ऊपरी म्यांमार के बहुत से हिस्सों में नहीं है। गरीबी, शिक्षा के अभाव एवं जुड़ाव के अभाव में परिस्थिति और भी जटिल हो गई है। यागोन के लिए इन क्षेत्रों में कार्रवाई करना मुश्किल है।<sup>2</sup>

भारत-म्यांमार मित्रता पथ के निर्माण से उत्तर-पश्चिम म्यांमार से सटे नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम में जंगल के बाहर जो विद्रोही समूह कार्यरत हैं, उनके खिलाफ इस जुड़ाव के बाद कार्रवाई करना आसान होगा।

तीव्र संघर्षों से तथा अस्थिर राजनैतिक परिस्थिति के चलते सैनिक शासकों के लिए बांग्लादेश एवं भूटान की तरह उत्तर-पूर्व के विद्रोहियों का मुकाबला करने में व्यावहारिक कठिनाईयें हैं। दुलमुल म्यांमार द्वारा उत्तर-पूर्व के विद्रोहियों के खिलाफ कार्रवाई करने की प्रतीक्षा में बैठे रहने के बदले में भारत को बैठकर उस समस्या का एक यथार्थपरक हल निकालने की जरूरत है। सेना की कार्रवाई के जरिये स्थाई समाधान तक नहीं पहुँचा जा सकता है। बल्कि यह समाज में क्रूरता को ही

बढ़ावा देगा। अतः यही समय है कि भारत पूरी परिस्थिति पर फिर से नजर डाले, क्योंकि इसी नीति से उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की यह वर्तमान त्रासद स्थिति हुई है। भारत सरकार की घोषित नीति के अनुरूप सभी विद्रोही गुटों के साथ राजनैतिक बातचीत शुरू की जाय। इसके साथ-साथ भारत एवं म्यांमार के बीच नजदीकी सैनिक सहयोग से उत्तर-पूर्व के विद्रोही बातचीत के लिए आगे आएँगे जिससे इस प्रक्रिया में भारत की ताकत बढ़ेगी। बदली परिस्थिति में यह आवश्यक है कि दरवाजे को आधा खोलने के बजाय, पूरा खोल दिया जाय, जिसके आधार पर विश्वास का वातावरण तैयार किया जा सके।<sup>3</sup>

## म्यांमार में उथल-पुथल

45 वर्षों तक सैनिक शासन के बाद म्यांमार एक बड़े बदलाव के दौर से गुजर रहा है। वर्ष 2010 में पहला बहुदलीय चुनाव कराया गया। जब म्यांमार नर्गिस चक्रवात से क्षत-विक्षत हो रहा था, उस समय तीन सप्ताह की सूचना पर एक रायशुमारी के जरिये संविधान को स्वीकृत किया जा रहा था। एक लम्बे समय तक संविधान निर्माण की प्रक्रिया जारी रहने के बावजूद यह आम लोगों की आकांक्षा को प्रतिबिम्बित नहीं करता है। शुरू में जब 1992 में आम चुनाव हुए तो जनतंत्र के लिए राष्ट्रीय संघ (नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी) ने चुनाव में जबर्दस्त सफलता हासिल की। सैनिक शासकों ने घोषणा की थी कि नव-निर्वाचित सदस्य संविधान का मसौदा तैयार करेंगे। राष्ट्रीय कन्वेंशन को मसौदा तैयार करने की जिम्मेदारी मिली लेकिन निर्वाचित प्रतिनिधियों को उसमें बहस करने का मौका नहीं दिया गया। हालांकि 15 वर्षों तक बीच-बीच में बैठकें होती रहीं, लेकिन इसमें मुश्किल से दो प्रतिशत निर्वाचित प्रतिनिधियों को मसौदा को अन्तिम रूप से तैयार करने में शामिल किया जा सका।

राष्ट्रीय कन्वेंशन के सदस्यों को सैनिक शासकों द्वारा मनमाने तौर पर सेना द्वारा तैयार मसौदा पर मुहर लगाने के लिए चुना गया।

संविधान निर्माता के इस दम-घोटू दौर में नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी के सदस्यों का रोकने के लिए, सैनिक शासकों ने आँग-शान-सू-की को घर के अन्दर नजरबंद रखा। नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी के सदस्यों को अपना विचार जनता के बीच नहीं रखने दिया गया, बल्कि उन्हें खदेड़ा गया और यहाँ तक कि दंडित किया गया। नया संविधान में आदिम आदिवासी समुदायों के स्वायत्तता जैसी वैधानिक माँगों को भी स्थान नहीं मिला है जिसके लिए वे समुदाय पिछले चार दशकों से संघर्ष चला रहे हैं। मसौदे पर जनता के बीच कोई बहस नहीं हुई है।

अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि नया संविधान एक दिखावा है। इसका उद्देश्य सही मायने में जनतांत्रिक सरकार के हाथों सत्ता सौंपना नहीं है। इसके दो उद्देश्य दिखाई पड़ते हैं। इसके जरिये सैनिक शासन अपनी सत्ता निर्वाचित सरकार के ऊपर लादना चाहती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को खुश किया जा सके कि म्यांमार में जनतंत्र की पुनर्स्थापना हो रही है जिससे म्यांमार के खिलाफ लगा प्रतिबंध हटाया जा सके। म्यांमार की राष्ट्रीय सेना का इस संविधान में सबसे ऊचा स्थान है।

अध्यक्ष का पद सेना के अधिकारी के लिए सुरक्षित होगा। उसे केन्द्र सरकार के मंत्रियों एवं राज्य के मुख्यमंत्रियों को नियुक्त करने का अधिकार होगा। उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को भी नामित करने का अधिकार होगा। म्यांमार की राष्ट्रीय सेना को सशस्त्र सेना के सभी मामलों में स्वतंत्र प्रशासन का अधिकार होगा और देश के उच्चतम न्यायालय के अधिकार की परिधि से वह बाहर रहेगा। सेना के प्रधान सेनापति रक्षा मंत्रालय, सुरक्षा तथा गृह मामलों तथा सीमा मामलों के मंत्रियों को नियुक्त करेंगे। राज्य, क्षेत्र, स्वशासित मंडलों, विशेष क्षेत्रों के सीमा मामलों के मंत्रियों एवं सशस्त्र

सेना अधिकारियों को सुरक्षा अधिकारियों के रूप में नियुक्त करेंगे। केन्द्र के ऊपर एवं निचले सदन के 25 प्रतिशत सदस्यों को देश की सशस्त्र सेना के प्रधान नामित करेंगे। इन दोनों सदनों की 25 प्रतिशत सीटें देश की सशस्त्र सेना के लिए आरक्षित हैं।<sup>4</sup>

## राजनैतिक जनतंत्र की समस्याएँ

देश के राष्ट्रपति कोई सैनिक पदाधिकारी ही होंगे। ऐसे व्यक्ति जिनके बच्चे एवं खुद दंपति का किसी विदेशी सत्ता से संबंध है, उन्हें राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है। अतः सैनिक शासकों ने यह सुनिश्चित कर दिया है कि आँग-शान-सू-की किसी जनतांत्रिक सरकार में उच्चतम पद पर निर्वाचित न हो सके क्योंकि उनके बच्चे एवं पति ब्रिटिश नागरिक हैं। आँग-शान-सू-की के सक्रिय नेतृत्व के बगैर देश में जनतंत्र के निर्माण की दिशा में उठाया गया पहला कदम अन्ततः म्यांमार में एक सम्पूर्ण जनतंत्र के रूप में सामने आयेगा, उस पर शंका के बादल छाये हुए हैं। यहाँ तक कि सीमित जनतंत्र के तरफ भी जाने की प्रक्रिया उतनी सहज नहीं होगी। सेना के हाथ में असीमित सत्ता रहने के चलते, नागरिक सरकार को देश के लिए चुनौतीपूर्ण तीन बड़े मामलों में कोई स्वतंत्र पहल लेना संभव नहीं होगा।

जनपक्षी योजनाओं को लागू करने, प्रशासनिक संस्थाओं की विश्वसनीयता को स्थापित करने तथा तमाम लोगों को समान नागरिक अधिकार प्रदान करना, चाहे वे किसी भी आदिम आदिवासी समुदाय के क्यों न हों। आँग-शान-सू-की के चुनाव अभियान में सक्रिय भागीदारी के बगैर, नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी दल द्वारा 1992 की जीत की पुनरावृत्ति मुश्किल है और किसी भी सूरत में सेना यह कोशिश करेगी कि 'नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी' चुनाव के दायरे से बाहर चली जाय। अवसरवादी मिली-जुली सरकारें, आन्तरिक विवादों के लिए बदनाम रही हैं। इन सरकारों में लगातार दल-बदल एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला रहता है। अतः मिली-जुली सरकार का सफलतापूर्वक संचालन संभव नहीं दिखाई पड़ता है। इससे सेना की इस समझ को और मजबूती मिलेगी कि वही राष्ट्रीय स्थिरता को सुनिश्चित कर सकती है।<sup>5</sup>

## आदिम आदिवासी समूहों की विद्रोही गतिविधियाँ

वर्ष 1948 से लेकर आज तक आदिम आदिवासी समूहों की विद्रोही गतिविधियाँ म्यांमार का काला पक्ष है। सैनिक शासकों ने हाल के दिनों में उन विद्रोही समूहों को अस्त्र-शस्त्र छोड़ने के लिए राजी किया है जिनके साथ सैनिक शासकों का युद्ध विराम समझौता हुआ है तथा उन लड़ाकों को सीमा सुरक्षा बलों के रूप में भर्ती किया है। हालांकि यह प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। उत्तर-पूर्व की सीमा जो चीन से जुड़ी हुई है, वहाँ के तीन बड़े विद्रोही समूह, म्यांमार राष्ट्रीय जनतांत्रिक, संधि सेना (एम.एन.डी.ए.ए.) संयुक्त राज्य सेना (यू.एन.एस.डब्ल्यू.ए.) तथा राष्ट्रीय जनतांत्रिक संधि सेना (एम.डी.डी.ए.) ने सेना द्वारा अस्त्र-शस्त्र परित्याग करने के अनुरोध को नकार दिया है तथा कचिन स्वतंत्र संगठन भी अपना पैर खींच रहा है। म्यांमार राष्ट्रीय जनतांत्रिक संधि सेना के कामोग वाहिनी, जो चीनी-आदिम आदिवासी समूहों से आते हैं, एक महीना पूर्व म्यांमार की राष्ट्रीय सेना के साथ झड़प हुई जिसके चलते कोकांग समुदाय के 1 हजार लोगों ने चीन की सीमा में शरण लिया है।

संयुक्त वा राज्य सेना, जो म्यांमार राष्ट्रीय जनतांत्रिक संधि सेना का मित्र संगठन है, वह चीन और थाईलैंड की सीमा के पास बड़े विद्रोही संगठनों में से एक है। करेन राष्ट्रीय मुक्ति सेना ने म्यांमार राष्ट्रीय सेना के साथ युद्ध विराम समझौता पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया और यह संगठन थाईखीमर के पास राष्ट्रीय सेना के खिलाफ संघर्षरत हैं। नागरिक सरकार के गठन के बाद

भी इन विद्रोही गुटों का मुख्य धारा में शामिल होने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं है। जब तक उनकी स्वायत्तता के सवाल को हल नहीं किया जाता है तब तक उनकी विद्रोही सक्रियता बरकरार रहेगी। ऐतिहासिक तौर पर, सेना ने आदिम आदिवासी समूहों की विद्रोहपूर्ण कार्रवाईयों के आधार पर सत्ता पर अपनी पकड़ की वैधानिकता को स्थापित किया है। सेना द्वारा रक्षा, सीमा मामले एवं गृह मामलों को अपने हाथ में रखने से नागरिक सरकार को इन मामलों को राजनैतिक रूप से सुलझाने का मौका नहीं है।

## अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के द्वन्द्व

अगर चुनाव के जरिये जनतंत्र की पुनर्स्थापना हो जाती है तो म्यांमार के प्रति अमरीका की नई पहल के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबंध हटाये जा सकते हैं। एक बार जब प्रतिबंध हटा लिया जाता है तो फिर म्यांमार के अकूत प्राकृतिक संपदा, जिसमें तेल एवं प्राकृतिक गैस शामिल हैं, उस पर कब्जा की मारामारी शुरू हो जायेगी। इसके चलते म्यांमार अन्तर्राष्ट्रीय ताकतों की आपसी प्रतिद्वन्द्विता का अखाड़ा हो जायेगा। भारत और चीन इस घटना विकास को सतर्कता के साथ देखने का काम करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों के दौर में चीन ने म्यांमार में अपनी रणनीतिक एवं आर्थिक प्रभावों को बढ़ाने का काम किया है और सैनिक शासकों ने इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों से जूझने में सहायता प्रदान की है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में वीटो अधिकार वाले चीन ने सैनिक शासकों को एक से ज्यादा अवसरों पर सामूहिक अन्तर्राष्ट्रीय कार्रवाईयों से बचाने का काम किया है। इसके चलते बर्मा की राष्ट्रीय सेना के साथ मजबूत संबंध कायम करते हुए चीन ने इस देश के अन्दर मजबूती से अपने पाँव जमा लिये हैं। चीन का इस देश के व्यापार, आर्थिक विकास एवं वाणिज्य पर वर्चस्व है। यह प्रभाव राजनैतिक क्षेत्र में भी चला जायेगा।<sup>6</sup>

संक्षेप में कहा जा सकता है कि चीन ने सैनिक शासन के रूप में एक पराश्रयी सत्ता का निर्माण किया है। चीन, म्यांमार पर अपनी इस पकड़ को ढीला नहीं करना चाहता है क्योंकि इससे उसे चीन की मुख्य भूमि से भारत तथा भारतीय महासागर तक पहुँचने का रास्ता मिलता है। म्यांमार का 1930 किमी. लम्बा समुद्री किनारा, बंगाल की खाड़ी के पूर्वी घुमावदार हिस्से को अपने आगोश में रखता है जो एक समुद्र को दूसरे समुद्र से जोड़ने वाले नहरनुमा संकीर्ण मलक्का की तरफ झुका हुआ है जिससे चीन की जल सेना को अपनी पहुँच के विस्तार में सहायता मिलेगी। अमरीका के साथ बहुत करीबी आर्थिक जुड़ाव के बावजूद चीन इस क्षेत्र में अमरीका के रणनीति विस्तार के बारे में चिन्तित है। भारत और अमरीका के बीच बढ़ते रणनीतिक एकता ने इस संदेह को और ज्यादा बढ़ाया है। अतः म्यांमार में बड़ी भूमिका निभाने को उत्सुक भारत एवं अन्य राष्ट्रों के सामने चीन सबसे बड़ी चुनौती के रूप में है।<sup>7</sup>

## भारत की सुरक्षा की जरूरतें

भू-रणनीति को देखते हुए भारत को रणनीतिक, आर्थिक एवं विकास के मद्देनजर, म्यांमार को विदेश नीति के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए। म्यांमार की भौगोलिक उपस्थिति भारत-एशियान व्यापार रास्ते के दोनों ओर है जिससे भारत के लिए म्यांमार का मूल्य बहुत ज्यादा हो जाता है। यह जमीन से चारों ओर से घिरे उत्तर-पूर्व के लिए बाहरी भूमि एवं समुद्र का रास्ता खोल सकता है। म्यांमार की समुद्री सीमा अण्डमान द्वीप से 30 किमी. दूर है जिससे समुद्री सुरक्षा की संभावना बढ़ जाती है। दुर्भाग्य से भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में म्यांमार के रणनीतिक महत्व को उतना स्थान नहीं दिया गया है जितना उसको चाहिए। उत्तर-पूर्व भारत के अन्य हिस्सों के

60.30 किमी. चौड़े सिलीगुड़ी के रास्ते से जुड़ा हुआ है, जिसके एक ओर बांग्लादेश और दूसरी ओर नेपाल है। अतः रणनीतिक तौर पर उत्तर-पूर्व अपनी पड़ोस में हो रहे घटना विकास से युद्ध एवं शांति दोनों समय में प्रभावित होगा। बांग्लादेश से बढ़े पैमाने पर बंगालियों के इस क्षेत्र में आगमन से विभिन्न समुदायों के बीच असंतुलन पैदा हो गया है जिससे सामाजिक एवं आर्थिक अशांति पैदा हो गई है। आदिम आदिवासियों की खास पहचान को लेकर इस क्षेत्र में अलगाववादी विद्रोही गतिविधियाँ शुरू हो गई हैं। चीन और पाकिस्तान से समय-समय पर मिलने वाली सहायता उनके जीवित रहने के लिए आवश्यक है। बांग्लादेश एवं म्यांमार में भी उन्हें अपनी गतिविधियाँ चलाने का सुरक्षित स्थान प्राप्त है।

भारत ने अपनी 'पूर्व की ओर देखो' नीति के तहत 1992 से म्यांमार के सैनिक शासन के साथ अपना संबंध सुधारने का काम शुरू किया है। इस नीति की सफलता अत्यन्त सीमित रही है। आशवासनों के बावजूद म्यांमार की सत्ता ने भारतीय विद्रोही समूहों को अपनी जमीन से बाहर खदेड़ने में बहुत कम रुचि दिखाई है। इन विद्रोहियों के खिलाफ संयुक्त अभियान में भी यह उदासीन रहा है।

बांग्लादेश द्वारा अपने क्षेत्र से भारतीय सामानों को उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में ले जाने के प्रति हिचकिचाहट से भी उत्तर-पूर्व के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। इस समस्या के हल के लिए भारत बहु-आयामी योजना के जरिये उत्तर-पूर्व से म्यांमार एवं एशियान देशों एवं हिन्द महासागर तक रोड एवं समुद्री रास्ता खोलने की योजना लागू कर रहा है। हालांकि भारत की सित्त्वे बहुआयामी परियोजना तथा बहुचर्चित म्यांमार भारत पाईप लाईन जैसी दो आधारभूत परियोजना की प्रगति अत्यन्त धीमी है।

पिछले दो दशकों में दोनों देशों के बीच व्यापार एवं विकास के संबंध में सुधार हुए हैं। लेकिन दोनों देशों की निष्क्रियता के चलते दोनों देशों के बीच व्यापार के संबंध में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ाने में दोनों देशों में कोई उत्साह नजर नहीं आता है।

सैनिक शासकों के लिए जनतंत्र की पुनर्स्थापना का सवाह अत्यन्त संवेदनशील है। इसे देखते हुए, भारत ने इस मुद्दे पर जोर नहीं दिया है तथा आँग-शान-सू-की की रिहाई के बारे में भी मौन साथ लिया है। भारत द्वारा जनतंत्र के लिए होने वाले संघर्ष की अनदेखी करने तथा सिर्फ सैनिक शासकों के साथ अपना संबंध कायम करने की बात से पूरी दुनिया के नागरिक समाज को सदमा लगा है। इस प्रक्रिया में उन जनतांत्रिक ताकतों के ही भारत प्रतिद्वन्द्विता चीन के साथ होगी और इस मायने में चीन को पहले से ही भू-राजनीतिक एवं आर्थिक लाभ की अग्रता प्राप्त है। इसके साथ-साथ चीन संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य है। अतः चीन, भारत के काम को आसान नहीं होने देगा। भारत के लिए लम्बे समय की राजनीति के लिए सबसे अच्छा यही होगा कि वह म्यांमार की राजनैतिक पार्टियों एवं नयी सरकार के साथ अपने संबंध में सुधार करें।

## अन्य संभावित कठिनाईयाँ

कुछ और संभावित खतरे हैं जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तौर पर पूरे क्षेत्र को अस्थिर कर सकते हैं। ये मुद्दे भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ जुड़े हुए हैं तथा उत्तर-पूर्व उनके कार्यकलापों का केन्द्र बन सकता है।<sup>8</sup>

### तिब्बत का मामला

दलाई लामा वृद्ध हो रहे हैं और तिब्बती शरणार्थी खासकर युवा पीढ़ी, चीन द्वारा तिब्बत के बारे में अपनाए गये रूख के प्रति उबल रहे हैं। अगर यह मामला हाथ से बाहर जाता है तो यह अरूणाचल के धर्मावलम्बियों को प्रभावित कर सकता है। इसके चलते भारत-तिब्बत सीमा और भारत-म्यांमार

सीमा भी सक्रिय हो सकती है। इसके साथ-साथ चीन का अरूणाचल की सीमा पर दावे के चलते चीन के साथ संघर्ष भी हो सकता है।

### **आन्तरिक तोड़-फोड़ में चीन का समर्थन**

हालांकि भारत और चीन आपस में सौहार्द्रपूर्ण संबंध कायम करने की चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन मणिपुर एवं असम के विद्रोही गुटों को चीन द्वारा समर्थन करने और उसके जरिये भारत पर दबाव बनाने की उसकी क्षमता की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। म्यांमार अपनी जमीन पर विद्रोहियों को सुरक्षित एवं स्वतंत्र स्थान देने से इन्कार करके एक बड़ी भूमिका निभा सकता है।

### **नेपाल में माओवादी**

नेपाल में चीनी समर्थक माओवादियों के उदय और सत्ता पर पहुँच और उनके प्रभाव विस्तार से चीन को नेपाल भारत के प्रभाव के बरक्स अपना प्रभाव बढ़ाने का एक बड़ा अवसर प्राप्त हुआ है। अगर चीन नेपाल पर अपनी रणनीतिक पकड़ मजबूत करता है तो उत्तर-पूर्व की स्थिति और ज्यादा संकटपूर्ण हो जायेगी। ऐसी परिस्थिति में, इस क्षेत्र में कोई भी सैनिक संघर्ष उत्तर-पूर्व को भारत से अलग-अलग कर देगा।<sup>9</sup>

### **म्यांमार की परमाणविक महत्वाकांक्षा**

वर्ष 2002 की शुरुआत में म्यांमार ने रूस के सहयोग से शान्तिपूर्ण उद्देश्य के लिए परमाणु शोध रियेक्टर के निर्माण की योजना को हरी झंडी दी। चुने हुए छात्रों एवं सैनिक पदाधिकारियों को मास्को में परमाणु विज्ञान के बारे में प्रशिक्षण दिया गया। रंगून एवं माण्डले के विश्वविद्यालयों में आणविक भौतिक विज्ञान विभागों की स्थापनाएँ हुई हैं। इन विभागों में छात्रों के चयन पर सैनिक शासकों का नियंत्रण है। बहुत से जगहों में यूरेनियम के भंडार पाये गये हैं। ये भंडार मागवे, ताँगविंगी, क्योक फाइगोन, मोगोक के पॉओनपिन और दक्षिण तेनासेरिम के काओसिन्द क्षेत्रों में पाये गये हैं। रूसी इन खदानों से यूरेनियम निकाल रहे हैं।

इस पृष्ठभूमि में म्यांमार एवं उत्तर कोरिया के बीच परमाणु विकास के संबंध में हुए गुप्त समझौते की सूचना का बड़ा महत्व है। अमेरिका एवं थाइलैंड ने इस सूचना पर अपनी चिन्ता जाहिर की है। आस्ट्रेलिया के रणनीतिक विश्लेषक डेसमाण्ड बॉलन तथा थाइलैंड में रह रहे पत्रकार फिल थार्नटन में 2007 में दावा किया था कि म्यांमार ने एक परमाणु रियेक्टर का निर्माण किया है जो प्रसंस्करण की प्रक्रिया से आगे बढ़ते हुए परमाणु हथियार बनाने के लिए उपयोगी प्लूटोनियम प्राप्त कर लेगा। ये सूचनाएँ म्यांमार से भागकर आए लोगों द्वारा दी गई हैं जिसकी सत्यता के बारे में अभी जानना बाकी है।

अगर यह सच है तो इस क्षेत्र के लिए यह एक नयी परिस्थिति होगी। यह वैसी ही परिस्थिति का निर्माण करेगा जैसा भारत को पश्चिमी मोर्चे पर एक अस्थिर पाकिस्तान के रूप में सामना करना पड़ रहा है। हालांकि म्यांमार परमाणु हथियार के खेल में शामिल होगा, इसकी संभावना नजर नहीं आती है लेकिन भारत को इस घटना विकास पर सतर्कतापूर्वक नजर रखनी पड़ेगी।

म्यांमार वासियों की स्थिरता का संबंध सीधे तौर पर स्थिर जनतंत्र के निर्माण के साथ जुड़ा हुआ है। म्यांमार एक स्थिर जनतांत्रिक देश के रूप में बदले, यह इस क्षेत्र के भविष्य के हित में है। 2010 के चुनाव के बाद जब नागरिक सरकार का गठन हो जाता है, उसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की उदासीनता बढ़ सकती है। म्यांमारवासियों के पिछले चार दशकों के आन्दोलन का यह अनुभव है कि उन्हें क्रूर शासन से तब तक कोई तार्किक उत्तर नहीं मिला जब तक उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन नहीं मिला।

म्यांमार में स्थिरता की कुँजी उसके दो बड़े पड़ोसियों भारत और चीन के साथ-साथ अमेरिका के हाथ में है। उन तीनों के एकताबद्ध प्रयास से ही कोई अर्थपूर्ण परिणाम प्राप्त हो सकता है। अभी इन तीनों देशों की समझ का परिप्रेक्ष्य म्यांमार में उनके रणनीतिक हितों के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन यह आवश्यक है कि वे एक साथ म्यांमार में परिवर्तन की नई परिस्थिति पैदा करने का काम करें। उनका यह मिला-जुला प्रयास म्यांमार को सैनिक शासन के जंजीर से मुक्त करेगा।

म्यांमार में जनतंत्र के विकास के लिए भारत का एक कार्यक्रम होना चाहिए। एक मजबूत जनतांत्रिक पहचान के साथ भारत राजनैतिक नेताओं के साथ अपना संबंध फिर से जोड़ने में सफल हो सकता है और इससे दोनों देशों को फायदा होगा। म्यांमार एवं एशियान देशों के साथ भारत को अपना व्यापारिक एवं विकास से जुड़े संबंध को म्यांमार के सत्ता परिवर्तन के प्रभाव से अलग करना चाहिए। इसे थाईलैंड एवं अन्य एशियान देशों के साथ ऐसी रणनीति विकसित करनी चाहिए जिससे यह वास्तविक रूप से साकार हो सके।

जैसा कि बांग्लादेश में अवामी लीग जैसी मित्रवत् सरकार है, भारत को बांग्लादेश के माध्यम से वैकल्पिक सड़क एवं समुद्री रास्ता खोलना चाहिए, जिससे उत्तर-पूर्व में व्यापार और उद्योग के विकास का रास्ता खुल सके।<sup>10</sup>

## संदर्भ ग्रन्थसूची

1. भारत की म्यांमार नीति, उत्तर-पूर्व के कर सकता है।
2. उत्तर-पूर्व विद्रोहियों पर म्यांमार का प्रभाव बी.बी. शर्मा, उत्तर-पूर्व इंडिया न्यूज।
3. वही, उत्तर-पूर्व इंडिया न्यूज।
4. वही
5. वही
6. वही
7. वही
8. म्यांमार- म्यांमार का घटना विकास एवं उत्तर-पूर्व की समीक्षा, कर्नल आर. हरिहरण डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. दक्षिण एशिया विश्लेषण संगठन।
9. वही, कर्नल आर. हरिहरण।
10. वही, कर्नल आर. हरिहरण।

# भारत में लोक सेवायें: साख पर सवाल

मनीष चन्द्र

एम्०फिल०, सेंटर फॉर फेडरल स्टडीज, जामिया हमदद, दिल्ली

सीधे सरल शब्दों में कहें तो लोक सेवा से हमारा अभिप्राय सरकार के उन स्थायी और गैर राजनीतिक अधिकारियों से है जो न्यायांग अथवा सेना के सदस्य नहीं होते और जो एक बार सरकारी नौकरी में आने के बाद सामान्यतः अवकाश ग्रहण करने की आयु तक उस पर बने रहते हैं।<sup>1</sup> यह वास्तव में लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को क्रियान्वित करने का प्रमुख साधन है जो आधुनिक राज्य के कार्य संचालन के लिए अपरिहार्य है। श्रीराम माहेश्वरी के अनुसार “लोक सेवा के दो अभिप्राय होते हैं- (1) अनिवार्य वस्तु की आपूर्ति का कार्य, (2) सरकार द्वारा समर्थित रोजगार की व्यवस्था। सरकार द्वारा समर्थित सेवा को लोक सेवा कहा जाता है, जिसका आशय प्रतियोगितात्मक परीक्षा द्वारा सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति की एक विधि है।”<sup>2</sup> लोक सेवा कानूनों को अमल में लाने वाला निकाय तो है ही साथ ही यह नियमों के निर्माण में भी सक्रिय रूप से शामिल है। पेशेवर दक्षता के कारण एक लोक सेवक अपने राजनीतिक प्रमुख को न सिर्फ विधि निर्माण में सहयोग प्रदान करता है बल्कि काफी हद तक विधि को आकार भी प्रदान करता है, खासतौर पर वरिष्ठ लोक सेवक अपना ज्यादातर समय इस तरह की गतिविधियों में ही लगाता है। लोक सेवाएँ कराधान की प्राप्तियों का व्यय करती हैं और इस बात का भी निर्णय लेती हैं कि राजस्व की उगाही कितनी मात्रा में करनी है और इसे किस तरह से वसूलना है। ग्लैडन ने लोक सेवा के अर्थ को सार रूप में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि “लोक सेवा के लिए अनिवार्यताओं में जो बातें शामिल हैं वे हैं- इसका चयन निष्पक्ष रीति से किया जाएगा, यह प्रशासन कला में दक्ष होगी, राजनीतिक रूप से तटस्थ होगी तथा समाज के प्रति सेवा की भावना से ओत-प्रोत होगी।<sup>3</sup> भारत में लोक सेवा का इतिहास वैसे तो काफी पुराना है लेकिन आधुनिक संदर्भ में इसके उदय को ईस्ट इंडिया कंपनी से जोड़कर देखा जा सकता है। भारत में सर्वप्रथम लोक सेवा शब्द का प्रयोग 19वीं सदी में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन में लगे उन कर्मचारियों के लिए किया गया जो उसकी सैनिक सेवा में नहीं होते थे बल्कि कर वसूली आदि के दीवानी या असैनिक कार्यों में लगे होते थे। दीवानी कार्यों में लगे होने के कारण उन्हें सिविल सेवा के कर्मचारी कहा जाता था।<sup>4</sup> भारतीय दंड संहिता की धारा 21(a) में लोक सेवक की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि ‘सरकारी सेवारत या वेतन पाने वाला अथवा सरकारी कार्य के लिए शुल्क या कमीशन पाने वाला व्यक्ति लोक सेवक की श्रेणी में आता है।’<sup>5</sup>

भारत में लोक सेवाएँ प्रतिष्ठा और अधिकार दोनों ही दृष्टियों से अपना विशेष महत्व रखती हैं। आजादी के बाद सरकार द्वारा सामाजिक आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को प्राथमिकता के आधार पर संपन्न करने की सोच ने लोक सेवाओं के कार्यक्षेत्र में आशातित विस्तार किया और लोक सेवाएँ पालने से लेकर चिता तक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने वाले राज्य के मूर्त उपकरण के रूप में सामने आयीं। भारत में लोक सेवाओं की भूमिका को मुख्य रूप से निम्नलिखित संदर्भों में देखा जा सकता है-

1. नीति क्रियान्वयन में भूमिका- भारत में नीतियों के क्रियान्वयन इकाई के रूप में लोक सेवाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह सरकार के अधिकांश दैनिक कार्यों को संपन्न करने

वाली संस्था है। यह नौकरशाही ही है जो सरकार के कार्मिकों, निधि, संपदा तथा वैधानिक शक्तियों का नियंत्रण करती है और कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायिक निर्णयकर्ताओं के अधिकांश निर्देशों को प्राप्त करती है। नीति क्रियान्वयन से संबंधित लोक सेवकों का कार्य न सिर्फ कार्यरत सरकार की राजनीतिक नीतियों के अनुरूप सीमित होता है बल्कि राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित भी होता है।

**2. प्रदत्त विधायन एवं अन्य प्रत्यायोजित कार्यों का निपटान-** प्रत्यायोजित या प्रदत्त विधायन से अभिप्राय संसद की किसी विधि द्वारा प्रदत्त सत्ता के अंतर्गत कार्यपालिका द्वारा नियमों तथा उपनियमों का निर्माण करने से है। यह एक अर्द्ध विधायी कार्य है जो लोक सेवा द्वारा संपन्न किया जाता है। सिद्धांत रूप में देखें तो “प्रजातंत्र में सभी प्रयोजनार्थ अंतिम कार्यपालक प्राधिकार राजनीतिक कार्यपालिका में विहित है जो संसद के माध्यम से जनता के प्रति जवाबदेह है तथापि किसी बड़े संगठन की तरह ही सरकार को भी विभिन्न स्तरों पर और भिन्न-भिन्न स्थितियों में परिभाषित कार्य करने होते हैं। इनके लिए व्यावहारिक आधार पर लोक सेवकों को सरकार के विभिन्न स्तरों पर प्राधिकार और जिम्मेदारी का प्रत्यायोजन आवश्यक है। ऐसा प्रत्यायोजन अधीनस्थ के सिद्धांतों के अनुरूप है जिससे सरकार को लोगों के निकट लाने में मदद मिलती है।”<sup>6</sup> भारत में लोक सेवकों को प्रत्यायोजित अधिकार संविधान एवं विधि के सुस्पष्ट दायरे में होते हैं जिनकी निगरानी अधिनस्थ विधायन समिति द्वारा की जाती है।

**3. प्रशासकीय अधिनिर्णय-** प्रशासकीय अधिनिर्णय का अर्थ है ‘किसी प्रशासनिक अधिकरण द्वारा कानून तथा तथ्य के आधार पर किसी गैर सरकारी पक्ष से संबंधित विवाद की जाँच तथा उस पर निर्णय देना’<sup>7</sup>। आमतौर पर आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के अंतर्गत विवादों के निपटारे से संबंधित न्यायिक शक्तियाँ व कार्य प्राथमिक रूप से न्यायपालिका में निहित होते हैं किंतु समकालीन समाज में राज्य के सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों के सक्रिय उपकरण के रूप में अस्तित्व में आने के पश्चात् सरकार द्वारा विविध प्रकार की शक्तियों से युक्त अनेक प्रशासनिक इकाईयों या संस्थाओं का गठन किया गया है जिसमें विवादों के निपटारे हेतु अधिनिर्णय की शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। आज इस बात को लेकर एक वैश्विक सहमति है कि राज्य के न्यायिक कृत्य सिर्फ न्यायपालिका तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि विभिन्न प्रशासनिक एजेंसियों की भी इसमें भूमिका अनवरत बढ़ती जा रही है।<sup>8</sup>

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की स्थापना मुख्य रूप से साधारण न्यायालयों की खर्चीली एवं विलंबकारी प्रक्रिया, विशेषज्ञों द्वारा निर्णय करने की आवश्यकता, सामाजिक नीतियों को लागू करने की जरूरत तथा साधारण न्यायालयों के पास पहलकारी शक्ति के अभाव जैसे तथ्यों से अभिप्रेरित है। प्रशासनिक न्यायाधिकरण न सिर्फ साधारण न्यायालय प्रणाली के बाहर कार्य करते हैं बल्कि जैसा कि रॉब्सन ने कहा है ‘प्रशासकीय न्यायाधिकरण व्यक्ति एवं सार्वजनिक सत्ता के मध्य समुचित संबंध स्थापित करने की दृष्टि से प्रगतिशील होते हैं। वे नागरिकों के लिए स्वतंत्रता तथा न्याय और आधुनिक ढंग की सरकार की आवश्यकताओं के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं।’

भारत में प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की चर्चा करते समय 42वें संविधान संशोधन का उल्लेख विशेष रूप से आवश्यक है। भारत में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा अंतर्विष्ट अनुच्छेद 323 क-ख का आशय प्रशासनिक अधिकरणों के उद्देश्यों एवं विनिश्चयों पर अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता हटा देना था। इन अनुच्छेदों को कार्यान्वित करने के लिए विधान बनाना आवश्यक था किंतु श्रीमती इंदिरा गांधी की पहली सरकार को ऐसा करने का समय नहीं मिला। बाद में अनुच्छेद 323 क को प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 द्वारा क्रियान्वित किया गया। हालांकि एल. चन्द्र कुमार बनाम यूनियन ऑफ इंडिया वाद (1997) के नैसले के बाद अब

स्थिति बदल गई है क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 323 क खंड-2 (घ) और 323 ख, खंड-3 (घ) और इन अनुच्छेदों के अनुसरण में अधिनियमित सभी विधायनों में 'अधिकारिता के अपवर्जन' के खण्डों को भी उतनी सीमा तक असंवैधानिक घोषित कर दिया है जहाँ तक वे उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अनुच्छेद 226/227 तथा 32 के अधीन अधिकारिता को अपवर्जित करते थे।<sup>9</sup>

**4. लोक नीति निरूपण में भूमिका-** जैसा कि थॉमस डाई ने कहा है कि 'सरकार जो भी करने को या न करने को चुनती है वही लोक नीति है'। आमतौर पर लोक नीति का निर्माण एक विधायी कृत्य माना जाता है और प्रशासन या लोक सेवा की भूमिका को सिर्फ नीति क्रियान्वयन तक सीमित रखने की बात की जाती है लेकिन आज वास्तव में लोक सेवा की भूमिका को लेकर इस तरह की कोई विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। आज 'लोक सेवा नीति निर्माताओं के महत्वपूर्ण सलाहकार के तौर पर कार्य करती है और प्रायः स्वयं ही नीति निर्माता होती है। लोक सेवक तथा मंत्री, नीति निर्माण के कार्यक्षेत्र में भागीदार होते हैं। यह भागीदारी न सिर्फ उनके विशिष्ट योगदानों पर बल्कि इनकी परस्पर पूरक भूमिका पर आधारित होती है।'<sup>10</sup>

भारत में विगत दशकों में नौकरशाह निर्णयन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग बनकर उभरे हैं। इसकी मुख्य वजह यह है कि राजनीतिक प्रतिष्ठानों ने राजनीतिक प्रकृति के विषयों पर अपना ध्यान केंद्रित करने के लिए स्वेच्छा से अपनी यह भूमिका त्याग दी है।<sup>11</sup>

भारतीय लोक सेवा की इस बहुआयामी भूमिका और इतने बड़े पैमाने पर शक्तियों के केंद्रीकरण ने लोक सेवा के लिए कर्तव्य पथ से विचलन की संभावनाओं को भी उसी अनुपात में बढ़ाया और लार्ड एक्टन की प्रसिद्ध उक्ति "सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्ण सत्ता पूरी तरह से भ्रष्ट करती है" चरितार्थ होने लगी। 1950 के दशक में दुनिया के लिए ईर्ष्या का विषय मानी जाने वाली भारतीय लोक सेवा और राजनीतिक वर्ग के सदगुणों में आयी तीव्र गिरावट यद्यपि आज चौंकाने वाली बात लगती है लेकिन अगर हम इसके कारणों की पड़ताल करें तो सदगुणों के इस ह्रास को सर्वव्यापी परमिट राज से जोड़कर देखा जा सकता है, जो आयात, उत्पादन तथा निवेश के लिए मंजूरी से जुड़ा हुआ था और जिसमें समय के साथ-साथ लगातार बढ़ोत्तरी होती रही। इस परमिट राज की व्यवस्था ने लोक सेवकों और राजनीतिक वर्ग के लिए भ्रष्टाचार की असीम संभावनाओं के द्वार खोल दिए। जल्दी ही उच्च स्तरीय नौकरशाही ने यह जान लिया कि लाइसेंस या परमिट का लाभ प्राप्ति हेतु प्रयोग किया जा सकता है, वहीं राजनेताओं ने इस प्रणाली में महत्वपूर्ण वित्तीय समर्थकों के रूप में साधन को देखा।<sup>12</sup> नतीजा यह हुआ कि लोक सेवाओं के भ्रष्ट आचरण हेतु रास्ता साफ हो गया और लोक सेवा भ्रष्टाचार के दलदल में धँसती चली गयी। लोक सेवकों ने नियम पुस्तिका में लिखित तथ्यों की व्याख्या का राजनीतिक सत्ताधारियों द्वारा अपने प्राधिकार के दुरुपयोग को रोकने में सहायक रोध व संतुलन की व्यवस्था की बजाय फाइलों को अनावश्यक रूप से रोकने और पैसे बनाने के साधन के रूप में प्रयोग करना शुरू कर दिया और भ्रष्टाचार के नए-नए रास्ते तलाश लिए। लोक सेवकों की इस प्रवृत्ति के कुछ बेहद अप्रत्याशित और खतरनाक नतीजे सामने आए। हाल के वर्षों में राजनेताओं की जो नई पीढ़ी उभरी है वह नियम पुस्तिकाओं को अवरोध तथा नौकरशाही को अनावश्यक बाधा के रूप में देखती है और इन सबको परे रखकर काम करना चाहती है फलतः संबंधों में संघर्ष की स्थिति लगातार बढ़ती जा रही है। हालांकि यह तस्वीर का सिर्फ एक पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि अपने भविष्य एवं वृत्ति को लेकर भयातुर नौकरशाही तथा अपने अल्प कार्यकाल के दौरान काम कर अपने भविष्य को सुरक्षित करने की जल्दबाजी में लगे राजनीतिक वर्ग

ने परस्पर फायदे को ध्यान में रखकर एक अपवित्र गठजोड़ कर लिया है जिसमें भ्रष्टाचार को पुष्पित पल्लवित होने का अवसर मिलता है।<sup>13</sup>

किरण कार्निंक ने लोक सेवा में भ्रष्टाचार के लिए मुख्य रूप से जिन कारणों की पहचान की है उनमें शामिल हैं- पकड़े जाने की अल्प तथा सजा होने की नगण्य संभावना, भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए विद्यमान तंत्र के बारे में जानकारी का अभाव तथा सामाजिक बहिष्कार या कलंक का डर नहीं होना। लोक सेवा की एकाधिकारी प्रकृति से भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। चूँकि आम जनता के पास अपने काम को करवाने का कोई दूसरा विकल्प नहीं होता लिहाजा प्रायः वह मजबूरी में अपने काम को करवाने के लिए रिश्वत का सहारा लेती है।<sup>14</sup>

भ्रष्ट लोक सेवकों द्वारा प्रायः घूस की मांग और प्राप्ति को संभव बनाने में एक सामान्य कारण जो काफी हद तक जिम्मेदार है वह है सेवाओं की प्रदायगी का समय सुनिश्चित नहीं होना। ऐसी स्थिति में लोक सेवक प्रायः 'स्पीड मनी' के रूप में रिश्वत की माँग करते और इसे प्राप्त करते हैं।<sup>15</sup> प्रशासनिक प्रक्रिया की इस कमी को दूर करने के लिए मध्य प्रदेश, बिहार, दिल्ली, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम, पंजाब तथा राजस्थान आदि राज्यों द्वारा सेवा के अधिकार से संबंधित कानून का निर्माण किया गया है जो एक सराहनीय पहल है, जरूरत इस बात की है कि इस तरह के कानून के दायरे में ज्यादा से ज्यादा सेवाओं को लाया जाए तथा जिन राज्यों में इस तरह के कानून नहीं हैं, वह भी इस दिशा में शीघ्र व सार्थक पहल करें। यह वास्तव में अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि हमारे देश में भ्रष्टाचार एक अंतहीन रूढ़न का विषय बन गया है, इस हद तक कि इसकी चर्चा सिर्फ रस्मी रह गयी है..... यह बढ़ता हुआ विश्वास कि सभी भ्रष्ट हैं लोगों के मन में यह भाव भी पैदा करता है कि चूँकि सभी भ्रष्ट ही हैं तो ईमानदार रहना जो कठिनाईयों से भरा है जरूरी नहीं है और भ्रष्ट आचरण ही व्यावहारिक आचरण है। इस तरह जो भ्रष्ट आचरण से घबराते हैं वे अव्यावहारिक या इससे भी बढ़कर निरे मुख समझे जाते हैं।<sup>16</sup> प्रशासक और लोक सेवक भी इसके अपवाद नहीं हैं। हमारे सामने ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो यह बताते हैं कि ईमानदार अधिकारियों (जैसे- अशोक खेमका) का किस तरह बार-बार तबादला कर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है ताकि वे अपने राजनीतिक आकाओं के गलत कार्यों का विरोध नहीं करें।<sup>17</sup> बेइमान अधिकारी चाहे जिस पार्टी की भी सरकार बने मजे में रहते हैं क्योंकि उन्हें अपने राजनीतिक आकाओं की मांग के मुताबिक खुद को ढालना आता है।

प्रसिद्ध समीक्षक सुरेन्द्र मोहन का मानना है कि अंग्रेजी राज्य के दिनों से विनिर्मित इस्पाती ढाँचा जिसे निष्पक्ष और निभ्रष्ट होना चाहिए अपने उन सभी गुणों से च्युत होता जा रहा है। भ्रष्टाचार के पनपने में उच्च स्तरीय सत्ता का जो भारी योगदान है उसमें नेता, अक्सर और पूंजीपति की मिली-भगत बरसों से चलती रही है और इसके चलते न केवल प्रशासन की साख को भारी धक्का लगा है बल्कि चुनावों व अन्य राजनीतिक कामकाज में थैलियों व थैलिशाहों का बोलबाला हो गया है।<sup>18</sup> यहाँ हमें इस बात को याद रखना होगा कि भारत जैसे देश में राजनीतिक भ्रष्टाचार और प्रशासनिक भ्रष्टाचार हमजोली हैं जो एक-दूसरे को सहयोग व समर्थन प्रदान करते हैं। यही वजह है कि लोक सेवाओं में सुधार हेतु प्रयासों को लेकर काफी लंबे समय तक अनिच्छा का भाव देखने को मिला है। हालांकि हाल के वर्षों में स्थिति में बदलाव हेतु कुछ सकारात्मक प्रयास हुए हैं, जैसे- नागरिक घोषणा पत्र को अपनाना, सूचना का अधिकार कानून का क्रियान्वयन, समयबद्ध सेवा प्रदायगी के कानून पर अमल, सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था, ई. अभिशासन पहल आदि, लेकिन अभी भी इस दिशा में काफी कुछ किए जाने की आवश्यकता है। अध्ययन बताते हैं कि नागरिक घोषणा पत्र को लेकर

बड़े-बड़े दावे किए जाने के बावजूद देश में इसकी प्रभाविता कमोबेश औसत ही रही है। भारत में नागरिक घोषणा पत्रों को प्रारंभ करने के तकरीबन एक दशक बाद 2007 में पब्लिक अेयर्स सेंटर, बंगलौर ने इसकी प्रभाविता की समीक्षा की और 'इंडियाज सिटिजन्स चार्टर- ए डिक्ड ऑफ एक्सपीरियंस' के नाम से प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में इसकी खामियों को उजागर किया जिनमें प्रमुख थीं- घटिया डिजाइन और विषय वस्तु, सार्वजनिक जागरूकता का अभाव, अपर्याप्त आधार कार्य, घोषणा पत्रों को अद्यतन नहीं किया जाना, घोषणा पत्रों के निर्माण में वरिष्ठ नागरिकों एवं विकलांगों की आवश्यकताओं की उपेक्षा आदि।<sup>19</sup> इन कमियों को सुधारने की दिशा में आज भी पर्याप्त पहल नहीं हुई है। ऐसे में सिटिजन चार्टर से जो उम्मीदें हैं वह पूरी नहीं हो पा रही हैं।

यही स्थिति 'सूचना का अधिकार' कानून के साथ भी है जो यद्यपि एक बेहतरीन पहल है तथापि जागरूकता के अभाव, अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित लोक सूचना अधिकारियों, बेकार हो चुके रिकॉर्ड प्रबंधन दिशा निर्देशों, लोक सूचना अधिकारियों में अभिप्रेरणा की कमी, निगरानी एवं निरीक्षण के अभाव, लंबित मामलों में वृद्धि तथा सूचना आयोगों की भौगोलिक अवस्थिति जैसे कारणों से 'सूचना का अधिकार' कानून के अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त हो रहे हैं।<sup>20</sup> इसके अलावे 'सूचना का अधिकार' कानून के तहत सूचना मांगने वाले सूचना अधिकार कार्यकर्ताओं की हत्या, हत्या के प्रयास तथा झूठे मामलों में फंसा कर उन्हें प्रताड़ित करने जैसे मामलों ने भी इस कानून के जरिये प्रशासनिक भ्रष्टाचार को उजागर करने की कोशिशों को धक्का पहुँचाया है।<sup>21</sup>

भारत में सामाजिक अंकेक्षण को प्रत्यक्षतः स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में पारदर्शिता लाने एवं जनसहभागिता निभाने के आंदोलन से लोकप्रियता मिली है और यह प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर अंकुश का एक अच्छा माध्यम सिद्ध हो रहा है। इस बात के मद्देनजर कि हमारे देश में सरकारी बजट का 50 प्रतिशत से अधिक हिस्सा कल्याणकारी योजनाओं पर व्यय होता है यह इस बात पर नजर रखने में कि कैसे और कितनी मात्रा में धनराशि अपेक्षित प्राप्तकर्ताओं की बजाए दूसरी तरफ मोड़ी गई महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है<sup>22</sup> तथापि इसका दायरा अभी काफी संकुचित है। भारत में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 वह प्रथम राष्ट्रीय कानून है जिसमें सामाजिक लेखा परीक्षण की प्रक्रिया को विधिवत तथा पूरे मनोयोग से स्वीकार किया गया है।<sup>23</sup> इस तरह की व्यवस्था न सिर्फ दूसरे क्षेत्रों में भी करने की जरूरत है बल्कि इसकी गति पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि मुक्त सूचना के इस युग में इस तरह की व्यवस्था का लाभ अगर हम अपेक्षित तेजी के साथ आम जनता तक नहीं पहुँचाते हैं तो इसके अत्यंत घातक परिणाम भी हो सकते हैं।

प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण की दिशा में ई-अभिशासन पहल एक महत्वपूर्ण नवाचार है। राष्ट्रीय ई. गवर्नेंस योजना समेत राज्य स्तर पर किए जाने वाले प्रयासों जैसे- बिहार में 'जानकारी' मॉडल, कर्नाटक में 'भूमि' कार्यक्रम, आंध्र प्रदेश में 'ई-सेवा', उत्तर प्रदेश में 'लोकवाणी' तथा केरल में 'पैड्स' परियोजना ने न सिर्फ लोगों के लिए सरकारी सेवाओं तक पहुँच को आसान बनाया है बल्कि भ्रष्टाचार पर भी अंकुश लगाने में सफल रही है। लेकिन इस तरह की ई.अभिशासन पहलों के साथ भी कुछ समस्याएँ हैं जैसे- लोगों में साक्षरता विशेषकर कम्प्यूटर साक्षरता का अभाव, ज्यादातर जानकारियों का अंग्रेजी में उपलब्ध होना, इंटरनेट की अनुपलब्धता तथा अत्यधिक लागत आदि। फिर भी जैसा कि यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले के लोक नीति के सहायक प्रोफेसर जेकिर बुसेल का कहना है तकनीक का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने नागरिकों की सूचना तक पहुँच सुनिश्चित की है।<sup>24</sup> सूचना के सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होने का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ है कि अब लोक सेवकों के लिए कई मामलों में लोगों को पहले की तरह अंधेरे में रखना

संभव नहीं है जो भ्रष्टाचार की सबसे बड़ी वजह है। इस संदर्भ में किरण कार्णिक की टिप्पणी अत्यंत सटीक है कि तकनीक भी कोई जादू की गोली नहीं है लेकिन यह पारदर्शिता, पहुँच तथा दक्षता प्रदान कर सकती है और परिवर्तनकारी हो सकती है। यह (तकनीक) नाव से पानी बाहर फेंकने वाले की बजाय छेद बंद करने वाला रणनीतिक उपकरण हो सकती है।<sup>25</sup>

भारत में लोक सेवाओं की दशा और दिशा के इस समग्र विवेचन का समाहार करते हुए कहे तो भारतीय लोक सेवा यात्रा के क्रम में आदर्श, आशा तथा अनाचार के पड़ावों से होकर गुजरती रही है। किसी समय में इस्पाती ढाँचा मानी जाने वाली भारतीय लोक सेवा आज घुन लगी लकड़ी की तरह हो चुकी है तथापि इसके लिए सिर्फ लोक सेवा को ही उत्तरदायी ठहराना इसके साथ ज्यादाती होगी। वास्तव में कोई भी संरचना या व्यवस्था अपने परिवेश के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। लोक सेवा पर भी सामाजिक राजनैतिक परिवेश का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसा कि सच्चिदानंद सिन्हा का विचार है “भारत के आधुनिकतावादी, जीवन का प्रधान लक्ष्य भौतिक या आर्थिक उपलब्धि मानते हैं लेकिन इसके लिए खुली प्रतियोगिता की जगह जो आधुनिकता की मांग है पारिवारिक या जातिय खोल के भीतर से ही उपलब्धि के साथ संघर्ष में जुटना चाहते हैं। यह दोष दिनोंदिन और भी सघन होता गया है। ..... हमारे यहाँ भ्रष्टाचार ..... उस सामाजिक मूल्यहीनता का परिणाम है जहाँ पारंपरिक मूल्यों का लोप हो चुका है पर पारंपरिक वफादारियाँ अपनी जगह पर जमी हुई हैं।<sup>26</sup> जब तक हम इस बुनियादी बात पर ध्यान नहीं देंगे व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन संभव नहीं है। हमारे देश में प्रशासनिक भ्रष्टाचार वस्तुतः राजनीतिक शह पाकर ही इस हद तक सुदृढ़ हुआ है ऐसे में राजनीतिक सुधार के बगैर प्रशासनिक सुधार की कोई भी योजना अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकती। इतिहास साक्षी है कि 18वीं सदी और 19वीं सदी के प्रथमाद्ध में ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार को लेकर कुख्यात हो चुकी थी लेकिन विलियम एबर्ट ग्लैडस्टोन ने 1850 में वित्त मंत्री के रूप में और तत्पश्चात् 1868 से चार बार बतौर प्रधानमंत्री कार्य करते हुए चुनाव सुधार और प्रशासनिक नियमों तथा विनियमों में व्याप्त कमियों को दूर करने हेतु अपेक्षित इच्छाशक्ति का प्रदर्शन किया जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार में इस हद तक कमी आयी कि ब्रिटेन को दुनिया के शीर्ष 15 न्यूनतम भ्रष्ट देशों की सूची में शामिल होने का सम्मान प्राप्त हुआ।<sup>27</sup> भारत की शासन व्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं है विशेषकर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इसकी जड़ें ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन तंत्र में निहित है और कर्मावेश हमारी संपूर्ण प्रशासनिक व राजनीतिक व्यवस्था ब्रिटिश व्यवस्था के प्रतिरूप हैं इस बात में कोई संदेह नहीं कि राजनीतिक इच्छाशक्ति से संपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में काफी हद तक एक सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है। हालांकि इसके साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि केवल कानून बनाना और संगठनात्मक परिवर्तन करना पर्याप्त नहीं है। सच तो यह है कि नैतिकता बाहरी तत्व है जो समाज के लोगों के व्यवहार पर निर्भर करती है अतः जब तक समाज के लोग स्वयं मूल्यों का निर्माण करते हुए इसका पालन नहीं करते संपूर्ण सुधार संभव नहीं है।

## संदर्भ सूची

1. सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्ता. राजनीति कोष पृष्ठ 67
2. श्री राम माहेश्वरी. भारतीय प्रशासन पृष्ठ 253
3. E. N. Gladden. 'The Civil Service: Its Problems and Future'. p.35
4. बी.एल. फाडिया. लोक प्रशासन पृष्ठ 438

5. Dr. T. Bhattacharya. 'The Indian Penal Code',p.12
6. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग 10वीं रिपोर्ट पृष्ठ 314
7. Delegated Legislation-PRS. [www.prsindia.org/.../1370586704-Parliamentary%20Security%20of%2](http://www.prsindia.org/.../1370586704-Parliamentary%20Security%20of%2)
8. Noor Mohammed Bilal. 'Dynamism of Judicial Control and Administrative Adjudication',p.24
9. डी.डी. बसु. भारत का संविधान एक परिचय पृष्ठ 312
10. Kuldeep Mathur,James Warner Bjorkman. 'Policy Making in India: Who Speaks? Who Listens?'p.76
11. Kuldeep Mathur. 'From Government to Governance',p.47
12. Jagdish N. Bhagwati. 'Getting Corruption Right'.[www.project-syndicate.org/commentry/getting-corruption-right](http://www.project-syndicate.org/commentry/getting-corruption-right).
13. Kuldeep Mathur. 'From Government to Governance',p.47
14. Kiran Karnik. 'Corruption:Try technology as it can be transformational'. The Economic Times(6 November 2012)
15. N. Changkakoti. 'Corruption and its eradication in India'. The Clarion:Multidisciplinary International Journal, Volumn-1. Number-1, February(2012),pp.183-85
16. सच्चिदानंद सिंहा. लोकतंत्र की चुनौतियां पृष्ठ 113-123
17. 45<sup>th</sup> Transfer? IAS officer Ashok Khemka,who took on Robert Vadra,asked to shift again. [www.ndtv.com/.../45th-transfer-ias-officer-ashok-khemka-who-took-on-](http://www.ndtv.com/.../45th-transfer-ias-officer-ashok-khemka-who-took-on-)
18. सुरेन्द्र मोहन. लोक संस्थाओं का क्षय (भारत का राजनीतिक संकट, संपादक राजकिशोर)पृष्ठ 70
19. 'India's Citizen's Charter:A Decade of Experience'. Public Affairs Centre,Bangalore
20. 'Key issues and constraints in implementing the RTI Act'. [rti.gov.in/rticorner/studybyppw/key-issues.pdf](http://rti.gov.in/rticorner/studybyppw/key-issues.pdf).
21. for detailed analysis see- RTI activist:sitting ducks of India. Published by: Asian Centre for Human Rights(2011)
22. Priti Patnaik. 'Social audits in India'.the guardian (13 january 2012)
23. [nrega.nic.in/circular/Social-Audit.htm](http://nrega.nic.in/circular/Social-Audit.htm).
24. Beina Xu. 'Governance in India:Corruption'. [www.cfr.org/corruption-and-.../governance-india-corruption/p31823](http://www.cfr.org/corruption-and-.../governance-india-corruption/p31823)
25. Kiran Karnik. 'Corruption:Try technology as it can be transformational'. The Economic Times(6 November 2012)
26. सच्चिदानंद सिंहा. लोकतंत्र की चुनौतियां पृष्ठ 113-123
27. N. Changkakoti. 'Corruption and its eradication in India'. The Clarion: Multidisciplinary International Journal, Volumn-1, Number-1. February(2012),pp.183-85

# डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार

डॉ. आनन्द वर्द्धन

एम.ए., पटना विश्वविद्यालय, पटना

महाराष्ट्र के रत्नगिरि जिले के एक गांव अम्बावडे में 14 अप्रैल 1891 को एक ऐसे नक्षत्र का उदय हुआ जिसके असाधारण रूप को देखकर अम्बावडे की अछूत बस्ती में हर्षोल्लास छा गया। महार जाति के रामजी मालोजी सकपाल एवं भीमाबाई के घर जन्मे बड़ी-बड़ी गोल और चमकदार आंखें, भरापूरा शरीर, रंग गोरा, चौड़ा माथा, सुतवां नाक एवं पतले रसीले होंठ को देखकर शायद ही कोई कह सकता कि वह जाति से महार (अछूत जाति) है। एक ऐसी जाति जिसका स्पर्श हो जाने मात्र से तत्काल स्नान करना पड़ता था। कहने को तो भीमराव कुल चौदह भाई-बहन हुए, परंतु दो बहन एवं तीन भाई को छोड़कर अन्य सभी काल कवलित हो गए। दिखने में मां के अनुरूप होने के कारण बालक का नाम पहले भीम रखा था तथा बाद में पारिवारिक परंपरा के अनुसार उसका नाम भीमराव रामजी सकपाल अम्बेडकर रखा गया। मेधावी भीम समाज में व्याप्त बुराईयों के कटु अनुभवों से गुजरते हुए जब अपने तरुणावस्था में पहुंचे तो कौन जानता था कि वह आगे चलकर भारत-रत्न, संविधान निर्माता एवं इतिहास पुरुष बनेगा।

सन् 1916 में अमेरिका से एम० ए० की डिग्री लेने के बाद उनके जीवन के पहले लेख “कास्ट्स इन इंडिया” ने समस्त बुद्धिजीवियों के अंतरात्मा को हिलाकर रख दिया।<sup>1</sup> कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त करने के साथ ही वह अछूत बालक सभी की आंखों का तारा बन गया। इसके बाद भारत आकर अम्बेडकर ने एक ऐसे काम को हाथ में लिया जो सदियों से उपेक्षित था। दलितोद्धार को ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करने के बाद शीघ्र ही वे उनकी दशा एवं दिशा बदलने के लिए कृत संकल्पित हो गए। भारत रत्न डॉ० अम्बेडकर हिन्दु समाज के सभी अन्यायपूर्ण और दमनकारी स्वरूपों के विरुद्ध विद्रोह के ना केवल प्रतीक बने बल्कि नवचेतना एवं बहुजन जागृति के एक महान मसीहा के रूप में अपने को प्रतिष्ठित किया।<sup>2</sup> उनका मानना था कि यदि भारत को स्वतंत्र कराना है तो सबसे पहले हिन्दु समाज में आमूलचूल परिवर्तन होना चाहिए। क्योंकि बिना सामाजिक क्षमता और मातृत्व के स्वतंत्रता एक ढकोसला मात्र है। यही कारण है कि हिन्दु समाज में व्याप्त बुराईयों की जमकर आलोचना करते रहे।

डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि हिन्दु समाज के संगठन का मूल आधार वर्ण-व्यवस्था था जो कि पूर्णतः अव्यवहारिक एवं कलुषित था। वर्ण-व्यवस्था का यह वास्तविक स्रोत ऋग्वेद का पुरुष सूक्त है। जिसमें वर्ण को चतुर्विध स्वीकार किया गया है। यथा-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि-“चातुर्वर्णं मया सृष्टाः गुण-कर्म विभागशाः”<sup>3</sup> हिन्दु समाज की एक अन्य मान्यता के अनुसार इन चारों वर्णों की सृष्टि ब्रह्मा ने की है जिनका रंग क्रमशः श्वेत, लाल, पीला एवं काला है। यथा-

ब्रह्मणानां तु सितो क्षत्रियाणां तु लोहितः ।

वैश्यानां पतिको वर्णं शूद्राणामस्तिस्तथा ॥<sup>4</sup>

डॉ० अम्बेडकर का मानना है कि रंग के आधार पर मनुष्यों का वर्गों में विभाजन तथा बाद में शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखना मानवता को कलांकित करने जैसा है। एक मानव का दूसरे मानव के प्रति ऐसा घृणित व्यवहार कहीं से भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती है। इतना ही नहीं हिन्दू विद्वान इस व्यवस्था को श्रम-विभाजन का भी आधार मानते हैं। इसके आधार पर तो शूद्रों की स्थिति और भी दयनीय हो गई। अधिकार एवं कर्तव्य की दृष्टि से उसे अत्यंत ही पंगु बना दिया क्योंकि उसे न तो वेदाध्ययन का अधिकार था और न ही यज्ञ करने का ना तो वह सैनिक बन सकता था और ना ही व्यापार कर सकता था। गीता में उसके विहित एकमात्र कर्म का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि—

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।

एतेषामेव वर्णानां शुक्षुषामनसूयया ॥<sup>5</sup>

हिन्दुओं की गीता पर गहरी आस्था है जिस कारण वे वर्ण-व्यवस्था को भी सत्य और पवित्र मानते हैं इसे वे आर्थिक सुदृढीकरण का भी आधार मानते हैं। लेकिन अम्बेडकर का मानना है कि वर्ण-व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें ऊंच-नीच, जात-पात आदि पारिवारिक संपत्ति के रूप में समझी जाती है।<sup>6</sup>

डॉ० अम्बेडकर जातिवाद के कट्टर विरोधी थे। इतना ही नहीं वे सदैव इस समस्या का समाधान चाहते थे। इनका मानना था कि हिन्दू समाज के अंतर्गत जाति प्रणाली में ऐसी व्यवस्था की गई थी जाति के भीतर जाने की बंदिश के साथ-ही-साथ जाति के बाहर जाने की भी बंदिश है। जाति का तर्कशास्त्र ही इतना कठोर था कि इस क्रूर नियम के कारण असंख्य जातियों का उदय हुआ।<sup>7</sup> बाबा साहेब का मानना था कि इसी कारण हिन्दू समाज में वह एकता नहीं आ सकती, जिसकी आज हमें आवश्यकता है। इसके लिए वे अंतरजातीय विवाह के पूर्ण पक्षधर थे। हालांकि हिन्दू समाज में अनेक ऐसी जातियाँ हैं जो आपस में खान-पान करती हैं, परंतु उनका जातिवाद संबंधी विचार फिर भी ज्यों-का-त्यों है। इन सबके पीछे उनके तथा कथित धर्म की भूमिका अधिक है। अम्बेडकर का मानना है कि जाति व्यवस्था जो घृणा असमानता एवं वैमनश्य पर आधारित है, तभी नष्ट हो सकती है, जब हम गीता जैसी धर्मशास्त्रों के प्रति दैवीय एवं पवित्र भावनाओं को समाप्त कर दें।

जाति प्रथा के ही कारण अस्पृश्यता जैसे सामाजिक कोढ़ को हिन्दू समाज में स्थापित माना जाता है। उनका मानना था कि यह एक ऐसा कलंक है जिसे विधिवत एवं सांविधानिक रूप से तो मिटा दिया गया है, किंतु व्यवहार में वह आज भी अनेक रूपों में प्रदर्शित होता है। वस्तुतः अस्पृश्यता की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं, किंतु स्मृति काल में अत्यंत निकृष्ट काम करने वालों को अस्पृश्य कहा गया जिनको देखना, छूना तथा जिनकी छाया भी स्वर्ण हिन्दुओं को अपवित्र कर देता था। अम्बेडकर का मानना है कि यह हमारे समाज से पूर्णतः तभी विलीन हो सकता है, जब संपूर्ण हिन्दू सामाजिक व्यवस्था विशेष रूप से जाति प्रथा विलीन हो जाए। यदि जाति प्रथा विलीन नहीं हो सकती, तब यह आशा ही करना व्यर्थ है कि अस्पृश्यता जैसी कोढ़ समाज से विलीन हो पाएगी।

इन सबों के मूल में “संस्कार” की बहुत अधिक भूमिका है। विभिन्न वर्णों के संस्कार भी भिन्न-भिन्न हुआ करता था। हिन्दुओं में शूद्र, अछूतों की उन्नति एवं अवनति को उनके लिए कुछ

संस्कारों के निषेध के साथ जोड़कर देखा जाता रहा है। इन सबों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार 'उपनयन संस्कार' था। डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि प्राचीन काल में इन संस्कारों का बहुत अधिक महत्व था। व्यक्तियों की प्रतिष्ठा एवं अधिकार इन्हीं संस्कारों पर आधारित रहते थे। ऐसी मान्यता थी कि उपनयन संस्कार के द्वारा बच्चे का दूसरा जन्म (द्विज) होता था। इसमें बच्चों को पुरोहितों द्वारा यज्ञोपवीत (जनेउ) धारण करवाया जाता था।

तत्पश्चात उन्हें वेदाध्ययन के लिए गुरु के आश्रमों में छोड़ दिया जाता था। कहने का अर्थ है कि इसके साथ ही उनका शिक्षा-दीक्षा प्रारंभ हो जाता था। चूंकि शूद्रों के लिए इस संस्कार को निषिद्ध करा दिया गया जिसके कारण शूद्र स्त्री-पुरुष सामाजिक विकास के क्रम में निरंतर पिछड़ते चले गए। परिणामस्वरूप शूद्र निरक्षर, नीच, अधम, कमजोर तथा अछूत बन गए। क्योंकि जो चीजें मानव जीवन को संबल एवं समृद्ध बनाती हैं, उन्हें उनसे वंचित कर दिया गया। अछूतों को केवल 'विवाह संस्कार' की ही छूट थी। फलतः उनकी संतानों की वृद्धि तो हुई परंतु वे अभिशप्त जीवन जीने को विवश हो गए। जिसका दुष्परिणाम हमें भारतीय समाज में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इतना ही नहीं सभी आश्रम व्यवस्था यथा-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आदि भी द्विज जन्मे लोगों तक ही सीमित था।

डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि जनहित में जो भी संस्कार या सामाजिक रीति-रिवाज है, उन्हें सबके हित में मान्यता दी जाये तथा सांवैधानिक दृष्टि से उनकी समीक्षा भी की जाये। साथ-ही-साथ जो भी संस्कार या वर्ण-व्यवस्था विधि-विरोधी हैं, उन्हें तिलांजलि दे दी जाए ताकि भारतीय समाज को उन विधियों, नियमों एवं मूल्यों के आधार पर पुनः व्यवस्थित किया जा सके जो प्रत्येक मानव की स्वतंत्रता, समानता, गरिमा एवं प्रतिष्ठा को मान्यता देते हों।

प्राचीन भारत में नारियों की स्थिति भी संतोषजनक नहीं थी। अम्बेडकर जी का मानना है कि नारी वर्ग के सर्वाधिक प्रतिकूल स्थिति उस समय आई जब 'मनुस्मृति' को सामाजिक एवं विधिक मान्यता मिली। हालांकि जब बुद्ध ने नारियों को भिक्षुणी होने की सम्मति दी तो इससे नारी वर्ग को सामाजिक स्वतंत्रता मिली जिससे कि नारी में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी। लेकिन मनु ने नारियों पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाकर उसे गुलामी की बेड़ियों में जकड़ दिया।<sup>9</sup> यही कारण है कि डॉ० अम्बेडकर ने मनु को न केवल नारी वर्ग के अवनति का साधन बतलाया अपितु उसे समस्त हिन्दू भारतीय समाज के पतन का कारण माना।<sup>10</sup>

मनुस्मृति ने नारी के सामाजिक स्थिति को प्राचीन-भारत में जितना पतनोन्मुख बनाया स्वतंत्र भारत में उन्होंने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को उतना ही उन्नतिशील एवं उत्थानोन्मुख बनाया। जैसा कि भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों और मौलिक अधिकारों के प्रावधानों में अंतर्निहित है। डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल के माध्यम से सदियों से पीड़ित महिलाओं को समान अधिकार तथा संरक्षण पर बल दिया ताकि उन्हें सम्पत्ति, विवाह-विच्छेद, उत्तराधिकार तथा गोद लेने के संबंध में समान अधिकार सुलभ हो जाये। वे परिवार नियोजन के कट्टर पक्षधर थे। इस प्रकार की वकालत एवं प्रचार करके उन्होंने समस्त नारी जाति की प्रगति एवं भलाई की आवाज बुलंद की थी जो आज भी सार्थक एवं प्रासंगिक हैं।<sup>11</sup>

## संदर्भ सूची:

1. डॉ० गोल्डन वाइजर (अमेरिका) के नेतृत्व में आयोजित 'एन्थ्रोपोलॉजी' सेमिनार से उद्धृत
2. एनिहिलेशन ऑफ कास्ट-डॉ० बी० आर० अम्बेडकर-1936
3. श्रीमद्भागवद्गीता 4/13
4. ऋग्वेद- पुरुष सूक्त
5. मनुस्मृति 1.91
6. एनिहिलेशन ऑफ कास्ट-डॉ० अम्बेडकर
7. राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज पार्ट-1 पृ०-19
8. संपूर्ण वाङ्मय-खण्ड-9 बाबा अम्बेडकर
9. राइज एण्ड फॉल ऑफ हिन्दू वीमेन
10. इण्डियन पॉलिसी भाग-2 पृ०-16
11. राइज एण्ड फॉल ऑफ हिन्दू वीमेन पृ०-95

# रूढ़िवाद, साम्प्रदायिकता एवं धर्मनिरपेक्षता

डॉ. महेश कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, देवघर कॉलेज, देवघर

## मूल अवधारणाएं

**रूढ़िवाद:** सबसे पहले रूढ़िवाद का अर्थ समझें। रूढ़िवाद का अर्थ है धार्मिक ग्रंथों (जैसे बाइबिल, श्री गुरु ग्रंथ साहिब, गीता) की मान्यताओं और सिद्धांतों को अविवाद्ध मानना। अनुयायी इसे ऐतिहासिक सत्य के रूप में देखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अनुयायी कट्टर दृष्टिकोण अपनाते हैं, वे अक्सर अपने स्वतंत्र राष्ट्र की मांग भी करते हैं। इसे भी ग्रंथों की भविष्यवाणी के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार रूढ़िवाद के कारण एक विशिष्ट समुदाय समाज की मुख्य धारा से अलग हो जाता है। पुलिस, सेना आदि की मदद से शेष समाज इन्हें दबाने या खत्म करने की कोशिश करता है, खासतौर पर तब जब ये कानून का उल्लंघन करने लगते हैं। साम्प्रदायिकता, हिंसा और दंगे फैलाती है। रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता के बीच अंतर यह है कि सामुदायिक आधिपत्य के अलावा साम्प्रदायिक दंगों का और कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता है। रूढ़िवाद एक संगठित आंदोलन है जिसका उद्देश्य विशेष रूप से धार्मिक प्रष्टिता के दृष्टिगत सामाजिक लक्ष्यों को बढ़ावा देना है। कार्यात्मक रणनीति में शांतिपूर्ण और युद्ध जैसे प्रयोग और आंदोलन शामिल हैं।

**साम्प्रदायिकता:** दूसरी ओर साम्प्रदायिकता का अर्थ है राजनीतिक उद्देश्यों से सामाजिक परंपराओं का सामुदायिक शोषण। इसका उद्देश्य है स्थापित समूहों के हितों को ठेस पहुंचाना। इस प्रकार साम्प्रदायिकता ऐसी विचारधारा है जिससे कोई समुदाय या सामाजिक समूह अपनी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक अभिलाषाओं की पूर्ति करने का प्रयास करते हैं। इसका अस्तित्व विशिष्ट प्रस्तावों और कार्यक्रमों पर निर्भर है। सामाजिक परिवर्तन के दौरान यह अस्तित्व विशिष्ट प्रस्तावों और कार्यक्रमों पर निर्भर है। सामाजिक परिवर्तन के दौरान यह सक्रिय बनता है। भारत में साम्प्रदायिक औपनिवेश काल में उभरी। साम्प्रदायिक राजनीति धर्म और परंपरा के बल पर अपनी योजनाएं बनाते हैं। राजनीतिक संघटन हेतु इतिहास की व्यवस्था की जाती है। साम्प्रदायिक संगठनों में लोकतंत्र के लिए जगह नहीं है। इनका प्रजातिवादी दृष्टिकोण होता है और वे प्रजातिवाद का प्रचार करते हैं। वे समानतावाद को अनैसर्गिक समझते हैं। और पितृसत्ता का पारिवारिक और सामाजिक नियम के रूप में समर्थन करते हैं। साम्प्रदायिकता शब्द का प्रयोग दो तरह से किया जाता है:

1. विश्वास-व्यवस्था और
2. सामाजिक परिघटना।

पहले दृष्टिकोण के अनुसार साम्प्रदायिकता एक विचार-व्यवस्था का परिणाम है। इसके लिये घनिष्ठ सामुदायिक एकता आवश्यक है जो सही नहीं है। प्रायः देखा गया है कि समुदाय में आंतरिक मतभेद मौजूद हैं। ऐसे में इतिहास काम आता है। साम्प्रदायिकता के समर्थक समुदाय के समान दुःखों और लक्ष्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। दूसरे समुदायों की अपेक्षा उस समुदाय की अनन्यता पर जोर दिया जाता है जिससे अपने अधिकारों के लिए लड़ना अत्यंत सहज बनता है। जैसा कि पहले

बताया जा चुका है भारत में सांप्रदायिकता उपनिवेशवाद की देन है जिसमें ब्रिटिश शासक प्रमुखता देकर विभिन्न समुदायों में मौजूद धार्मिक विरोधाभासों का प्रयोग करते थे। आजादी के बाद भारत के आर्थिक आधुनिकीकरण से आर्थिक अवसरों में वृद्धि हुई है परंतु इससे प्रतिस्पर्धा कम नहीं हुई है। नौकरियों में कम अवसर मिलने के कारण विभिन्न समुदायों में ईर्ष्या है। 1947 में राजनीतिक आजादी के कारण देश के दो भागों में बंटवारे से भयंकर सांप्रदायिक रक्तताप हुआ।

## धर्मनिरपेक्षता

भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को रूढ़िवाद और सांप्रदायिकता द्वारा उत्पन्न समस्याओं का हल करने के लिए अपनाया गया है। यह राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं जैसे जीवन के क्षेत्रों से धर्म का स्पष्ट अंतर दर्शाता है। प्रत्येक धर्म का आदर होना चाहिए और निजी तौर पर प्रचार होना चाहिए। वैचारिक शब्दों में यह विश्वासों और प्रचलनों की वह व्यवस्था नहीं है जो राजीतिक विचारधारा के साथ मिलती है। कुल मिलाकर धर्मनिरपेक्षता धर्म को राज्यतंत्र से अलग करती है। यह इस दृष्टिकोण का भी समर्थन करती है कि सभी समुदायों को राज्य द्वारा समान अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त धर्मनिरपेक्षवादियों को सभी धार्मिक विश्वासों के प्रति विवेकपूर्ण ढंग से तालमेल रखना चाहिए और सामाजिक जीवन को समतावादी तरीके से समझना चाहिए। धर्मनिरपेक्षता का अभिप्राय उन विचारों से है जो धार्मिक शिक्षा के विपरीत हैं। इसे धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया से जोड़ा गया है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के विभिन्न वर्ग धार्मिक प्रतीकों और धार्मिक संस्थाओं से मुक्त होते हैं। धर्मनिरपेक्षता का विचार पश्चिम में आधुनिक विज्ञान और प्रोटेस्टैंट धर्म की बोली से दक्षिण एशियाई समाजों में आया है। यह परिवर्तन समस्याओं से भरा है और इसे सही प्रक्रिया के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता।

## रूढ़िवाद के पहलू

अवधारणा के रूप में “रूढ़िवाद” का प्रयोग सर्वप्रथम 1910-1915 में किया गया था जब अज्ञात लेखकों ने साहित्य के 12 खण्ड प्रकाशित किए जो “फंडामेंटल्स” कहलाए। 20वीं शताब्दी के आरंभ में मुद्रण जगत ने इस शब्द का प्रयोग उत्तरी अमेरिका में रूढ़िवादी प्रोटेस्टैंट समूहों के संदर्भ में किया। ये समूह बाइबिल की उदार व्याख्याओं के बारे में चिंतित थे। इससे चिंतित होकर रूढ़िवादियों ने विश्वास (आथा) के कुछ “मूल सिद्धांतों” पर जोर दिया। इसमें ईसा मसीह का जन्म, दैवत्व और पुनर्जीवन और धार्मिक ग्रंथ की विश्वसनीयता शामिल थी। ये और अन्य मूल सिद्धांत 12 पुस्तिकाओं में 1910-1915 के बीच प्रकाशित हुए जो “दि फंडामेंटल” (मूल सिद्धांत) कहलाए। इस प्रकार “रूढ़िवाद” की अवधारणा के विशिष्ट प्रयोग की शुरुआत हुई। बुनियादी आंदोलन वह आंदोलन है जो किसी धर्म ग्रंथ को बुनियादी मुद्दे के रूप में मानता है और जीवन का मार्गदर्शक समझता है। कुछ रूढ़िवादी यह मानते हैं कि धर्म ग्रंथ की व्याख्या करना आवश्यक नहीं है क्योंकि इसमें अर्थ स्वतः स्पष्ट होता है। इससे प्रायः किसी भी प्रकार की असहमति के प्रति असहनशीलता पैदा हो जाती है। इसलिए यह आशंका होती है रूढ़िवादी संकीर्ण और धर्मांध होते हैं।

टी.एन. मदान (1993) ने कहा है कि रूढ़िवादी शब्द समकालीन विश्व में लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। उनके अनुसार इसका अभिप्राय विभिन्न मानदंडों, मूल्यों और मनोवृत्तियों से है जो या तो

रूढ़िवादियों की आलोचना करते हैं या उनकी भर्त्सना करते हैं, इस शब्द का प्रयोग अधिकतर सांप्रदायिकता के स्थान पर भी किया जाता है। वास्तव में रूढ़िवाद शब्द आवरण शब्द ( *उसंदायज जमतउ* ) हो गया है। इसका अर्थ यह है कि संसार में होने वाले विभिन्न रूढ़िवाद आंदोलन वास्तव में एकसमान नहीं होते परंतु वे कई प्रकार से एक दूसरे से अलग होते हैं। परंतु वे “परिवार” की समरूपता में जुड़े होते हैं। रूढ़िवादी आंदोलन सामूहिक चरित्र के होते हैं। इन आंदोलनों का चमत्कारी नेताओं द्वारा प्रायः नेतृत्व किया जाता है जो सामान्यतया मनुष्य होते हैं। 1979 के ईरानी आंदोलन का नेतृत्व अयातुल्लाह खुमैनी ने किया था और हाल ही में सिक्ख रूढ़िवाद की लहर संत भिंडरावाले ने चलाई थी। रूढ़िवादी नेता धार्मिक नेता नहीं होते। मौलाना मौदूदी जो भारत में जमाते इस्लामी के संस्थापक थे एक पत्रकार थे और के.बी. राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक के.बी. हेडगेवार एक चिकित्सक थे।

रूढ़िवादी वे व्यावहारिक लोग हैं जो सभी अशुद्ध जीवन शैलियों को शुद्ध करने का प्रयास करते हैं, वे सभी भ्रष्ट जीवन शैलियों को अस्वीकार करते हैं। उदाहरण है परंपरागत और अंधविश्वास भरी जीवन शैली का आलोचक दयानंद मार्गी। इस प्रकार मौदूदी ने वर्तमान मुस्लिम जीवन पद्धति को “अज्ञानी” कहा और भिंडरावाले ने “पतित” सिक्खों का उल्लेख किया जो अपनी दाढ़ी बनाते हैं, अपने बाल काटते हैं और परंपरागत सिक्ख जीवन पद्धति का पालन नहीं करते। इसलिए रूढ़िवाद आंदोलन न केवल धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं के बारे में होते हैं बल्कि वे आमतौर पर जीवन पद्धतियों के बारे में भी होते हैं।

रूढ़िवादी आंदोलन उन व्यक्तियों के लिए प्रतिक्रियाशील होते हैं जो इनमें भाग लेते हैं जैसे नेता और उसमें भाग लेने वाले लोग। इसका अर्थ है वे पुनः परिभाषित मूल सिद्धांत जिनमें आज की जरूरतें शामिल हैं। इसमें आमतौर पर परंपरा का सुधार निहित होता है। यह परंपरा की एक खोज भी कही जा सकती है। दयानंद प्रकरण में इसे बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्मान्तरण की चुनौती के प्रत्युत्तर में स्वामी ने हिंदू धर्म विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने दावा किया कि वेद ही हिंदू धर्म का एक मात्र सत्य रूप है और उन्होंने वेदों के लिए आह्वान किया।

ईरान में खुमैनी ने इस्लामी राज्य विकसित किया जो काजियों के संरक्षण पर आधारित था। फिर भिंडरावाले ने अपने तात्कारलिक उत्तराधिकारियों की शिक्षाओं की अपेक्षा श्री गुरु गोविन्द सिंह की शिक्षाओं पर जोर दिया। धार्मिक प्राधिकार का दावा और संस्कृति की आलोचना रूढ़िवादी के दो पहलू हैं। राजनीतिक शक्ति का अनुसरण रूढ़िवादी के लिए अत्यंत आवश्यक है। उत्तर भारत में आर्यसमाजी प्रबल राष्ट्रवादी थे और उनके आंदोलन में राजनीतिक स्वर था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जिसे सांस्कृतिक संगठन कहा गया है, उसके घनिष्ठ संबंध राजनीतिक दलों और विशेषरूप से संघ परिवार से रहे हैं। इसमें हिंदू राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक और राजनीतिक दोनों पहलू शामिल हैं। इससे पता चलता है कि रूढ़िवादी आंदोलन प्रायः हिंसक क्यों हो जाते हैं और धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा को क्यों अस्वीकार कर दिया जाता है। वे सर्वसत्तावादी हैं और विरोध सहन नहीं कर सकते। हालांकि ये आंदोलन आधुनिक समाज में एक विशेष भूमिका भी निभाते हैं जिसे नकारा नहीं जा सकता। इसलिए उद्देश्यपरक बौद्धिक विश्लेषण में रूढ़िवाद को एक विशिष्ट श्रेणी के रूप में माना जाना चाहिए। यह धर्म तंत्र नहीं है।

### सन्दर्भ सूचि:

1. टी. एन. मदन (सं.), रिलिजन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
2. बार्थ ए., रिलिजन ऑफ इंडिया, लो प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. श्री निवास एम. एन. एंड शाह ए. एम., हिंदूइज्म, इंटरनेशनल एनसायक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेस, मैकमिलन कंपनी एंड फ्री प्रेस, न्यूयॉर्क।

# Principles of Child Development

---

---

**Dr. Archana Kumari**

*Lecturer, Government Girls Inter College, Sitarganj,  
Udham Singh Nagar, Uttarakhand*

The student of child development should have a foundation in the principles of human development. These principles explain the basic factors which govern all growth and development. The individual is a product of hereditary, environmental, and self factors.

Hereditary factors are innate characteristics with which the child is equipped at birth. Prime factors in growth, heredity forces control the basic nature of the organism and the rate at which the organism covers the life cycle; they are the basic assets and liabilities, structural and functional, which allow the organism to use both nature and nurture in development. While hereditary factors generally come into play prior to birth, they do influence growth throughout life, just as some environmental forces are operative prior to birth.

The environment is a factor which must be continually studied in connection with hereditary forces. There is an increasing recognition that genes must function within a specific environment. Environmental factors we would consider include the intrauterine environment the family atmosphere, methods of child training, the family constellation, the total social community and the socioeconomic factors.

Self factors include the child's feelings and conceptions about himself, other persons, society, and his universe of experience, including his convictions, values, goals, and attitudes. The meaning the child inserts into his experiences, his individuality, and the manner in which the child characteristically perceives his experiences are included in the definition of self.

## **Heredity**

Through heredity the child acquires from his parents potentials for development which are inherent in the germ plasm and associated cell structures. The basic agents of development are genes, frequently referred to as determiners of the organism.

Genes are tiny particles, roughly thirty thousand in number, which make up the forty-six chromosomes in human beings. Through a special process of cell division, egg and sperm cells lose half their chromosomes. When the sperm unites with the egg, two halves are joined, providing the new cell with the normal number of chromosomes.

The new individual's life begins, then, at conception, when the sperm penetrates the wall of the ovum releasing twenty-three chromosomes. At almost

the identical time the inner core of the ovum breaks to release twenty-three chromosomes of its own. Knowledge of this process enables the student of child development to understand how the chromosomes serve as carriers of the child's heredity.

The immense variety inherent in each individual's genes and the significance of dominant and recessive factors in the study of genes do not concern us here. We need only know that it is the interaction among these genes which predisposes the growth of all the physical structures of the body. What effect genes have on the development of specific nonphysical human traits is not known.

Frequently, individuals are concerned about the influence of heredity on specific traits and ask,

*How tall might our children be? Will they tend to be overweight or thin, well-coordinated or clumsy? How about special talents? Will they inherit mother's talent for music, father's specific skill in sports? Which of these things will develop in a specific offspring?*

Each of these factors is dependent upon both hereditary and environmental forces. Certainly, environmental forces can modify or enhance predispositions present in the genes. Even some inherited structural defects can be overcome, as with the use of eyeglasses.

Intelligence is often of much concern to parents. Is intelligence inherited? If we mean only the potential for intelligence present in the genes, then we may speak of intelligence as inherited. If we go one step farther, to define intelligence in terms of its functions or the way in which it is demonstrated, then the proportional influence of heredity drops. Potentialities are inherited. Their optimum development is highly dependent upon the amount of nurture the environment provides and the way in which the individual chooses to utilise this nurture.

Acquired traits are not inherited, nor are character inadequacies, nor the complex behavioural patterns involved in certain types of skills. Certainly the value system of an individual is not inherent. Concepts and assumptions about life are not inherited.

Considerable variance is possible in the development of any individual. In any single mating the possible combinations of chromosomes between the male and the female are statistically enormous; the possibility of any one such combination being repeated more than once has been estimated at about one in three hundred thousand billion. It is apparent that the different combinations possible from roughly thirty thousand genes in the system can assume a figure beyond our capacity to predict or comprehend. When one expands the concept to include all the physiological and chemical factors present in the environment as modifying forces, then the differences possible in human development become, for practical purposes, infinite.

1. Sometimes people ask, why are there such great differences in the physical characteristics of children from the same parents? How would you explain these differences?
2. Peter, age thirteen, is an excellent student, tall, with red hair and blue eyes, overweight, argumentative like his father, poorly coordinated in baseball and basketball, but above average in tennis and golf. Socially, he plays with one child but prefers to be alone. How would you explain the above traits in terms of the relative influence of hereditary, environmental, and self factors?
3. If you are observing or studying a child, list some of his traits and discuss them in terms of the hereditary, environmental, and self factors.

### **Maturation**

Closely related to the hereditary factor in our consideration of development is maturation, which is the regulatory mechanism primarily dependent upon physical growth in contrast to experience or training. Maturation directs the biological development of the bodily machinery. It accounts for changes that take place in the absence of specific practice. Basic research in maturation studies points to the fact that behaviour patterns of the infant and child are controlled by developmental levels in neuromuscular maturation, and it is futile to try to train a child in some activities before the neural mechanism is ready. The patterns of all behaviours influenced by maturation tend to show evidence of spurts, plateaus, and varying fluctuations. Thus, we can see that maturation and learning are different facets of a fundamental process of growth. In any type of educational planning it is well to look for the cues or signals which reflect a maturity of the neural mechanisms. The general principle of maturation has certain educational implications. The individual's ability to profit from his experiences is closely related to the level of development he has attained. Practice may accelerate the attainment of a skill when it is introduced at a time the child is ready for it. Imposed before readiness, however, practice may inhibit the individual's potential and carry concomitant discouragement factors which influence his future performance.

Premature practice, it seems evident, is educationally unsound. There are many implications as to its influence on a child's interest, cooperation, and formation of negative attitudes. On the other hand, optimal readiness is a relative factor, and the professional educator must be alert to the possibility that waiting too long may be as harmful as premature forcing or pressuring. Readiness and maturation are concepts which must be applied on an individual basis. At present some children are taught to read in prekindergarten and kindergarten while other children do not begin the reading process until second grade. Relate these varying practices to the concepts of maturation and readiness. Is readiness a concept which should be considered only at the beginning of school or at the onset of a specific developmental cycle? How are the readiness and maturation factors influential throughout all school experiences?

## References

- Angle, Stephen C.: *Human Rights and Chinese Thought: A Cross-Cultural Inquiry*, New York: Cambridge University Press, 2002.
- Baehr, Peter R.: *Human Rights: Chinese and Dutch Perspectives*, The Hague: Kluwer Law International, 1996.
- Bandura, A.: *Socialisation theory and research*. Chicago: Rand McNally, 1969.
- Cassese, Antonio: *Human Rights in a Changing World*. Philadelphia: Temple University Press, 1991.
- Cooley, C.H.: *Human nature and the social order*. New York: Charles Scribner's Sons, 1902.
- Davis, Michael C.: *Chinese Values and Human Rights*, Hong Kong: Oxford University Press, 1995.
- Forsythe, Frederick P.: *Encyclopedia of Human Rights*, Oxford University Press, New York, 2009.
- Hannum, Hurst: *Autonomy, Sovereignty, and Self - Determination: The Accommodation of Conflicting Rights*. Philadelphia: University of Pennsylvania Press, 1990.

# Home and Community Influences in Social Development

---

---

**Deepa Kumari**

*Lecturer, Department of Home Science,  
Priya Rani Degree College, Bairginiya, Sitamarhi*

Community, home, school, peers, and media exert a greater or lesser influence on children's learning, depending on the age of the children concerned. Many theorists have described the stages in children's development from dependency to independence and have theorized how children learn. In practice, parents, teachers, and community people rarely subscribe to one particular theory, but the decisions they make about children's learning will reflect a stronger belief in one viewpoint. As you develop strategies to promote partnerships for children's education, it is helpful to keep in mind that the perspective others may have on development may differ from your own.

## **The Early Years-Strong Home Influence**

Early researchers such as Maslow (1970), Erikson (1963), and Piaget (1967) all emphasize the strong need for attachment and environmental support of infants and toddlers. Developing children require a physically and emotionally supportive environment in which their basic needs can be met. Infants must first develop trust in others so that they can explore their surroundings. According to Piaget, it is this exploration that enables them to construct knowledge about themselves and their world (Piaget, 1967). Neuroscientists have discovered links between brain structure and brain activity, and brain research substantiates the notion that a child's knowledge develops because of an interactive process, beginning even as the brain develops before birth. Heredity may determine the framework of a developing child's brain, but researchers point out the many ways in which genes, environment, and infant responses interact to develop the connections between the brain cells that account for learning. Because of this brain-environment interactive development, we can see that myriad events will affect growth, some positively and some negatively.

Type of housing, presence of caregivers, and lifestyles associated with different homes influence children's lives in profound and dramatic ways. Some environments are extremely supportive and nurturing, whereas others are dominating, negligent, and even dysfunctional.

For example, affectionate interactions, consistent practices, organized schedules, and high-quality nourishment bring support and security to young children. Such nurturing environments have secure caregivers who respond to their children by touching, cuddling, talking to, and reading with them. Most

authorities agree that emotional support and interactions with the child provide building blocks for intellectual competence and language comprehension.

On the other hand, the trials of homelessness, highly mobile families, absentee parents, and poverty often mean that parents are unable to provide positive and secure environments. The lack of a responsive environment, which stems from the parents' own life experience, will affect a child's intellectual, social, and emotional competence. The young brain is quite resilient, however, and later stimulation or strong emotional bonds can help many children overcome some of the negative results of early deprivation.

Regardless of family configuration, American society expects all families to provide economic and emotional support for infants and toddlers. With more single-parent and dual-income parents, and fewer extended family members available to support them, families face many challenges in providing optimal care for their children.

### **Preschool and Kindergarten Years-Increasing School Influence**

As children develop a sense of autonomy, they need to learn the boundaries within which they can operate, and they must learn to identify new ones they will encounter as they separate from home. Bronfenbrenner's (1979, 1993) bioecological model accurately explains the transitions from the intimate microsystem of home to the mesosystem of outer linkages that come to bear on the developing child's perceptions and behaviour. As parents give their children necessary support, they must also give them freedom to try things on their own. As we noted, one's sense of self first develops in the home and then extends into the neighbourhood, child-care center, and larger community. At school, the teacher and the children's peers begin to alter or reinforce this sense. Children modify their behaviour in school in response to various rules and regulations and to perceived teacher and peer expectations. At the same time, significant others in the home setting continue to influence development as the early schoolers move from basic trust to autonomy and independence.

Many children have school-like experiences in their preschool years. For other children, school as a culture first comes into focus when they enter formal public or private elementary school. In the preschool years, children may encounter several different types of school-like experiences. Head Start programs, child-care centres, and nursery schools all demonstrate somewhat different philosophical orientations. Some programs seek to introduce children to school through a more structured curriculum, others try to extend the nurturance of the home, and still others combine facets of both. The current movement toward universal preschool for children is an indication of the growing awareness of the importance of this developmental stage.

Although it is difficult to conduct rigorous studies to determine the influence of different programs on developing children, we have evidence that quality preschool programs do have a lasting, positive effect on children's academic growth and on subsequent life-skill development.

### **Primary Years-Growing Community Influence**

Community influence appears early in children's lives and progresses steadily as children mature. The effect of community depends, however, on how families use neighbourhood resources. The nature of that effect is not simple; it derives from the many subsystems within the community. For example, the family may live in a neighbourhood that provides positive social and physical support or in an area where parents are afraid to take their children outside.

As children expand their horizons, the living conditions of the neighbourhood and community give them experiences on which to build their linguistic, kinesthetic, artistic, spatial, and interpersonal skills. Children who can visit zoos, museums, libraries, business establishments, parks, and other natural settings are better equipped to deal with the many mathematical, scientific, social, and language concepts discussed in schools than are children who can't. Recent decades have produced a rich mix of cultural and ethnic diversity in many American communities which contrasts starkly with the situation that existed in the mid-20th century. Inclusive schools, ethnically diverse neighborhoods, and transcultural events in most vicinities all produce a positive effect on young children.

Traditions, cultural values, community mores, opportunities for recreation, and other social and cultural activities all play a part in children's development. Experiences interacting with adults in clubs, sports, and art and music activities open up children to differences in communication styles and offer them a range of experiences. Coleman (1991) called this type of involvement with adults a child's social capital and stressed that this capital is as important as financial capital in determining school performance. Maeroff (1999) pointed out how children living in poverty may have fewer opportunities to participate in interactive incidents with different adults than those children who do not. Although socialization practices are learned at home, children who participate in community activities have greater opportunities to practice their negotiating, problem-solving, and intellectual skills. Positive interactions between community and family give a sense of security and well-being to all. This situation helps families provide the kind of nurturing that children need. Regrettably, not all communities provide healthy conditions for children. Community tolerance for gangs, illicit activities, or establishments with erotic content will have unhealthy and negative influences on children's growth and the experiences they have. Violence in the streets limits everyone's sense of security. Yet, even in neighborhoods besieged by poverty, extended family, churches, social and service organizations, and neighbourhood groups can make a positive difference in children's lives and support and extend the work of families and schools

### **Emotional Development**

Emotion is the complex psychophysiological experience of an individual's state of mind as interacting with biochemical and environmental influences. In humans, emotion fundamentally involves "physiological arousal, expressive

behaviours, and conscious experience". Emotion is associated with mood, temperament, personality and disposition, and motivation. The English word 'emotion' is derived from the French word *émouvoir*. This is based on the Latin *emovere*, where *e-* (variant of *ex-*) means 'out' and *movere* means 'move'. The related term "motivation" is also derived from the word *movere*. No definitive taxonomy of emotions exists, though numerous taxonomies have been proposed. Some categorizations include:

- 'Cognitive' versus 'non-cognitive' emotions
- Instinctual emotions (from the amygdala), versus cognitive emotions (from the prefrontal cortex).
- Categorization based on duration: Some emotions occur over a period of seconds (for example, surprise), whereas others can last years (for example, love).

A related distinction is between the emotion and the results of the emotion, principally behaviours and emotional expressions. People often behave in certain ways as a direct result of their emotional state, such as crying, fighting or fleeing. If one can have the emotion without the corresponding behaviour, then we may consider the behaviour not to be essential to the emotion. Neuroscientific research suggests there is a "magic quarter second" during which it's possible to catch a thought before it becomes an emotional reaction. In that instant, one can catch a feeling before allowing it to take hold. The James-Lange theory posits that emotional experience is largely due to the experience of bodily changes. The functionalist approach to emotions (for example, Nico Frijda and Freitas-Magalhaes) holds that emotions have evolved for a particular function, such as to keep the subject safe.

## References

- Allport, Gordon: *Pattern and Growth in Personality*, Holt, Rinehart and Winston, New York, 1961.
- Angell, J. R.: *The Evolution of Intelligence*. New Haven, CT: Yale University Press, 1922.
- Arndt, William B. Jr. : *Theories of Personality*, Macmillan, New York, 1974.
- Baldwin, J.M.: *Social and Ethical Interpretations of Mental Development*. New York: Macmillan, 1897.
- Boring, E.G.: *A History of Experimental Psychology*. New York: The Century Company, 1929.
- Damon, William : *Social and Personality Development, Infancy through Adolescence*, New York: Norton, 1983.
- Dubey, K.C. : *Experimental and Developmental Psychology*, Omega Pub, Delhi, 2009.
- Eysenck, Hans : *Psychoticism as a Dimension of Personality*, Pergamon, Elsevier Science Inc, Amsterdam, 1997.
- Grace, G. : *School Leadership: Beyond Educational Development*, London, Falmer, 1995.
- Hurt, K. F. : *The Quest of the Psychological Jesus*, Unitarian Universalist Christian, 1982.
- Kaur, Rajpal : *Developmental Psychology: New Trends and Innovations*, Deep and Deep, Delhi, 2006.
- Laub, D. : *Testimony, Crises of Witnessing in Literature, Psychoanalysis and History*, Routledge, New York, 1992.
- MacDonald, K. : *Evolutionary Perspectives on Human Development*, Thousand Oaks, CA: Sage, 2004.
- Maslow, A. H. : *Motivation and Personality*, Harper & Bros, New York, 1954.
- Sen, Anuradha : *An Introduction to Developmental Psychology*, Indian Pub, Delhi, 2010.

# Nutritional Status of Scheduled Castes School Going Boys and Girls in and around Gaya of Bihar State

---

---

**Kumari Soni**

*Ph.D. Scholar, Home Science, Magadh University, Bodh Gaya, Bihar*

---

---

**Suprita Suman**

*Reader, Department of Psychology, Magadh University, Bodh Gaya, Bihar*

## **Introductions**

Children health is the national wealth. The nutrition and health status of the children is the index of what the nation is investing in the development of the future manpower potential (Bhandari, et al, 1975). Malnutrition continues to be a primary cause of ill health and mortality among children in developing country. About 150 million children in developing countries are still malnourished and more than half of underweight children live in South East Asia, Resion (UNICEF, 2004) . The high level of under nutritional condition in children in South Asia pose a major challenge for child survey and development. National education and family poverty also effect the malnutrition among the school going children. (Christinaensel L; and Alderman H, 2001)

The United Nation subcommittee on Nutrition Meeting held in Oslo in 1998 concluded that more data on health and nutrition of school age children are needed to assess their scale of problem (United National, Nutrition of the school aged, July 1988). Amirthaveni and Barikor (2002) suggested that the health of children is dependent upon food intake that provide sufficient energy and nutrients to promote optional physical, social, cognitive growth and development. In children protein and caloric deficient diet results in underweight, wasting and lowered resistance to infection, stunted growth, impaired cognitive development resulting lower Intelligence Quotient (IQ) and behavioural abnormalities (Gowri and Sanguwan, 2005). Therefore, it becomes very important to know the nutritional status of school going children of scheduled castes in and around Gaya of Bihar state. Gaya district has highest schedule caste population among allthe district of Bihar (State census report 2001). The study has been carried out in Gaya with following objectives:-

- 1) To Study dietary intake of student (Boys and Girls) between age group of 13 to 16 years
- 2) Problems related to nutritional deficiency among schedule caste students.

## Methods

To undertake the study two hundred students from different primary / secondary schools of Gaya were taken. While conducting study who so ever were available in these category of cast were taken under study. The following parameters were taken under study.

- a) Children (boys and girls) of various age group between 13 to 16 years going to schools were taken for study.
- b) Dietary habits and diet intake related to nutritional problems were taken under study through questioners.

Two private and two government school out of four selected for each group were taken for study as stated below:-

### Private School

- 1) Primary school, Gaya
- 2) Urdu girl's School, Gaya
- 3) Gaya High School, Gaya
- 4) Tea Modal School, Gaya

### Government Schools

- 1) Girl's Primary School, Gaya
- 2) Primary School, Swarajpuri Road, Near Station, Gaya
- 3) Primary school Chandrawati, Gaya
- 4) Zila School, Gaya

The schedule cast students taken from Private and government school has been indicated in table 1

*Table 1*

<i>Classes</i>	<i>Private school</i>		<i>Government school</i>		<i>Total boys and girls</i>		<i>Total</i>
	<i>Boys</i>	<i>Girls</i>	<i>Boys</i>	<i>Girls</i>	<i>Boys</i>	<i>Girls</i>	
8 <sup>th</sup> ( in no)	30	30	30	30	60	60	120
%	30	30	30	30	50	50	100
9 <sup>th</sup> (in no)	35	35	35	35	70	70	140
%	35	35	35	35	50	50	100
10 <sup>th</sup> ( in no)	35	35	35	35	70	70	140
%	35	35	35	35	50	50	100
Total	100	100	100	100	200	200	400
%	25	25	25	25	50	50	100

Studies were conducted among 8<sup>th</sup>, 9<sup>th</sup>& 10<sup>th</sup> class students.

## Results

Table 2 indicate that the boys and girls going to private is significantly ( $P < 0.05$ ) higher as compared to government school. Vegetarian population is significantly ( $P < 0.05$ ) lower in both type of school going children as compared to non-vegetarian. The pulse intake upto  $\frac{1}{2}$  to 1 bowl was all most similar

among boys and girls while more than 1 bowl intake was among boys as compared to girls. The sprouted grains intake was more among girls as compared to boys in both type of school.

**Table -2**

	<i>Private school</i>		<i>Govt. school</i>		<i>Mean</i>	
Vegetarian (%)	22	21	12	19	17	20
Non-Vegetarian (%)	78	79	88	81	83	80
Pulses 1 bowl of 100g (%)	72	64	65	42	68.5	53
Pulses ½ bowl 100g (%)	32	36	29	58	30.5	47
Pulses More that 1 bowl of 100g (%)	6	1	6	1	6	1
Sprouted grains everyday (%)	15	17	24	33	19.5	25
Sprouted grains weekly (%)	15	13	24	33	19.5	23
Sprouted grains monthly (%)	8	8	12	5	10	6.5
Milk Products daily (%)	18	21	18	10	18	15.5
Milk Products weekly (%)	11	26	22	10	18	18
Milk Products monthly (%)	27	19	5	14	16	16.5
Mean	27.9	27.72	27.73	27.82		
CD					15.62	22.52
CV					25.21	36.39
SEm					4.96	7.15

Milk products being taken in private and government school going boys and girls were all most similar.

Table -3 indicates the nutritional deficiency related problem among children going to private and government school. All the nutritional problems such as headache, pain in eye, water discharge form eyes and other problems were significantly ( $P < 0.05$ ) higher among girls going to private or government school as compared to boys. The headache and water discharge were higher in government school going boys and girls as compared to private school. Other problems were higher among government school going children as compared to private school going children.

**Table -3**

	<i>Private school</i>		<i>Govt. school</i>		<i>Mean</i>	
	<i>Boys</i>	<i>Girls</i>	<i>Boys</i>	<i>Girls</i>	<i>Boys</i>	<i>Girls</i>
Uneducated (96)	15	20	25	27	20.0	23.5
Below Matriculation (96)	7.6	10.6	10	10	8.8	10.3
Above Matriculation (96)	10	10	12	15	11.0	12.5
Above Graduation (96)	2	3	3	4	2.5	3.5
Mean	8.65	10.9	12.5	14.5		
CD					9.32	7.89
CV					27.70	19.92
SEm					2.07	1.7

### Discussion

With the changing scenario the non-vegetarian population has increased in the society of Bihar State. In Bihar non-vegetarian population is about 65%

(State census report 2001). The change from vegetarian to non-vegetarian is higher which is in similarity to the state census report. The food intake in private school going children was better as compared to government school going children. It indicates the low economic status of the parent sending their children to government school. Normally the high income group children goes to private school and are well nourished. Through the sprouted grains being given daily, weekly and monthly as well as milk products to boys and girls were almost similar. High protein were being provided more than a bowl to boys as compared to girls.

The nutritional deficiency diseases among school going boys and girls indicate that diseases were significantly ( $P < 0.05$ ) higher in girls as compared to boys. This is due to less nutritional meal being provided to girls as compared to boys. This is in similarity to the report of Chandrika (2006) indicate that over 90% Indian women and adolescent girls are anemic and suffers from diseases more. Headache, pain in eyes, water discharge from eye was more in girls as compared to boys. This is due to understanding of scheduled castes parents with low education that the boys should be given more nutritious diet as compared to girls. However the scenario is changing now and both the boys and girls will be given equally nutrient diet in future time to come.

### **Conclusion**

With change in educational and economic status, the parents of schedule caste will be capable of providing sufficient nutritional food to their school going children. The government is also taking care to provide mid-day meal support to schedule caste children who are building block of the national growth. We hope that in future time to come the status of schedule caste children should change for betterment of nation.

### **Reference**

1. Amrithaveni, M. and C.W. Barikor, 2002, Nutritional status of Meghalaya pre-school children. The Indian Journal of Nutrition and Dietetics, 32:263.
2. Bhandari B., Jain A.M., Padma Karna, Asha Mathur and Sharma V.K. (1975) "Nutrition and health status of rural school boys of Udaipur district." The Indian Journal of Pediatrics, July 1975, Vol-42, No. 7, P.P. 186-193
3. Chandrika S., 2006. Childhood and adolescent anaemia in India. The Hindu Times News, Sunday, March, 5.
4. Christiaensen, L. and Alderman H. (2001) Malnutrition in Ethiopia; can Maternal Knowledge Augment The Role of Income? African Region working paper series 2001; 22. <http://www.worldbank.org/afr/wps/index.html>
5. Growri, A.R. and H.J. Sangunam (2005) Assessment of mental and motor abilities of school going children with anemia. Ind. J. Nutr. Dietet., 42: 99-105
6. State census Report 2001 (Govt. of Bihar)
7. UNICEF (2004) state of world children, 2004
8. United Nations, Nutrition of the school Aged, Administrative committee on Co-ordination Subcommittee on Nutrition (ACC/SCN), July 1998; SCN News No .16 PP 3-23.

# Acceptance of Life: A Recurrent Theme in the Major Novels of Kamala Markandaya

---

---

**Mahesh Kumar**

*Research Scholar, Department of English,  
T.M.B.U., Bhagalpur*

Although Kamala Markandaya is not a novelist to put forward all that she writes on as an organic whole, her major novels in the main are variations on a recurrent theme of 'acceptance of life'. She dives deep into the socio-economic and political condition of life of the Indians and discovers the distinctive feature of their attitude to accept life in its totality. She also tries to distinguish them from the people of other countries in respect of their attitude to accept life. That is why she has brought in characters from the West to compare and contrast the Indians' attitude to life.

Markandaya's novels treat the subtle realities of life of the common man—be he a peasant, a youth lost in the political confusion of the struggle for independence of the country, an Indian traditional house-wife, a government employee, an illiterate peasant boy with a gift of painting, an unfortunate youth wandering for a handful of rice, a tribal chief, a labourer, an Indian immigrant, a virgin or a Maharajah—which are diverting rather than disturbing the apprehension of which makes for acceptance of life.

Nectar in a Sieve (1954), Markandaya's very first novel presents a picture of a peasant's family — a microcosm of the toiling peasantry. The novel shows that it becomes increasingly difficult for the poor to keep their body and soul together. But a closer and careful study of the novel suggests that Kamala Markandaya puts more emphasis on the depiction of the Indian women's attitude to accept life than on the portrayal of their socio-economic condition in the changing phase of social life in India. Rukmani, who typifies the Indian women is the protagonist as well as the narrator of the story. She experiences the irremediable pains of change. There is no illusion in her life and she is disturbed by no desire. To Rukmani misery, sorrow and suffering are essential part of life. This elevated and philosophical vision of her life is the outcome of her attitude to accept life in its totality. Another character who exhibits the spirit of acceptance of life is the Old Granny. She fights with an unending problem of livelihood in her old age. However, she accepts her life and goes on living with her meagre income from selling vegetables.

Kamala Markandaya's second novel, *Some Inner Fury* (1955) is politically a war cry of the Indians against the Britishers. It dramatizes the lives of the Indian

people lost in the political confusion of the struggle for freedom. When Govind is put on the trial in the court with the charge of Kit's murder, Mira decides to leave Richard because he belongs to the community of the West. She could have gone with her fiancé-Richard, despite what happened in the courtroom. But in respect of her attitude to life she is deeply rooted in the native conception of life. Like Rukmani in *Nectar in a Sieve*, Mira's belief in the native conception of life gives her strength enough from within to face the miserable condition of life. She exhibits herself as capable of bearing the extreme pain of her separation from Richard. A woman of fortitude and having a deep understanding, it is she who accepts her fate after her separation from Richard. Her acceptance of fate in an unexpected situation is transmuted into acceptance of life because of which she escapes the imbalances of mind, body and spirit. Thus through the portrayal of Mira Markandaya brings to light the spirit of acceptance of life in her attitude who may opt for suffering and self torturing instead of seeking her personal happiness.

*A Silence of Desire* (1960), Markandaya's third novel shows how husband and wife embroil each other by silence at times when their real need is to unburden their hearts. The story revolves round the character of Dandekar, a clerk in modern India who centres his whole peaceful life around his adored wife Sarojini and three children. The venue is no longer the village but the city. Sarojini appears as a typical model of Indian house-wife with her hitherto unquestioned loyalty. Since Markandaya's intention is to focus on the spirit of acceptance of life on the part of her Indian characters she portrays them capable of bearing great suffering. On Sarojini's part, it is she who accepts to suffer the risks of Dandekar's dissatisfaction during her several visits to the Swamy. She also shows a quality of acceptance of life which owes itself equally to the strength of her character and the Swamy's final injunction. The Swamy had prepared his devotee for her going. Sarojini also learnt acceptance of life as part of that preparation.

*Possession* (1963), Markandaya's fourth novel deals with the contradistinctive values of life of the East and that of the West. The scene of events in the novel shifts from India to England and America and again back to India. There are two striking characters in the novel – the wilful woman Caroline Bell and Val (Valmiki), an illiterate peasant boy with a gift of painting. The novel deals with the problem of 'possession' of the Indian boy Val, by the English woman Caroline in fictional mode. But at the end of the novel, Caroline appears with her waning in power of possession and that Valmiki succeeds in extricating himself from her clutches. Valmiki's release and then his departure to wilderness may mean Caroline's defeat but it also means a spirit of acceptance of life on the part of Valmiki's attitude who ultimately accepts to live in his native land. His final return to the Swamy's cave in India after spending many years in England implies his attitude to accept life only in Indian milieu.

*A Handful of Rice* (1966), Kamala Markandaya's fifth novel is a poignant story of grim poverty and perpetually gnawing hunger. Ravi (Ravishankar), the protagonist is of the view that the economic exploitation begins when people

accept life without any protest against social and economic injustice. And hence having some ambitions for the betterment of life Ravi reacts against social injustice but Nalini, born and brought up in a traditional Indian family, is naturally simple and pleasant, modest and shy to be precise a typical model of an Indian woman. She is so simple that there is no ambition in her life. Moreover, she is fully satisfied with her predicament and accepts her life as it is given to her. Her attitude to life is deeply rooted in the traditional values of life which is a typical trait of a traditional Indian woman.

The *Coffer Dams* (1969), Markandaya's sixth novel marks the juxtaposition and interaction of the Eastern attitudes to life with that of the Western. The plot of the novel revolves round the construction of a dam by a British firm to control and channelise the turbulent river somewhere in South India. Although the Dam is being constructed with the help of the Indian tribals yet Clinton treats them indifferently. The manner in which Clinton at first refuses to accommodate the thinking of Indians about dead bodies is symbolic of his hateful attitude towards them in general. But at the same time Indians' refusal to work in the construction of the Dam unless the dead bodies of forty two men of their own race are retrieved and the due rites are carried out, is suggestive of their spirit of acceptance of life on the basis of the Indian cultural and traditional values of life.

The *Nowhere Man* (1972), Markandaya's seventh novel successfully explores the theme of acceptance of life on the part of the character of Srinivas. His attitude to life is deeply rooted in the Indian soil and culture. When he has to face an identity crisis, he does not hesitate in putting on Dhoti and Kurta as his father did while he was a lecturer and Srinival was a student of B.A. in the Indian college. What makes him heroic is his attitude to accept life based on Indian cultural values even in an adverse and hostile condition of life in a foreign country. Moreover, Shrinivas's wife, Vasantha also appears as a true Indian wife with the same spirit of acceptance of life whose attitude to life is deeply rooted in Indian soil. She also clings to her Indian view of life even while living in England.

*Two Virgins* (1973), Markandaya's eighth novel exhibits two different attitudes to life— either being too traditional or too modern on the part of the various Indian characters. There are the portrayal of Appa and Lalitha who exhibit modern attitude to life. Then there are the portrayal of Amma, Aunt Alamelu, Appa's widowed sister-in-law, Saroja and Manikkam who exhibit a spirit of acceptance of the traditional values of life. All these women characters resemble with Rukmani in *Nectar in a Sieve*, Sarojini in *A Silence of Desire* and Vasantha in *The Nowhere Man* in respect of their thoughts, feelings, sentiments and attitude to life as well.

In *The Golden Honeycomb*, again Markandaya displays the spirit of acceptance of life on the part of Indian characters making focus on their attitude to life. There are characters who are loyal to the country from the core of their heart. Mohini, her son Rabi, the Pandit, the Dewan, Manjula, Dowager Maharani show their attitude to life deeply rooted in the native soil and culture as well.

Some of these characters strive hard to make free their country from the hands of the cruel British Rulers and some of them show their assertion in the traditional Indian cultural values of life. In respect of their attitude to life these Indian characters are deeply rooted in the native conception of life. Their belief in the native conception of life gives them enough strength from within to face the tragic stroke of life. Even among some of these characters who come under the influence of the British rulers prefer to suffer rather than surrender.

In *Pleasure City* (1982), Kamala Markandaya's latest novel, the attitude to accept life on the part of the characters of the two different nations is based on mutual understanding and sympathy for one another. Markandaya is not so much involved in the depiction of the inner conflicts of her characters as she depicts their attitude to accept life in course of her discussion of the common issues that exercise their mind. Tully and Rikki accept their life not with an attitude of a master-worker relationship but with an attitude which is nourished by sincerity, honesty and sympathy for each other. Moreover, such cordial attitudes of the characters of the two different races to life are also observed during their exchanges of small presents for each other. Thus the novel is an in-depth study of nature, kind and quality of human relationship with the description of essential conditions for its proper growth and health.

Indeed, the theme of 'acceptance of life' on the part of her Indian characters, particularly Indian women whose attitude to life is deeply rooted in the Indian traditional values and spiritualism imposes on the thematic pattern in the novels of Kamala Markandaya within which lives of Indian characters appear to be working themselves out rather than worked out. It is not a 'resignation' that connotes passivity but 'acceptance' that characterizes the attitude of the Indian characters to life which they appear to adopt even in the miserable condition.

### References

1. G.S. Balarama Gupta, *Studies in Indian Fiction in English*, JIWE Publications, Gulbarga, 1987.
2. R.K. Dhawan, *Indian Women Novelists, Set-2, Vol.2*, Prestige Books, New Delhi, 1991.
3. A.K. Bhatnagar, *Kamala Markandaya: A Thematic Study*, Sarup & Sons, New Delhi, 1995.

# Effects of Problems in Speaking English Language by Students at Graduate Level in India

---

---

**Dr. Anupama Singh**

*Associate Professor (English), University College, Kurukshetra University*

---

---

**Girija Shankar**

*Sr. Research Officer, IGNOU*

English symbolizes in Indian minds, better education, better culture and higher intellect. In present times, English is the most preferred language. The Indians and the Indian English language press uses many words derived from Indian language. Indian accent is sometimes difficult for non-Indians to understand. Actually English has co-existed in the Indian sub-continent alongside thousands of local languages. It has remained at the heart of the Indian society. According to recent surveys, approximately 4% of the Indian population use English. That figure might seem insignificant, but out of the total population it represents 35 million speakers. It means India is the largest English speaking community outside USA and the UK. As India celebrates its 60th year of independence from British rule, English continues to expand its empire. English is virtually the mother-tongue for many educated South Asian, but for the vast majority, it remains second language. So English, spoken by such speakers is heavily influenced by speech patterns of their ethnic language.

Language learning is a natural process for the natives. The approach to this learning process is called the 'behaviouristic approach'. But for the students of other languages, deliberate efforts are required to learn a foreign language which requires a 'mentalistic approach'. The students of rural and semi-urban areas in India face such problems because English is not their mother-tongue. It is neither instinctive nor intuitive. Language acquisition seems to be a process of both of analogy and application, nature and nurture.

People from different provinces in India speak different languages. Indians have varied forms of social etiquette, religious-philosophic customs, socio-cultural patterns and socio-linguistic parameters. A multiplicity of language patterns is the hallmark of socio-linguistic reality in India. Language behaviours varies from Socio-geographic group to group, as does the way which languages are officially recognized and used for communication purposes. English is being studied /taught in greater or smaller degree in schools, colleges and the universities all over the country.

Teaching of English suffers from the general malaise that afflicts the educational system of India. It has been dawned upon the country's educational policy-makers that if English is at all learnt and taught then it should be learnt and taught well. This implies the learning and teaching of English in terms of the well-known four basic skills of language learning, viz., speaking listening, reading and writing. Listening and speaking are the two neglected skills in classrooms in India. We cannot expect a uniform standard of pronunciation for a second language in such a vast country, where even the mother tongue is spoken differently by different groups of the people belonging to the same language community. In learning to speak English, the mother tongue generally interferes with its pronunciation. The learners as well as the teachers speak English with regional language habits. Since English is not a medium of instructions in

Indian students cannot practice and perfect their English. Even during the English periods most teachers teach English without giving the students proper practice in speech because they are not properly equipped enough to practice it. The result is that after learning /teaching English for many years at school and college, most people cannot speak and write the language with intelligible accuracy.

To put it in simple words, the barriers are often caused by students' respective mother tongues and their inability to communicate with each other in English. Yes, there is a short period of time, when language and communication can pose problems. Students who wish to live in a group will find ways to overcome barriers. Those who wish to alienate themselves will look for loopholes such as language barriers to isolate themselves. The problem is not with the language but with an individual's ability to surpass it.

Maximizing the learning results of our English students, certain issues have often focused on issues including language teaching, learning theories, teaching materials, teaching approaches and methodologies, syllabus design, etc. Though research is being undertaken everyday, much of it has been powerfully constrained by Western cultural assumptions. Little research has been directed to the topic of how the local educational/teaching environment has influenced students' learning when the students are not English majors, but studying English as non-majors due to educational requirements and professional needs. This fact may at least lead to the result that local English learning problems remain unsolved for long periods of time. Through survey data analysis, students' perspectives about English learning and the fears of learning English that may have grown out of previous experiences are documented. It is the authors' belief that a better understanding of language learners can have a beneficial effect on the process of attempting to help language learners in learning English as a foreign language. Unfortunately, while communicating orally in English, the learners usually encounter varied linguistic problems that evidently hamper their communication. The goal of the present day is to find out the major barriers of communication in English faced by the students at the tertiary level. And also tends to find out some effective and necessary solutions of the problems, so that, both the teachers and the students can be benefited in their objectives. The data for the present study were obtained through some

audio texts and oral presentations. The findings of the study show that unfamiliarity with the sound system of English, inadequate range of vocabulary, inability to form certain grammatical constructions Listening and speaking, two of the four skills of English language, have been considered as a crucial problem for the tertiary level students. They also often find English word formation and sentence construction quite problematic. Moreover, the learners suffer problems in learning vocabulary items and to convey meanings through and/or receive meanings of words, phrases, clauses, sentences/utterances and so forth. Such problems obviously seriously hamper the learners' oral as well as written communication. Therefore, it seems reasonable to take account of and identify what major linguistic barriers the students encounter in oral and written communication and what measures can be taken to overcome those barriers. Only those who have actually taught English in India can visualize the scene of fifty, eighty, even more than hundreds students learning together in a single classroom. English teaching/learning theories, approaches or methodologies established in the past do not often take the reality of large class sizes into consideration. Little credit can be given to their practicality in terms of actual application in such classroom settings. For example, it seems to be the case that whenever big class size is encountered, a much more common language learning environment is missing and local language environment and dialect is seen most, we are also hopeless in attempting to adopt the newest established theory, approach or methodology. This example is strongly related to both social/cultural/economic differences as well as local teaching/learning problems that appear to be insoluble. If the local situation remains unchanged, even after years of local researchers and practitioners advocating of sound teaching and learning theories and methodologies that seem so well established in the West, there must be some facts that require re examination at a more fundamental level than previously thought. The inescapable answer seems to be that current theories are powerfully constrained by Western cultural premises.

Indeed, when discussing any issue about language teaching and learning, cultural differences should contribute tremendously to the thrust of the discussion. Issues may include the differences of educational systems, learning conditions, teaching and learning styles, learning differences between Western and Eastern cultures and differences in needs for language use in the job market.

Those who have had the experience of living or being educated for a period of time in the West may have noticed that students are not afraid of asking questions or using the target language even when producing errors. In Karnataka, most students remain silent even when they want to ask questions and participate. These students are very conscious of making errors in front of their classmates.

India has a Confucian culture, which seeks compromise between people. When it is applied to language learning, it is obvious that students are reluctant to air their views loudly for fear of losing face or offending others. In addition, there are some English sayings, which discourage oral communication in class. The following are some examples: Silence is gold; it's the noisy bird that is easily shot dead; a real man should be good at thinking, but weak at speaking;

don't speak out unless spoken to; keep your mouth shut but your eyes open; keep silent unless you can burst on the scene like a bombshell.

It is found in research with some students responding that they hate English and are afraid of it. Where did these fears arise? Part of that experience included physical punishment dished out by teachers and insulting comments from classmates or friends, and maybe even parents, due to poor performance on examinations. While the situation has been improved somewhat, physical punishment due to poor performance in English examinations is still being practised in some institutions. Another possible source of fear, also related to cultural, was found that even adults who studied English, without grade pressure, did not dare speak English in front of other people due to the fear of making errors. Additionally, fear of making errors and losing face was among seven factors that influenced university students' willingness in participating in classroom oral communication.

### References

- P.48. 'Post colonial Literatures in English - History Language Theory' by Dennis Walder, Blackwell Publishing.
- Edward M. Anthony's 'Approach, Method & Technique English as a Second Language' by Allen & Campbell. T.M.H. Edition.
- Collins co builds English Dictionary for Advanced Learners Published by Harper Collins 3rd edition 2001.
- P.6. 'Teaching of English As a second language by J.A. Bright and G.P. McGregor', Published by English Language Books Society and Longman Group Limited.
- Collins co builds English Dictionary for Advanced Learners Published by Harper Collins 3rd edition 2001.
- P.6. 'Teaching of English As a second language by J.A. Bright and G.P. McGregor', Published by English Language Books Society and Longman Group Limited.
- Balasubramanian, Chandrika (2009), *Register Variation in Indian English*, John Benjamins Publishing, ISBN 90-272-2311-4
- Ball, Martin J.; Muller, Nicole (2014), *Phonetics for Communication Disorders*, Routledge, pp. 289-, ISBN 978-1-317-77795-3
- Baumgardner, Robert Jackson (editor) (1996), *South Asian English: Structure, Use, and Users*, University of Illinois Press, ISBN 978-0-252-06493-7
- Braj B. Kachru (1983). *The Indianisation of English: the English language in India*. Oxford University Press. ISBN 0-19-561353-8.
- Gargesh, Ravinder (17 February 2009), "South Asian Englishes", in Braj Kachru et al, *The Handbook of World Englishes*, John Wiley & Sons, pp. 90-, ISBN 978-1-4051-8831-9
- Hickey, Raymond (2004), "South Asian English", *Legacies of Colonial English: Studies in Transported Dialects*, Cambridge University Press, pp. 536-, ISBN 978-0-521-83020-1
- Lange, Claudia (2012), *The Syntax of Spoken Indian English*, John Benjamins Publishing, ISBN 90-272-4905-9
- Mehrotra, Raja Ram (1998), *Indian English: Texts and Interpretation*, John Benjamins Publishing, ISBN 90-272-4716-1.

# Expanding the vocabulary of regional high school students using self-study techniques

---

---

**Brij Mohan Balai**

*Assistant Professor, Department of English, Government College,  
Manoharthana, District- Jhalawar, Rajasthan*

## Abstract

Vocabulary learning is one of the main problems of foreign language learners and second language learners. English as a Second Language and English as a Foreign Language programs were neglected or considered a secondary emphasis. Many researchers argue that vocabulary is not given much importance in the language classroom. Learning a language mainly involves learning its grammar, vocabulary and how to use them appropriately. Vocabulary is an important part of language acquisition. Hill, (2005: 1) said that “vocabulary has long been considered an important element in language learning. It can be considered the “building block of communication”. Wilkins (1974:111) states: “Without grammar very little can be communicated, without vocabulary nothing can be communicated”. All the above statements indicate that words are identified as one of the basic components of language and essential for any form of communication, whether written or spoken.

**Keywords:** Vocabulary, language and grammar

## Introduction

There are two different schools of thought about whether vocabulary should be taught at all. One supports the idea that vocabulary should be taught to students, and the other does not. However, scholars strongly support the necessity of teaching and learning L2 vocabulary for the following reasons:

- Students only know a limited number of words (Laufer, 2000).
- Students have limited knowledge of the senses of secondary meaning (Schmitt, 1998).
- Learners use L1 translations to understand the meaning of L2 words (Jiang, 2004).
- Students have limited awareness of the different derived forms of the word (Schmitt and Zimmerman 2000: 145-171).

Therefore, learning and acquiring vocabulary should not be abandoned, more so in the case of regional medium (Telugu medium) students. The need to

acquire vocabulary for them cannot be overemphasized. The classroom is an immediately available resource for them to acquire vocabulary. Thus, practicing self-management strategies is much more important for regional media students. Vocabulary learning strategies made students more independent and helped them learn vocabulary effectively.

### Learning Strategies

In order to develop regional secondary students' vocabulary, language teachers need to facilitate self- or learner-centered strategies in the language classroom. In this regard, Waring (2002:25) argues that teaching a word does not mean that students have learned it, and the fact that students have completed a unit should not mean that they have mastered all the words in it. Consequently, in addition to seeking to maximize the effectiveness of instruction, there should be equal or even greater control over the nature of the learning process that students undergo. Since students are the most responsible bodies that enrich their verbal power, it is essential to emphasize the importance of learning strategies.

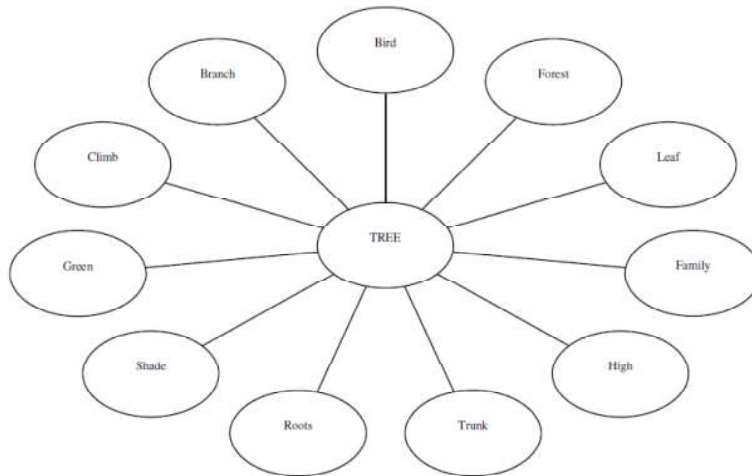
### Network Of Words

Also known as word web, word map, mind map, word association, the vocabulary network principle explains that in addition to sameness, oppositeness, and inclusion of word meanings, there is a complex and intricate connection or network between groups of words. McCarthy (1990) writes that the semantic relationship in terms of synonymy and antonymy tends to oversimplify the complex nature of the mental lexicon. According to Schmitt (2000), words are not stored in the mind in isolation, but organized and systematic. This organization is aptly explained as an association or network. Using the vocabulary network technique, Harmer (1990:165) suggests that a word item such as "HOUSE" is chosen and placed in a box in the middle of a sheet of paper, and students are asked to make a network of arrows connecting it to many possible words that have in any way semantic association. See the more complex network for the word 'BEDROOM' in Gairns and Redman (1986: 97). Below is a simple example of a word web (Ur 1996: 69). Students only know a limited number of words (Laufer, 2000).

- Students have limited knowledge of the senses of secondary meaning (Schmitt, 1998).
- Learners use L1 translations in understanding the meaning of L2 words (Jiang, 2004).
- Students have limited awareness of the different derived forms of the word (Schmitt and Zimmerman 2000: 145-171).

Therefore, learning and acquiring vocabulary should not be abandoned, more so in the case of regional medium (Telugu medium) students. The necessity

of acquiring vocabulary for them cannot be emphasized. For them, the classroom is an immediately available resource for acquiring vocabulary. So practicing self-directing strategies is much more important for regional media students. Vocabulary learning strategies made students more independent and helped them learn vocabulary effectively.



*Fig. Word Network*

The vocabulary community approach is believed to feature as a convincing framework of organizing lexical items.

#### Guessing from Context

Guessing phrase that means of a phrase is any other necessary method in order to enhance the regional medium students' vocabulary. Beglar and Hunt (2005) write that the capacity of guessing which means from context is an necessary approach improving vocabulary acquisition and oftentimes used with the aid of profitable language learner. Some writers, for occasion Nation (2001), underlined though guessing is a key vocabulary gaining knowledge of strategy, virtually it can be a problematic technique for a variety of motives : absence of adequate clues, restrained publicity of the phrase throughout the text, stage of textual content difficulty, familiarity of the topic, learners' history know-how and pastime to mention some. Due to these limitations, students such as Coady and Huckin (1997), Nation (2001), Schmitt (2000), Carter and McCarthy (1988) advise extra specific impartial phrase getting to know strategy, the use of dictionary. Research additionally indicates that rookies who employed dictionary collectively with guessing from context now not solely realized greater phrases at once however additionally recalled higher after numerous weeks in contrast to these who used inference method (Laufer and Hadar 1997, Laufer and Hill 2000).

## Dictionary Use And Vocabulary Learning

Use of dictionary is the 2<sup>nd</sup> important self-directive getting to know approach freshmen go for discovering, that means of new words. Research suggests definition and examples about the real use of a phrase in a dictionary allow beginners to effectively use new phrases in their very own sentence meaningfully. A phrase from meaning, a true dictionary needless to say presents a lot of data about a phrase along with spelling, pronunciation, synonymy, antonymy, collocation, etc. Scholars additionally recommend, Laufer and Hadar (1997) in Gu (2003), Beglar and Hunt (2005), Gairns and Redman (1986), that monolingual dictionaries are greater beneficial than bilingual dictionaries. Therefore, college students have to be skilled how to use a monolingual dictionary effectively. To maintain the students' float of concentration, keep away from consumes time and use dictionaries effectively. The language instructor has to educate a few pointers to the students.

- They are: Using an alphabet list;
- Removing affixes, if necessary, to become aware of the base structure of the word;
- Using the context to figure out which is needed; and
- Using the context to determine which that means is appropriate.

## Word Cards

Apart from the techniques stated above, phrase card method is a brilliant impact on getting to know vocabulary. Some of the benefits of the use of phrase playing cards are:

- They are some distance extra transportable than dictionaries, textbooks, or notebooks
- They are greater long lasting than sheets of paper
- They are beautiful in one of a kind colours
- They are made by using beginners and the regular assessment of the playing cards lead to phrase memory.

A suited introduction to the approach of card making is essential in order to make the college students to virtually recognize the a range of steps. Before going to make phrase playing cards the instructor have to gave clear directions and introduce fashions of distinctive vibrant playing cards with dimension of 5x4. The pointers are accompanied to put together phrase playing cards are:

## Steps

- Write a word, its pronunciation and its section of speech on one facet of the card.
- On the 2nd aspect of the card, write which means in their mother-tongue as properly as in English
- On the equal (second) side, write the utilization of the word. Zimmerman (2009: 125)
- Note to the students: Do now not write too a lot like collocation, extraordinary pattern sentences, and idioms or phrasal verbs.

Sample Phrase Card:

**Side 1**

trust /trast/ noun, verb

**Side 2**

నమ్మకము, విశ్వాసము  
**noun** believe that somebody or something is good, sincere, and honest. *A partnership is based on trust.*  
**verb** I trust in God.

**Conclusion**

In conclusion, it can be stated that the vocabulary acquired through knowledge of the above techniques is the most beneficial and appropriate for students of regional media. By using this kind of techniques in a perfect way, it would embellish the vocabulary of the students and help the college students in their supplementary studies. In addition, it relies on the enjoyable exercise of college students in the school room and outside. Here, the language instructor acts as a facilitator and guide, giving instructions and clearing students' doubts. Without the appropriate guidance, education and encouragement in the category you may wish for, you will no longer be successful. The language coach clearly has a higher role in the process of expanding students' vocabulary.

**References**

- [1] Beglar, D. and Hunt, A. (2005). A Framework for Developing EFL Reading Vocabulary: unpublished article, available at <http://ntlrc.Hawaii.Edu/rfl/april2005/hunt/hunt/html>
- [2] Brown, D.H. (1994). Principles of Language Learning and Teaching. London: Prentice Hall reagents.
- [3] Carter, R. and McCarthy, M. (1988). Vocabulary and Language Teaching. United Kingdom: Longman Group.
- [4] Coady, J. and Huckin T. (1997). Second Language Vocabulary Acquisition. Cambridge: Cambridge university press.
- [5] Judd, E. L. 1978. Vocabulary teaching and TESOL: a need for re-evaluation of existing assumptions. TESOL Quarterly 12, 1: 71-76.
- [6] Laufer, B. & Hadar, L. (1997). Assessing the effectiveness of monolingual, bilingual and "lingualized" dictionaries in the comprehension and production of new words. Modern Language Journal, 16 (1), 189-196.
- [7] Lewis, M. (1993). The Lexical Approach. Language Teaching Publications.
- [8] Ellis, R. (1994) The Study of Second Language Acquisition. Oxford: Oxford University Press.
- [9] McCarthy, M (1990) Vocabulary. Oxford: oxford University Press.
- [10] Schmitt, N. (2000) Vocabulary in Language Teaching. Cambridge: Cambridge University press.

- [11] Twaddell, F. (1973) Vocabulary Expansion in the TESOL Classroom. *TESOL Quarterly*, 7 (1) pp 61-79).
- [12] Walker, B.J. (1988). *Diagnostic Teaching of Reading: Techniques for Instructions and Assessment*. N.Y. Merrill Publishing Company.
- [13] Ur, P. (1996). *A Course in Language Teaching: Practice and Theory*. Cambridge: Cambridge University Press.
- [14] Nation, I.S.P. (2001). *Learning Vocabulary in Another Language*. Cambridge University Press, Cambridge.
- [15] Waring, R. (1999). Tasks for assessing second language receptive and productive vocabulary. PhD Thesis [Online]. Available: [http://www1.harenet.ne.jp/\\_waring/papers/phd/title.html](http://www1.harenet.ne.jp/_waring/papers/phd/title.html) [2000, Nov 27].
- [16] Wilkins, D.A. (1974). *Reading in The Language Classroom*. London: Macmillan Publishers Ltd.

# Problems Faced by Students at Graduate Level Study in Hindi Speaking States in India through Open & Distance Learning System

---

---

**Naveen Singh**

*Research Scholar, Department of English,  
T.M.B.U., Bhagalpur*

Distance education or distance learning is a mode of delivering education and instruction, often on an individual basis, to students who are not physically present in a traditional setting such as a classroom. Distance learning provides "access to learning when the source of information and the learners are separated by time and distance, or both."

The open and distance education system is a crucial vehicle in the sustained development of a knowledge society. Its potential for flexible education delivery, scope for self and life-long learning and cost effectiveness make it instrumental in meeting the needs of individual and communities at this juncture - in the rapid transition being made from the industrial to the information age. In order to meet challenges of access and equity to higher education for large segments of the population, and in particular, the disadvantaged groups such as those living in remote and rural areas including working people, housewives and other adults who wish to upgrade or acquire knowledge through studies in various fields, academic institutions and government sector were looking for an alternative system of education that can provide access to learning of information as well as a degree for recognition like traditional system of education.

However, as India prepares to face the knowledge challenges of the 21<sup>st</sup> century, higher education presents a rather dismal picture. According to the Ministry of Human Resource Development, India, only about 10% of the population in the relevant age-group is enrolled in higher education, and a mere 5% graduate with degrees. With the rapid growth of the service, knowledge and associated sectors in the economy, it is imperative that the populace is equipped to contribute to and benefit from these developments. This requires a radical overhaul of the higher education system, with regard to access, enrolment and most importantly, quality. Failure to address this need and foster more inclusive growth will adversely affect India's future economic prospects and the welfare of its citizens.

The biggest challenge faced in higher education, therefore, is the provision of quality higher education to the greatest number, at the lowest possible cost

to the learner. And this is where ICT enabled open and distance education has significant advantages. Using

ICT effectively for higher education can bridge the distance between the learner, instructor and the market by transcending barriers of space and time. Seamless access, flexible schedules, quality content and inclusive delivery mechanisms have enormous potential to increase the scale of access and, in that process, bring down the cost of higher education for the individual learner.

The hallmark of pedagogy in the ODE system is the creation of self-instructional material (SIM), transmissible through several modes. However, the pedagogical process in the Indian ODE system is fraught with problems of poor quality and low learnability. Moreover, there remains a heavy reliance on the textual mode, and while ICT infrastructure exists (and is more extensive than it appears), its utilization and management for pedagogical (and administrative) purposes leaves much to be desired. The limited nature of pedagogical delivery through the textual mode also implies excessive reliance on face-to-face and temporal interactivity.

The Indira Gandhi National Open University was established in 1985 by an act of Parliament (IGNOU Act, 1985) as the first national university to impart open and distance education and also the nodal agency to coordinate, encourage and set standards for the same. Its degrees are recognized to be at par with other universities by the UGC (as of 1992). In addition, IGNOU also allocates and disburses funds for open universities and distance education systems in India through the Distance Education Council (DEC). Authority to do so has been granted to IGNOU under Clause 16 and Statute 28 of the IGNOU Act 1985.

Presently, there are 14 open universities and about 130 distance education institutions (DEIs) of conventional universities in operation. The entire system is fraught with serious disparities – between open universities and DEIs, in the quality of different institutions and even in different programs of the same institutions.

In addition, the national open university (IGNOU) is simultaneously responsible for arbitration of standards and allocation/disbursement of funds.

However, different survey reports reveal that the number of students completing higher education with adequate quality is not satisfactory. To improve the quality Govt. has changed education policy time to time. However, simultaneous improvement in quality and quantity will not be possible unless we consider the following real problems before implementing any education policy/ technique.

- 1) Lack of knowledge in using technology: With the progress of time technology for communication system is being developed and ODL system is adopting this. However, students especially from rural area are enrolling in ODL system without proper training of the tools to be used for successful program. These students, due to lack of technology skills, mostly become unsuccessful or drop outs.

- 2) Vast curriculum area: Online courses are normally not restricted to an upper size. As a result traditional teaching method cannot be applied here. Both teachers and students face problems.
- 3) Lack of sufficient infrastructure: Distance learning program is quite new and it does not have sufficient infrastructure and learning environment like traditional system. For this reason instructors are facing problems in organizing and planning distance learning programmes, especially for new courses.
- 4) Scarcity of counsellors near study centre: Although care has been taken in opening study centres near the door steps of learners, the availability of skilled and knowledgeable counselors near the study centre is not checked in most cases. As a result study centres as well as the learners are facing difficulties.
- 5) Hidden Cost: For online learning, students need training to use technology. They must have their own or rented computer and internet connection. Again if they want hard copy of any study materials downloaded from web site extra cost has to be paid. To attend live video program they have to do proper time management. When contact programs are not arranged nearby or become obscure then learners look for private coaching, paying extra money.
- 6) Unavailability of desired course in nearby study centre: There is a difficulty to run practical based subjects in Open Education as it needs permanent Laboratory set up. Again there are some courses like nursing, clinical which are not available through distance learning. Thus distance learning is not suited for all subjects.
- 7) Lack of oral communication skill: Distance learners do not get opportunity to interact with their classmates and with the professors like traditional system. Hence their oral communication and presentation skills do not develop properly.

In conclusion, it can be said that the Distance Learning system of education is being more popular around the world and in India day by day. Central Open University of India IGNOU by name is securing top position enrolling 7000 students per year from 36 countries around the world. Use of updated communication technology is making the methodology more attractive to the learners.

In spite of its remarkable success, one can still find some constraints in this learning system.

### References

Infrastructure: S&T Education", *Science and Technology in India* edited by R.K. Suri and Kalapana Rajaram (2008), New Delhi: Spectrum, ISBN 81-7930-294-6.

*India 2009: A Reference Annual (53rd edition)*, New Delhi: Additional Director General (ADG), Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, ISBN 978-81-230-1557-6.

- Prabhu, Joseph (2006), "Educational Institutions and Philosophies, Traditional and Modern", *Encyclopedia of India (vol. 2)* edited by Stanley Wolpert, 23–28, Thomson Gale: ISBN 0-684-31351-0.
- Raman, S.A. (2006). "Women's Education", *Encyclopedia of India (vol. 4)*, edited by Stanley Wolpert, 235–239, Thomson Gale: ISBN 0-684-31353-7.
- Setty, E.D. and Ross, E.L. (1987), "A Case Study in Applied Education in Rural India", *Community Development Journal*, 22 (2): 120–129, Oxford University Press.
- Sripati, V. and Thiruvengadam, A.K. (2004), "India: Constitutional Amendment Making The Right to Education a Fundamental Right", *International Journal of Constitutional Law*, 2 (1): 148–158, Oxford University Press.
- Vrat, Prem (2006), "Indian Institutes of Technology", *Encyclopedia of India (vol. 2)* edited by Stanley Wolpert, 229–231, Thomson Gale: ISBN 0-684-31351-0.
- Holmberg, Börje (2005), The evolution, principles and practices of distance education Studien und Berichte der Arbeitsstel Fernstudienforschung der Carl von Ossietzky Universität Oldenburg [ASF] (in German) 11. Bibliotheks-und Informationssystem der Universität Oldenburg. p.13. Retrieved 23 January 2011. ISBN 3-8142-0933-8
- Honeyman, M; Miller, G (December 1993). "Agriculture distance education: A valid alternative for higher education?". Proceedings of the 20th Annual National Agricultural Education Research Meeting: 67–73.

# Jagir's System under the Nizam: A Study

---

---

**Dr. C B Devaraju**

*HOD of History, Akka Mahadevi Mahila Mahavidyalaya, Bidar*

Hyderabad like some other states in India was feudal in its origin. The founder of the kingdom of Hyderabad, Asaf Jah was a feudal chief of the Moughals. The system of administration followed by Asaf Jah and his successors was based on the Moghal pattern. The circumstances under which different types of non khals land. Like pargahs, Jamiats Jagirs and Samsthans are mentioned by J.B.D. Gribble in the following extract.

“Asaf Jah had brought with him, from Malwa, a number of followers Muslims and Hindus who were attached to his person and fortunes. To the mohammedon nobler, he granted Jagirs or estated on military tenure and employed them as his generals. The Hindus whom Asaf Jah brought withhim he employed principally in administrative work in the departments or revenue and finale them also he granted Jagirs and remuneration for military purposes. Come to be considered as hereditary in the different families. Scattered over the country were a large number of indigenou Rajahs and Chiefs who held most of the sandas or grants from farmer kings. Many of which had been confirmed subsequently by the Delhi emperors. The Rajashs were all recognized and confirmed in their possessions on payment of tribute, being allowed to exercise a king of semi-independent jurisdiction within the limites of their estate.

The total area covered by Jagirs was about one third of the state area. It measured about 25,000 Sq. miles and comprised nearly 6500 viages. The Jagirs although hereditary in character. Lapsed at the death of the Jagirdar, the Nizams used to confirms the title to the successor by a fresh “Firman” civil court had no jurisdiction over Jagir areas. The Jagirs of Hyderabad differed from the Azmindaries of other states, in that the Jagirdars had no proprietary rights. Where as the Zamindars were considered to be the proprietors of the land they held.

The Hyderabad regulation integrated the administration of Jagir areas with that of Diwani. The following are the varieties of Non-Khalsa land prior to 1949. Sarfe-Khas was the most important of the non Khalsa lands. It covered an area of 8000 Sq. miles. The Sarf-E-Khas was the property of the Nizam, the revenue of which was credited to his privy purse. The muslim conquerors used to levy annually a fixed amount as tribute on conquered rulers and chiefs.

This tribute was termed as "PeshKash" there were only three "PeshKash" quinquars in the stte. The Rajash of wanar parti, Jatpole. Gopalpet, Palvaneha and the Pan Maktas were also spoken as PeshKas Guzaras. A free grant of one are more villages to a person in return for a noted service rendered to the state was known as Jagir.

#### **Jagir's :-**

Jagirs were free grans of one or more villages as a reward for conspicuous services rendered to maintain the state and dignity of the granters. There were six Kings of Jagirs prevailing in the state.

#### **A) Paigha or Jamait Jagirs :-**

They were assigned to Abdul Khair Khan for the maintenance of troupes known as his highness house hold troops, by the Nizam Ali Akbar. Paighah means stables. These Jagirs covered an area of over 4000 Sq. miles, later the assignees enjoyed the benefit without the stipulated military service.

#### **B) Al tungha Jagirs :-**

These were permanent peripetual and hereditary grants and the rights or interest conveyed were not transfer able by sale, gift bequesf.

#### **C) Zet Jagirs :-**

There were grants of large area of land for maintenance of grantees without any stipulation of service.

#### **D) Tankha Jagirs :-**

These were grants of land made to meat of salaries due to the grantees for services rendered. Such Jagirs were rendeemable and the policy was later adopted to redeem such Jagirs.

#### **E) Mashrooti Jagirs :-**

These were granted for the performance of some definite service of religious, civic or military and were continued only so long as the condition of grant were fulfilled.

#### **F) Madad Mash Jagir :-**

They were granted either as the sole means of maintenance for the done, who may by this order of Mashrooti grants, as supplements to his other means of livelihood.

Jagirs in Hydrabad covered an area of 25,600 Sq. Miles or 30 percent of the total area dn comprised 6,355 villages or 29.5 percent of the villages of the state. It was only the peshkas or samsthans that were contiguous blocks and all other types assigned lands were so weldely dispresed that there was not a village without some kind or other lands or othe of assigned lands. The

annual income of a Jagir ranged from 500/- of small makta to Rs. 25,00,000/- of a great paigrh. The main sources of income for Jagirs were land excise revenues. Most of the large Jagirs maintained their own ministers, administration machineries in all Jagirs. The collection of revenue was the sole responsibility of the Jagirdars.

**Refernece :**

- 1) George P.T - Agrarian Reforms in India with special reference to the Hyderabad State – Mysore University 1957.
- 2) B.K. Narayan – The Economic Development of Hyderabad State, Myosre Univrsity, 1958.
- 3) Suryanatha U Kamath : Karnataka State Gazetteer, Bidar District.
- 4) Suryanatha U Kamath : Karnataka State Gazetteer, Kalburgi District..

# Contribution of Gandhi in Bihar

---

---

Payal Priya

*UGC-NET (DEC. 2019), History*

## Abstract:

Gandhi's Role in the National Movement or Methods adopted by Mahatma Gandhi to make the Indian National Movement a mass movement. Gandhi's role in the National Movement of India was undoubtedly the most remarkable. From 1919 to 1947 A.D. The father of the Nation. Mahatma Gandhi was one of these great men who dedicated their whole life to the service of the mankind. In this review paper we studied about Role of Mahatma Gandhi in Indian National Movement and major movement for Independence by Mahatma Gandhi.

## Introduction

Mahatma Gandhi was born on October 2, 1869 A.D. in a trading family of Porbander, a small town in Kathiawara. His full name was Mohan Das Karam Chand Gandhi and his father was the Diwan of Rajkot.

He went off to South Africa after marriage and worked as a barrister there for twenty years. In South Africa, he had his first brush with apartheid. Once while he was traveling in a train, he was thrown out of the first class compartment despite having a ticket. This made him swear that he would do his best to erase apartheid from the face of his world. He went back to India only to find that his own country was being ruled by the British and his fellow citizens were being treated harshly by the British.

Role of Mahatma Gandhi in Freedom Struggle Like other great men in history, Gandhi took his time to grow and develop his techniques to ensure that his actions made an impact. His faith in different religions was commendable. He listened to the teachings of Christianity with the same belief and faith he read the Hindu scriptures with.

Gandhi arrived in India on 9 January, 1915. Initially, he spent a year visiting various places in India to have an understanding of the situation. His political engagement started in the 1917-18 period when he took up the issues of Champaran indigo farmers, the Ahmedabad textile workers and the Kheda peasants.

These struggles witnessed his specific method of agitation, known as Satyagraha, which had earlier developed in the South African context and through which he was partially successful in achieving his goals.

In Champaran, which was in North Bihar, the indigo planters were forcing the peasants to grow indigo even when it was not profitable for the peasants to do so. In fact, the peasants were suffering losses by cultivating indigo in their most fertile lands. Gandhi was invited by the peasants to lead their struggle against the indigo planters who enjoyed the support of the colonial state.

Gandhi went there to lead the struggle of the peasants and was successful to get them relief.

In Kheda district of Gujarat, most of the crops were damaged due to excessive rain. The peasants of Kheda demanded from the government that they should be allowed not to pay the revenue for that particular year. The government, however, refused. Gandhi started a Satyagraha movement on 22 March, 1918 and advised the peasants not to pay revenue. Many peasants participated in the movement. But the government refused to budge.

It was a test for the new method of agitation which Gandhi was trying in India. The agitation continued for some time. But Gandhi realised that it was not possible for the peasants to continue for long. Meanwhile, the government granted some concession to the poorer peasants.

The movement was then withdrawn. In Ahmedabad, Gandhi led the struggle of the workers for an increase in the wages due to rising prices during the War. After a protracted struggle, the workers were able to get 35% raise in their wages.

The struggles demonstrated to the Indian people Gandhi's method of political struggle and his principles of non-violent non-cooperation. They, on the other hand, helped Gandhi to familiarise himself with the Indian situation and understand the strengths and weaknesses of the Indian people. They also attracted many political workers who were to prove valuable in the future struggles.

Gandhi's vision of a free India based on religious pluralism, however, was challenged in the early 1940s by a new Muslim nationalism which was demanding a separate Muslim homeland carved out of India. Eventually, in August 1947, Britain granted independence, but the British Indian Empire was partitioned into two dominions, a Hindu-majority India and Muslim Pakistan. As many displaced Hindus, Muslims, and Sikhs made their way to their new lands, religious violence broke out, especially in the Punjab and Bengal. Eschewing the official celebration of independence in Delhi, Gandhi visited the affected areas, attempting to provide solace. In the months following, he undertook several fasts unto death to promote religious harmony. The last of these, undertaken on 12 January 1948 at age 78 also had the indirect goal of pressuring India to pay out some cash assets owed to Pakistan. Some Indians thought Gandhi was too accommodating.

Nathuram Godse, a Hindu nationalist, assassinated Gandhi on 30 January 1948 by firing three bullets into his chest at point-blank range.

## Major Movement For Freedom India By Mahatma Gandhi

His services rendered to the cause of India's freedom are unforgettable, which can be enumerated below.

### **A. The Satyagrah Movement**

One of his major achievements in 1918 were the Champaran and Kheda agitations – a movement against British landlords. The farmers and peasantry were forced to grow and cultivate Indigo, and were even to forced to sell them at fixed prices. Finally, these farmers pledged to Mahatma Gandhi and non-violent protest took place. Wherein Gandhiji won the battle.

Kheda, in the year 1918 was hit by floods and farmers wanted relief from tax. Using non-cooperation as his main weapon Gandhiji used it in pledging the farmers for non- payment of taxes. Gandhiji got much public support and finally in May 1918, Government gave the provisions related to tax payment.

### **B. Khilafat Movement:**

Gandhiji in the year 1919 approached Muslims, as he found the position of Congress was quite weak and unstable. Khilafat Movement is all about the worldwide protest against the status of Caliph by Muslims. Finally Mahatma Gandhi had an All India Muslim Conference, and became the main person for the event. This movement supported Muslims to a great extent and the success of this movement made him the national leader and facilitated his strong position in Congress party. Khilafat movement collapsed badly in 1922 and throughout their journey Gandhiji fought against communalism, but the gap between Hindus and Muslims widened.

### **C. Non-cooperation Movement**

One of the first series of non violent protests nationwide was the non cooperation movement started by Mahatma Gandhi. This movement officially started the Gandhian era in India. In this freedom struggle, the non cooperation movement was basically aimed at making the Indians aware of the fact that the British government can be opposed and if done actively, it will keep a check on them. Thus, educational institutions were boycotted, foreign goods were boycotted, and people let go off their nominated seats in government institutions. Though the movement failed, Indians awakened to the concept of going against the British.

### **D. Salt Satyagraha Movement - Dandi march**

Salt March was an active movement carried out in the year 1930. Gandhiji started focussing on expanding initiatives against untouchability, alcoholism and removal of all bad habits. Salt march mainly known as Salt Satyagraha which began with Dandi march in the year 1930. This movement was an essential part of Indian Independence movement and non-violent resistance against tax. Gandhiji led this Dandi march with lot of followers behind him.

On the 24th day, he vowed to produce more salt without paying any tax and soon he broke the law for salt, which sparked outrage among Britishers. After this, Gandhiji was arrested and this news gained a lot of attention in the press.

Gandhi's each and every act was based on his principles and his path of non-violence.

### **E. Quit India Movement:**

In August 1942, Gandhiji launched the Quit India Movement ("Bharat Chhodo Andolan"). A resolution was passed on 8 August 1942 in Bombay by the All India Congress Committee, declaring its demand for an immediate end of British rule. The Congress decided to organize a mass struggle on non-violent lines on the widest possible scale. Gandhiji's slogan of "Do or Die" ("Karo ya Maro") inspired the nation. Every man, woman and child began dreaming of a free India.

The government's response to the movement was quick. The Congress was banned and most of its leaders were arrested before they could start mobilizing the people. The people, however, were unstoppable. There were hartals and demonstrations all over the country. The people attacked all symbols of the British government such as railway stations, law courts and police stations. Railway lines were damaged and telegraph lines were cut. In some places, people even set up their independent government. The movement was most widespread in Uttar Pradesh, Bihar, Bengal, Bombay, Odisha and Andhra Pradesh. Places such as Ballia, Tamluk, Satara, Dharwar, Balasore and Talcher were freed from British rule and the people there formed their own governments.

The British responded with terrible brutality. The army was called out to assist the police. There were lathi-charges and firing at the unarmed demonstrators. Even old men and children were shot dead while taking part in processions. Protestors were arrested and tortured and their homes raided and destroyed. By December 1942, over sixty thousand people had been jailed.

The few leaders who had escaped arrest went into hiding and tried to guide the mass movement. Among them were Jai Prakash Narayan, S M Joshi, Aruna Asaf Ali, Ram Manohar Lohis, Achyut Patwardhan and Smt Sucheta Kripalani.

The Indians suffered greatly throughout the Second World War. There was a terrible famine in Bengal in AD 1943 in which over thirty lakh people died. The government did little to save the starving people.

### **F. India Independence**

After the Quit India Movement the freedom struggle got even more intense and passionate. Entire India was united together in the movement for freedom. Everyone contributed what they could in the freedom struggle. The cry of Purna Swaraj or complete independence was raised. After much sacrifices and efforts, India gained its independence on the 15th August, 1947.

## Conclusion

Above we studied about role of Mahatma Gandhi in Indian National Movement.

Gandhiji made social report a part of the programme of the nationalist movement. His greatest achievement in the field of social reform was the campaign against inhuman institution of untouchability which had degraded millions of Indians. His other achievement was in the field of cottage industries. He saw in the charkha, the spinning wheel, the salvation of the village people and its promotion became part of the congress programme. In addition to infusing people with the spirit of nationalism it provided employment to millions and created a large group of people who were ready to throw themselves into the struggle and court imprisonment. The charkha became so important that it eventually became a part of the flag of the Indian National Congress.

Gandhiji devoted himself to the cause of Hindu-Muslim unity. He regarded communalism as anti-national and inhuman. Under his leadership the unity of the nationalist movement was secured and the people worked hard for independence.

## References

- [1] Analyse the role of Mahatma Gandhi in the freedom movement of India by JYOTI
- [2] Role of Gandhi in the Indian National Movement by Kanu D
- [3] Khan, Yasmin (2007). *The Great Partition: The Making of India and Pakistan*. Yale University Press. p. 18. ISBN 978-0-300-12078-3. Retrieved 1 September 2013. Quote: "the Muslim League had only caught on among South Asian Muslims during the Second World War. By the late 1940s, the League and the Congress had impressed in the British their own visions of a free future for Indian people one, articulated by the Congress, rested on the idea of a united, plural India as a home for all Indians and the other, spelt out by the League, rested on the foundation of Muslim nationalism and the carving out of a separate Muslim homeland." (p. 18)
- [4] Khan, Yasmin (2007). *The Great Partition: The Making of India and Pakistan*. Yale University Press. p. 1. ISBN 978-0-300-12078-3. Retrieved 1 September 2013. Quote: "South Asians learned that the British Indian empire would be partitioned on 3 June 1947. They heard about it on the radio, from relations and friends, by reading newspapers and, later, through government pamphlets. Among a population of almost four hundred million, where the vast majority lived in the countryside, ..., it is hardly surprising that many did not hear the news for many weeks afterwards. For some, the butchery and forced relocation of the summer months of 1947 may have been the first they knew about the creation of the two new states rising from the fragmentary and terminally weakened British empire in India." (p. 1)
- [5] Brown (1991), p. 380: "Despite and indeed because of his sense of helplessness Delhi was to be the scene of what he called his greatest fast. His decision was made suddenly, though after considerable thought – he gave no hint of it even to Nehru and Patel who were with him shortly before he announced his intention at a prayer-meeting on 12 January 1948. He said he would fast until communal peace was restored, real peace rather than the calm of a dead city imposed by police and troops. Patel and the

government took the fast partly as condemnation of their decision to withhold a considerable cash sum still outstanding to Pakistan as a result of the allocation of undivided India's assets, because the hostilities that had broken out in Kashmir; But even when the government agreed to pay out the cash, Gandhi would not break his fast: that he would only do after a large number of important politicians and leaders of communal bodies agreed to a joint plan for restoration of normal life in the city. Although this six-day fast was a considerable physical strain, during it Gandhi experienced a great feeling of strength and peace."

- [6] Cush, Denise; Robinson, Catherine; York, Michael (2008). Encyclopedia of Hinduism. Taylor & Francis. p. 544. ISBN 978-0-7007-1267-0. Retrieved 31 August 2013. Quote: "The apotheosis of this contrast is the assassination of Gandhi in 1948 by a militant Hindu nationalist, Nathuram Godse, on the basis of his 'weak' accommodationist approach towards the new state of Pakistan." (p. 544)

# History of Indian Caste System and Its Impact on India

---

---

Hema

*Research Scholar, Dept. of History,  
Chatrapati Shahuji Maharaja University, Kanpur*

## Abstract

The Indian caste system is historically one of the main dimensions where people in India are socially differentiated through class, religion, region, tribe, gender and language. Although these or other forms of differentiation exist in all human societies, it becomes a problem when one or more of these dimensions overlap and become the sole basis for systematic evaluation and unequal access to valued resources such as wealth, income, power and prestige. The Indian caste system is considered a closed system of stratification, meaning that a person's social status is tied to what caste they are born into. Interaction and behaviour with people from a different social status are limited. Its history is massively related to one of India's leading religions, Hinduism, and it changed in many ways during the Buddhist revolution and under British rule. This paper will examine various aspects of the Indian caste system related to its hierarchy, its history and its impact on India today.

**Keywords:** Indian caste system, Hinduism, stratification, social status class, religion, region, tribe, gender, Brahmin, Kshatriya, Vaishya, Shudra, Untouchability, Harijan, Gandhi, Ambedkar

## Introduction

The Indian caste system is historically one of the main dimensions where people in India they are socially differentiated through class, religion, region, tribe, gender and language. Although these or other forms of differentiation exist in all human societies, it becomes a problem when one or more of these dimensions overlap and become the sole basis for systematic evaluation and unequal access to valued resources such as wealth, income, power, and prestige.

The Indian caste system is considered a closed system of stratification, meaning that a person's social status is tied to what caste he was born into. There are limits interaction and behavior with people from a different social status. His history is it is massively related to one of India's leading religions, Hinduism, and was altered in many ways during the Buddhist revolution and under British rule. This paper will examine various aspects of the Indian caste system related to its hierarchy, its history and its impact on India today.

## Structure and Characteristics of Caste

Defining the word “caste” itself is harder than it seems. Risley defines it as “a collection of families or groups of families bearing a common name; to claim common descent from a mythical ancestor, human or divine; to follow the same hereditary profession and by those who are competent to express their opinion, it is regarded as forming a single homogeneous community”. It can also be defined as an endogamous and hereditary subgroup of an ethnic unit that occupies a higher or lower level of social respectability compared to other such subgroups. A caste name is generally associated with a particular occupation and, as already mentioned, is a closed stratification, making it endogamous. The Indian caste system is the classification of people into four hierarchically ordered castes called varnas. They are classified by occupation and determine access to wealth, power and privilege. Leadership positions in society are monopolized by a few dominant castes. The two upper castes are ritually considered superior to the lower castes. Brahmins, usually priests and scholars, are at the top.

Brian K. Smith, author of the book classifies the universe, explains his definition of the Brahmin caste: The Brahmin class is essentially defined by its supposed priority (as a class created first by the creator god), the knowledge of the Vedas, and the monopoly that class holds on operation. These features justify the social position of the class vis-à-vis others. They are dominant because they are superior, and they claim to stand outside the power relations that govern the social life of others because they have better knowledge and exclusive ownership. Their ultimate “weapons” were sacrificial techniques.

However, there are various “grades” of Brahmins such as Kanya-Kubja, Tamil, Tanjore and others, which are part of numerous villages. These sub-castes called jatis are very specifically endogamous, so that a Brahman is not only restricted to marrying another Brahman, but also to marrying a woman of the same sub-division of Brahmans. Each jati consists of a group that makes a living mainly by a specific occupation. People are born into a certain caste and become members of it. Then they get the corresponding profession according to their jati. The separation of these Brahmins from others is one of several indications of social status, which includes material possessions, social power or influence, and social skills.

Modern India is dominated by economic competition and education and Brahmins take this position in both aspects.

Following the Brahmins are the Kshatriyas or political rulers and soldiers. They were ruling class and often collaborated with the Brahmins when they ruled over their kingdom. In ancient India, rulers were bound by scripture to administer their kingdoms justly. A Hindu ruler was the protector of his subjects, and to protect his subjects a king had to be a skilled warrior. A Kshatriya is characterized by physical and martial strength. These qualities determined his relations with others: “The Kshatriya is entrusted with the protection of the upper class of Brahmans with the dominion (and unlimited use) of the lower Vaishyas” (Smith, 48-9). The word “kshatra” in Sanskrit means rule, power and

dominion (Indianetzone). Kshatriyas are considered brave, alert and full of courage, generosity, discipline and modesty. Priests and warriors were said to be “superior” or “superior” to other castes, and generally Brahmins and Kshatriyas were considered to be lumped into the ruling class by the general population. But though the Brahmins and Kshatriyas jointly claimed to be superior to the common people, the Brahmins never hesitated to declare their own caste superior to the Kshatriyas. The reason for this according to the Vedas is that the Brahmins were characterized as self-sufficient, while the Kshatriyas are dependent on the priests. Thus, it is said that Brahmins can live without rulers, but rulers cannot adequately perform their tasks without the help of Brahmins.

Next are the Vaishyas or traders. It was the duty of the Vaishyas to ensure the prosperity of the community through agriculture, cattle rearing and trade. The Vaishyas were expected to be weak compared to their rulers and to be endlessly exploitable and regenerative. However, these oppressions were not usually boycotted because it was presented as the natural state of affairs in the social realm. Later, the Shudras took up agriculture and cattle rearing, while the Vaishyas became merchants and traders. Although they were “twice-born” and economically powerful because they controlled trade, the Vaishyas were denied high social status, for which they were hated by the upper castes. One manifestation of this opposition was their support of the anti-Brahmin sects that developed around the 6th century BC, such as Buddhism and Jainism (Gurjaris). Then come the Shudras, who are usually labourers, peasants, artisans and servants. Shudras were believed to have no special abilities and were considered capable of serving only as slaves to the upper three classes.

Shudras had no rights or privileges and were not allowed to perform any sacrifices or homa, reading or learning the Vedas or reciting mantras (prayer rituals). They were also not allowed to enter temples and could only serve the three upper castes as slave, barber, blacksmith or cobbler (Gurjari). They too supported the anti-Brahmin groups that arose.

At the very bottom are those who are considered “untouchables”. These individuals performed occupations that were considered unclean and polluting, such as scavenging and skinning dead animals, and are considered outcasts. Hindu law books insisted that there were only four varnas and never a fifth, which was used as a reason not to accept indigenous people from India. They were therefore not considered to be included in the Scheduled Castes. In some cases, untouchables could face criminal prosecution if they pollute certain things with their presence. For example, it was an offense for a member of an excluded caste to knowingly pollute a temple by his presence. They were also forbidden to enter the streets in which the houses of the upper castes were located, and there were many customs and laws that kept them out of villages and towns. As they were ranked outside the caste system, they were only meant for the fringes of the village and were never an integral part of the village community. However, their services were still necessary for the health of the community and therefore still had to be part of the system to serve the upper castes.

Caste involves three elements: repulsion, hierarchy, and hereditary specialization. According to Velassery, "society is characterized by such a system if it is divided into a large number of hereditarily specialized groups, which are hierarchically superimposed and opposed to each other. It does not tolerate the principle of raising the status of a mixture of groups and changing occupations". In the Indian caste system, there are many rules that caste members must follow in order to avoid being shunned by their fellow caste members or born less fortunate in the next life, according to Hinduism. The two most important characteristics of the Indian caste system have to do with endogamy and occupational restriction. Each member of a caste or sub-caste must marry within his own caste. Any violation of this results in excommunication from family and caste. In terms of occupation, each caste is associated with a particular caste that its members must follow. Another characteristic is that each caste imposes dietary restrictions on its members and has its own laws governing the eating habits of its members. There are two types of food: Pacca, which is food prepared with ghee (melted butter), and Kachcha, which is food prepared with water. According to castes, certain castes can only exchange certain types of food. For example, a Brahman can only accept Pacca food from a Shudra, but Kachcha food can only be accepted from a person of his own caste or a higher caste.

Another is social interaction between castes. There are strict barriers when it comes to mixing upper caste with lower caste. Thus, within the caste system, each caste follows well-established customs and well-defined norms of interaction.

The fourth idea is the belief in purity and pollution. Purity is considered a very important value in Hinduism and the caste system enforces this idea. Untouchability was thus a means of exclusivism, a social tool that became religious only by being drawn into the complex of pollution and purity. Therefore, higher castes were believed to be purer and less polluted, while lower castes were considered less pure and more polluted. A final characteristic that is very important for the stabilization of the Indian caste system is the limitation of caste mobility mentioned earlier. Being born in a certain caste restricts a person to stay in that caste and restricts and restricts an individual's mobility up or down the hierarchy.

The caste system greatly influenced the economic structure in the Indian village. The village was essentially a food-providing unit where each family of the artisan or service caste was associated with one or more families of the agricultural and land-owning castes. This system was known as the jajmani system, which survived in India until the arrival of the British. W.H. In his Hindu Jajmani System, Wisner shows the reciprocity of relationships in a village community based on the exchange of goods and services between different castes. In the village Wisner studied, he found that "there were twenty-four castes determined by birth—priest and teacher, bard and geologist, accountant, goldsmith, florist, vegetable grower, rice grower, carpenter, ironworker, barber, waterman, shepherd, drying grain, dressmaker, potter, oil presser, laundress,

mat maker, tanner, pool sweeper and cleaner, Mohammedan beggar, Mohammedan glass bangle seller, Mohammedan cotton carder and Mohammedan dancer" (Vlassery, 7).

Each individual had a fixed economic and social position. Even the beggar, for example, had a solid state. Giving alms to a beggar was considered a religious duty to be so claimed as a right and each was related to the others in an employee-employer relationship.

Essentially the same person who was the employer in one relationship was employed others. It can be seen from the above list of caste differences that the web the economic stability and security provided by an individual's respective caste and the relationships that an individual acquired through their employment were essential to village life. The caste system is what governs these relationships, and these relationships are one of the reasons why the caste system remains intact.

### Origin and History

The origin of the Indian caste system has many theories behind it. Some of them are religious while others are biological. Religious theories explain that according to Rig Veda, which is an ancient Hindu book, the proto-man 'Purush' destroyed himself to create a human society and different parts of his body created four different varnas. Brahmins were from his head, Kshatriyas from his hands, Vaishyas from his thighs and Shudras from his feet. The hierarchy of Varnas is determined by the descending order of the various organs from which the Varnas were created. For example, Brahmins, who were derived from the head of Purusha, are considered the intelligent and most powerful varna because of their wisdom and education and are a representation of the brain. Likewise, Kshatriyas, considered a warrior caste, were created with arms that represent strength. Another religious theory holds that the Varnas were created from the bodily organs of Brahma, who is the creator of the world in Hinduism.

Biological theory holds that all existing things inherit three of the three categories quality Varna means different shades of texture or color and represents mental mood. There are three gunas: Sattva, Rajas and Tamas. Sattva is white, Rajas is red and Tamas is Black. These in combination of various proportions form a group or class of all men around the world with temperamental differences. The qualities of sattva include qualities related to wisdom, intelligence, honesty, goodness and other positive qualities. Rajas include qualities such as passion, pride and prowess. Tamas is believed to acquire qualities that include dullness, stupidity, lack of creativity and other negative qualities. People with varying amounts of these innate qualities will eventually adopt suitable occupations. According to this theory, Brahmins usually inherit sattva qualities. They are calm and self-controlled and have the quality of asceticism. They are believed to have purity, sincerity and tolerance.

Brahmins also have the will to acquire knowledge, wisdom and faith. Kshatriyas and Vaishyas inherit the qualities of Raja and Shudras inherit the qualities of Tamas. The type of one's action, the quality of one's ego, the color of

one's knowledge, the structure of one's understanding, the nature of one's bravery, and the brilliance of one's fortune define varna.

However, historically, the caste system is believed to have started with the advent of castes Aryans in India around 1500 BC (Daniel). Of the many cultures that flourished in India, the literary records of the Indo-Aryan culture are not the oldest. However, they contain the first mention and continuous history of the factors that make up the caste system.

The Aryans came from southern Europe and northern Asia with light skin that contrasted with the indigenous people of India. When they arrived, their main contact was with the Dravidians. The only other culture whose records are reliable regarding the origin of the caste system are the Dravidians, but when the documents for this culture were presented, it was already heavily influenced by the Indo-Aryan tradition. Unfortunately, the Aryans completely ignored their local cultures and began conquering areas all over northern India (Daniel). At the same time, the local people were pushed south towards the jungle mountains of northern India.

The Aryans had a special principle of social organization called Varna Vjavastha, which was based on four hierarchical divisions of functions in society. They were placed in descending order of importance: religious and educational, military and political functions, economic functions and inferior functions. Aryans organized alone in three groups. The first group, Rajayana (later changed to Kshatriya) were warriors followed by Brahmins who were priests. These two groups constantly fought for political leadership among the Aryans. Eventually the Brahmins became the leaders of Aryan society. The last group consisted of farmers and artisans and was called Vaishyas. The Aryan conquerors conquered the local population and made them servants. In the process, the Vaishyas became the landlords and merchants of society and the locals became peasants and artisans.

To secure their status, the Aryans established social and religious rules that established that only they were allowed to become the priests, warriors, and merchants of society.

Maharashtra, which is a state located in western India, is a great example. This region was known by this name for hundreds of years and many think that the meaning of his name is Great Land. But there are some who claim that the name Maharashtra is derived from a category called Mahar, who are considered to be the original inhabitants of the region. These individuals were forced to follow the social and religious rules that the Aryans had established. In the caste hierarchy, the Mahars were outcasts because they were dark-skinned compared to the light-skinned Aryans. Skin color was an important indicator in determining an individual's caste. As mentioned earlier, the word varna does not mean caste or class but color. After the Aryans encountered people who were very dark in color and had rather stubby noses, they described the earlier settlers as "dark in color" as people without noses and applied them to the term dasa, which in Iranian meant "enemy" (Ghurye, 165 ).

Among the outcasts and the three Aryan varnas were the Shudras who were simple employees of the company. The Shudras consisted of two communities: one community was of the local population who had been subjugated by the Aryans, and the other was a mixture of Aryan and local origin (Daniel). One of the main regulations that the Aryans started with was the exclusion of these Shudras from their religious worship. Very early in their Indian history, the Aryans decreed that the Shudras would not practice the religious worship they had developed. The various factors that characterize caste society were the result of attempts by the proponents of Brahmanical civilization to exclude the natives and the Shudras from religious and social communion with themselves. In Hindu religious stories, there are many wars between good Aryans and dark-skinned demons. Stories of demonic women who try to seduce good Aryan men in a deceptive way are very prominent. Many believed that these cases actually occurred where the gods and positive heroes were of Aryan origin and the demons were in fact the original inhabitants of India, invented by the Aryans themselves as devils and demons (Daniel).

Like most societies in the world, India had a patriarchal system. Most of the time, the son inherited the father's profession, leading to developing families acquiring the same family profession for generations (Daniel). Later, as these families grew, they were considered communities, or jats. Different families who followed the same profession formed social relations with each other and organized themselves as a jat (Daniel). After some time, the Aryans who created the caste system slowly began to add non-Aryans to their statuses. Different Jats were integrated into different varnas according to their profession. Other foreign invaders of ancient India—Greeks, Huns, Scythians, and others—conquered parts of India and formed kingdoms.

These were integrated with the Kshatriyas. Most of the communities that were in India before the arrival of the Aryans were categorized as Shudras or were made outcasts depending on their occupation (Daniel). Here began the beginning of the Dalit varna, where communities practicing polluting professions became outcasts and considered 'untouchables'.

Brahmins are very strict about cleanliness and in the past people believed that diseases could spread not only through physical contact but also through the air. This is one of the reasons why Dalits were not allowed to touch the high caste community and had to stand at a certain distance from the upper castes.

Around the 6<sup>th</sup> century, many individuals from lower castes who had had enough suppression turned to Buddhism. Buddhism actually began as a reaction to the violence of Hindu society, including the brutality of the caste system. Buddhism does not focus on society but on the individual, thus separating religion from the interests of rulers and domination. In Buddhism, one is no longer born into a position because of past injustice. Although Buddhism does see life as pain and suffering and reincarnation as the renewal of that suffering, there is a potential escape. Buddha, himself born into a warrior caste, was a harsh critic of the caste system. Buddhism absolutely rejects any caste system and actually reached a high level of support during the reign of Ashoka, who

adopted the Buddhist concept of ahimsa or non-violence and its tendency towards greater equality. He ridiculed priests who claimed to be superior, criticized the theological basis of the system, and welcomed people of all castes into his community, including outcasts. His most famous statement on the subject was: "Birth does not make a man a priest or an outcast. Behavior makes a man a priest or an outcast" (Malalasekera and Jayatilleke). Even as Buddhism declined in India and Tantrayana (another sect of Buddhism practiced after the 7<sup>th</sup> century) adopted many aspects of Hinduism, it continued to welcome all castes.

The fluidity of the caste system was affected by the arrival of the British. The British they brought with them their own traditional form of government and as Christians they had little sympathy for Hindu institutions. During the early days of British East India Company rule, caste privileges and customs were encouraged, but British courts began to disapprove of discrimination against lower castes. However, the British policy of divide and rule contributed to the consolidation of caste identity. However, as British civilization proliferated in India, it was fatal for members of different castes, affecting their beliefs about contact and "using the same tools at the cost of traditional repulsion" (Bouglé, 81). For example, when the British government wanted to install a water system in Bombay, it first caused great outrage from the upper castes. They could not believe that the pure and the impure, the twice-born and the Shudra, would drink from the same taps as them. However, this was resolved by the panchayat, which is an assembly of five wise and respected elders chosen and accepted by the village community. They argued that the increase in taxes by the British administration for this sewerage could be considered a remedy and that it would atone for the sins to which this sharing of taps exposed them. Britain did not influence the Hindu people only through indirect means. A certain number of traditional crafts associated with caste were made impossible due to the large amount of imports of manufactured goods from the metropolis. Because of this, many weavers had to turn to agriculture. In other places, occupations that had been handed down from generation to generation had to be closed down because of newly opened factories. These events not only changed occupations, but also affected the very social situation between castes. The three pillars of the caste system—hereditary specialization, sacred hierarchy, and mutual repulsion—were essentially directly undermined by the British administration.

#### Religion, Culture and Caste

Caste division is one of the most fundamental features of Indian society structure. In Hindu society, caste divisions play a role both in actual social interactions and in the ideal scheme of values. Members of different castes are expected to behave differently and to have different values and ideals. These differences are sanctioned by the Hindu religion.

Traditionally, the caste system of stratification in India was legitimized through the classical Hindu religious texts, especially as interpreted by Brahmins. Hinduism is "a social system as much as a religion...its social framework has been the caste system from very early times and is...became...still

identified as Hinduism as such" (Smith, 9). The caste system was rationalized in ancient India for various reasons. One of them was justification in the Vedas. The caste system would not have found acceptance among the Vedic people if there was no mention of it in the Vedas. The Purushu Sukta in the 10<sup>th</sup> Mandala of the Rigveda describes how castes arose: from the various parts of Purusha, the Cosmic Soul, at the time of the great sacrifice performed by the gods.

As mentioned earlier, Brahmins came from his mouth, Kshatriyas from his arms, Vaiyshas from his thighs and Shudras from his feet. Another justification comes from the theory of karma. This concept rationalizes the caste system based on birth. It supports its argument that lower caste people are to blame for their troubles and low status due to their bad karma in a past life. The law of karma states that the current state of your soul, such as confusion or calmness, is based on your choices in the past and that you as an individual have become what you are based on your actions. Also, your current thoughts, decisions and actions determine your future life events and these events can change one's karma through natural, moral decision and action (oriental philosophy). Hence the notion that "a man's particular duty is adapted to the class into which he is born and the stage of life he is currently passing through" (Smith, 10) and that one of the main requirements of the caste system is "the belief in karma and the cycle of rebirth, where our social status in this life is ethically determined by moral actions in past lives" (Smith, 10).

Because one of the core beliefs of Hinduism is that the consequences of your past decisions.

When you have determined your current state, reincarnation plays a huge role in preventing people from rebelling against the caste system. Reincarnation was created by the Aryans to justify the oppressive behavior they imposed on the natives and to prevent the people from rising against the system. Reincarnation reinforces caste oppression in two ways. It justifies injustice and turns away hopes of progress from this life to the "next life" (JoT). For the people at the top of the caste system (Brahmins), reincarnation justifies why they were given the privilege of being born into a high class.

They have earned these privileges through virtuous behavior in past lives, and a privileged birth proves that one deserves the privilege. For the people at the bottom, the Shudras and the untouchable, reincarnation justifies why it suffers for its low birth rate. They must have earned their suffering through sinful actions in past lives. To avoid being born into a low caste in their next life, Hindus who were born as Shudras or untouchables learned to support their own oppression rather than confront it. Hinduism teaches low caste people that the way to improve their status in the next life is to lead a virtuous life this time without acts of deviance to the caste system.

As already mentioned, many in India were oppressed (like the Shudras and others "untouchables") joined anti-Brahmin movements to take a stand against acts of discrimination they faced. Back in 1950, he was one of the main reasons conversions to Buddhism in India during the 1950s under B.R. Ambedkar was the caste system and the plight of the oppressed "untouchables".

Conversion to Buddhism seemed to be seen as the only means of emancipation from the injustices associated with the caste system. Hence the term Dalit; those who called themselves untouchables referred to themselves as oppressed people, a term used to denote both pride in their community and resistance to exploitation. Sometimes the oppressed Shudra castes and tribal groups are also referred to as Dalit. These Dalit activists refused to be defined as Hindus and supported movements against social and economic injustice.

It is unfortunate that although the original intention of the Varnas was not to create a caste, it evolved in emphasizing the idea of the caste system. Varnas are conditioned by their actions and desires based on Gunas, but people have confused Varnas with caste and treat them as identical. Varnas are created by God, while caste is created by man; it is simply a social institution and can be easily changed and modified according to the changing needs of society. Caste by birth was never the original intention nor was it ever the basis on which the Varnas were established; it was intended so that individuals would be involved only in the area of activity that they are capable of doing. The Varna system stood on the basis of Gunas and Karma of the individual and has nothing to do with birth.

#### Anti-Caste Movement and Political Policy

There were many movements and government actions that took place before and after independence in order to overcome and try to eliminate inequalities and injustices associated with the caste system. During the national movement, Gandhi began using the term “Harijans” (God’s people) to refer to the untouchables to encourage a shift towards a positive attitude towards the lower castes. However, many members of the lower caste considered the term condescending. Censuses in India were started by the British at the end of the 19th century and in 1935 “The British Indian Government came up with a list of 400 groups considered untouchables as well as many tribal groups who would be given special privileges with the aim of overcoming deprivation and discrimination. These groups included in this list came to be called Scheduled Castes and Scheduled Tribes. By the 1970s, however, many leaders of castes considered untouchables began calling themselves Dalits”. The Dalit anti-caste movement began with Jyotirao Phule in the mid-19th century and he established a movement for the education and upliftment of women, Shudra’s and Dalits, and the movement spread to many parts of India. He also worked to abolish the idea of “untouchability”, which meant getting rid of restrictions on entering temples and finding a place for Dalits in Hinduism.

After 1910, however, Dalit leaders began to focus on distancing themselves from Hinduism and began pushing for a separate electorate for Dalits. But Gandhi, who was one of the leaders of the Indian National Congress, instead tried to promote the inclusion of Dalits as part of reformed Hinduism.

Another prominent movement was the Dalit movement led by B.R. Ambedkar, who started between the 1920s and 1930s. He campaigned for greater rights for Dalits in British India and even after independence. Both Ambedkar

and Gandhi were in favor of the abolition of the caste system, but they disagreed on the means to achieve this. Gandhi believed that “untouchability is a moral problem that can be abolished by goodwill and a change of heart among the upper Hindus”. However, Ambedkar believed that “the subordination of Dalits was primarily economic and political and could only be overcome by changing the social structure through legal, political and educational means” (Sekhon, 48).

Ambedkar was given constitutional guarantees after independence which reserved certain percentage of seats in elections for Dalits, but by the mid-1950s Ambedkar was not satisfied with the rate of implementation of the measures. He therefore resigned from the government and started recruiting Dalits to seek rights. In 1956, he encouraged some six million Dalits to convert to Buddhism “as a means of escaping the social stigma of untouchability within the Hindu caste system”. During the 1970s, the Dalit Panthers grew up among the young generation of Dalits along with other social movements in India, and their movement expressed their anger and frustration at the failure to implement policies that would eliminate acts of violence against Dalits by upper caste Hindus in many parts urban and rural India.

There are three main categories of people who have been identified as eligible for preferential policies that reserve seats in legislatures, government offices, public sector enterprises and state educational institutions in terms of the proportion of their population in their area. They are also promised special programs (such as legal aid in health, land allocations, scholarships, loans, and grants) and are legally protected against discrimination (such as debt, forced labor and untouchability). First group is the Scheduled Castes (SCs), which includes communities that are considered to be untouchable (Daniel). The second is Scheduled Tribes (STs). This category includes in it those communities that did not accept the caste system and preferred to live deep in the country the jungles, forests and mountains of India, far from the main population. The Scheduled Tribes are also called Adivasi, meaning aborigines. The third is the Other Backward Classes (OBCs), which include castes belonging to the Shudra Varna, former untouchables who converted from Hinduism to other religions and nomads and tribals who subsisted on criminal activities. They are considered to be afflicted with “backwardness” on the basis of social and economic disadvantage. However, it is not clear what criterion identifies an OBC, and disagreements remain over whether to assign people this status based on caste or economic criteria. The problem is that caste and economic status were largely correlated in the past, and even now caste prejudice and discrimination hinders the economic advancement of the lower castes.

In the 1960s, the reservation system began for SCs and STs, but individual states were the ones to determine which would be designated as OBCs. Many southern states designated economically disadvantaged castes as OBCs, but there were a significant number opposition to the implementation of these policies in other Indian states.

The Central government appointed a committee headed by B.P. Mandal to look into the problem and by 1978 the Mandal Commission Report was completed. It was concluded that caste was a major factor contributing to social and economic backwardness. Many posts in state institutions were reserved for these three groups. The commission recommended that 27 per cent seats be reserved for OBCs, besides 15 per cent for SCs and 7 per cent for STs.

Unfortunately, the government did not implement these policies for fear of massive popular backlash, but in 1990 the Janata Dal government “attempted partial implementation of the recommendations leading to widespread unrest and resistance by middle and upper caste youth, intellectuals, and the elite”.

### Modern India

Caste relations have loosened today. There is more sharing of food between castes and much more is eaten in local restaurants where caste discrimination is less likely. One of the biggest changes that took place in India was occupation persecution among men (and later women). Previously, most men did not budge from their caste-related occupations such as blacksmithing and pottery making. Many have now taken up newer occupations unrelated to their caste such as government jobs, teaching, retail and service and machine repair. Wealth and power in the village is now less associated with caste than before, and land ownership has become more diversified. Also, the idea that cleanliness and pollution are caused by the lower castes has greatly diminished. In public, however, it has diminished somewhat, while behind closed doors and on ceremonial occasions, purification rituals related to caste status are still observed. Endogamy is still enforced between families, but not as strictly as before. The status of women is still significantly tied to that of men, but education and awareness of equalization for women has spread widely throughout India. In rural areas, exit from caste-based specialized occupations and access to resources for lower castes is still difficult and slow, but in urban areas, caste is now a less significant part of everyday life. Although caste-based discrimination has been outlawed in India, caste has become a means of competition in modern India for access to resources and power, such as educational opportunities, new occupations, and improved life chances. This trend is related to India’s preferential policies and their implementation.

Implementation has been very uneven amid debate and controversy over the issue preferential policies but still had a very significant impact on many sections among the lower castes and classes. There has been an increase in the representation of SCs, STs and OBCs in elected offices and they have received strong local support. They have also become an important element in electoral politics and have created strong political parties in various regions. People from these disadvantaged groups have largely entered government jobs as well as all levels of educational institutions.

Unfortunately, only a relatively small portion of the lower castes have benefited from these preferential policies. Although it is becoming more and more accepted there is also more overt hostility and violence towards lower

caste individuals in many parts of India. For example, in parts of Bihar, a state in eastern India, upper caste landowners formed a private army called the Ranvir Sena in 1994 to “protect” themselves from lower castes. Although banned, the Ranvir Sena carried out 20 massacres of Dalits by early 1999. Hostility is also expressed by many who support the removal of reserved government jobs and in technical education institutions, particularly by many from the traditionally economically disadvantaged upper castes. Individual achievements, merits, and economic status are also still heavily influenced by caste.

### Conclusion

The Indian caste system has played a significant role in shaping the occupations and roles as well as the values of Indian society. Religion has been a constant pressure on this stratification system for centuries, beginning with the Aryans and continuing down a long path of unfortunate discrimination, segregation, violence and inequality. Hinduism was the backbone of the purity and pollution complex and it was the religion that influenced the daily life and beliefs of the Indian people. Even after sixty-three years of independence, Indians are still in the grip of caste consciousness. Historically, India has survived as a nation for millennia with closed groups divided by caste, creed and language. Labor was divided, and each had his assigned task from birth, and inheritance of occupation was the rule, which played a great part in the economy of town and country life. Movement of occupation or caste was restricted, and an individual leaving the occupation of his ancestors to follow his own path was rarely witnessed. It can be seen that caste continues to play an important role in the dynamics of social and political interactions in India. However, the relationship between castes and hereditary occupations has now become less significant and there are fewer restrictions on social interaction between castes, especially in urban areas. Contemporary Indian society is moving away from its closed systems to a state of change and progress characterized by the promotion of the human spirit regardless of caste and creed. Numerous movements that challenge the injustices associated with the caste system have encouraged individuals in India to be more civil to other castes members. Many lower castes have gained a lot from the partial elimination of the caste system, and India is to be applauded for its continued efforts to eradicate this system of stratification from its culture. However, it is important to look at the importance of how caste status has affected the quality of life and social mobility in India today.

### Bibliography

1. Alavi, Seema. *Sepoys And The Company Tradition and transition in Northern India 1770–1830*. Oxford University Press India, 1998. Print.
2. Beteille, André. *Caste, Class, and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village*. Berkeley: University of California, 1965. Print.
3. Bouglé, Célestin. *Essays on the Caste System*. London: Cambridge UP, 1971. Print.
4. Corbridge, Stuart, and John Harriss. *Reinventing India: Liberalization, Hindu Nationalism, and Popular Democracy*. Cambridge, UK: Polity, 2000. Print.

5. Daniel, Aharon. "Caste System in Modern India." Adaniel's Info Site. Web. 4 Nov. 2010.
6. Ghurye, G. S. Caste and Race in India. Bombay: Popular Prakashan, 1969. Print.
7. Hampton, Andrea. "The Untouchables." Home - CSU, Chico. Web. 23 Nov. 2010.
8. "Hinduism and Buddhism" a Comparison." Essortment Articles: Free Online Articles on Health, Science, Education & More.. Web. 14 Nov. 2010.
9. "Hinduism: Caste System, Reincarnation, and Karma." Philosophy Home Page. Web. 14 Nov. 2010.
10. Hutton, J. H. Caste in India: Its Nature, Function and Origins. Bombay: Indian Branch, Oxford UP, 1963. Print.
11. "Kshatriya , Indian Caste." Free Encyclopedia & Web Portal on Indian Culture & Lifestyle. 28 Jan. 2009. Web. 11 Oct. 2010.
12. Lahiri, R. K. "Caste System in Hinduism by Dr. RK Lahiri, PhD." Boloji.com - A Study in Diversity - News, Views, Analysis, Literature, Poetry, Features - Express Yourself. 20 Nov. 2005. Web. 3 Nov. 2010.
13. Malalasekera, G. P., and K. N. Jayatilleke. "Buddhist Studies: Caste System."
14. BuddhaNet -Worldwide Buddhist Information and Education Network. Web. 14 Nov. 2010.
15. Pintane, Andrea. "Brahmans within the Caste System." Home - CSU, Chico. Web. 11 Oct. 2010.
16. Pyakurel, Sourav. "Caste System in India: Articles." Rajput Brotherhood: A Blog Focused on Technology and Web-development. Web. 29 Nov. 2010.
17. Sekhon, Joti. Modern India. Boston: McGraw-Hill, 2000. Print.
18. Smith, Brian K. Classifying the Universe: the Ancient Indian Varna System and the Origins of Caste. New York: Oxford UP, 1994. Print.
19. Tweet, Jonathan. "JoT Rel Reincarnation." JoT Welcome Page. July 2004. Web. 23 Nov. 2010.
20. V, Jayarama. "Hinduism and Caste System." Hinduism, Buddhism, Jainism, Sikhism, Zoroastrianism and Other Resources. Web. 14 Nov. 2010. "Vaishyas." Gurjari.net. Web. 12 Oct. 2010.
21. Velassery, Sebastian. Casteism and Human Rights: Toward Ontology of the Social Order. Singapore: Marshall Cavendish Academic, 2005. Print.

# Swami Dayanand Saraswati: Pioneer of Indian Renaissance and Reformation

---

---

**Dr. Anand Kumar Jha**

*Assistant Professor of History, T.N.B. College, Bhagalpur*

Many socio-religious organizations witnessed the emergence in almost all the regions of nineteenth century India due to the prevalence of several social evils. All the organizations intended to reform the social structure of the Indian society. These reform movements emerged primarily on account of the impact of western ideas and thoughts. The English education created a class of Indian middle class which deemed the socio-religious reforms very essential on the western lines.<sup>1</sup> The social reformers and the Indian elite were greatly disturbed to see the superstitions and social obscurantism in the society. All these were instrumental in creating dominance of the priestly class during the medieval period. Europe was no exception to it as western Countries had also been suffering from the identical religious susceptibilities for quite a long period.<sup>2</sup> Renaissance and Reformation gradually paved the way for the foundation of new set of values, concepts ideas and formulae in the realm of art, literature, sciences and social sciences covering a variety of disciplines<sup>3</sup> The dominance of the clergy class also came to an end and a national standard of faith was set-up. All these changes gradually occurring prepared the ground for the beginning of nationalism, secularism and democracy in western world.<sup>4</sup> Several socio-religious organizations such as Brahmo Samaj, Prarthana Samaj, Paramhansa Mandli, Theosophical Society etc. were already founded in India. Some regional and castes organizations also came into being but their activities were particularly restricted to regions and castes.<sup>5</sup> An attempt is being made to study Swami Dayanand as a pioneer of renaissance and reformation in India and how he dispelled the nation of identity crisis being faced by the Hindus in the 19th century Punjab. He founded the Arya Samaj in 1875 as the Hindu society was not only suffering from religious susceptibilities but also firmly believed in the stereo-type of worships non-visible in any part of the world. He stoutly rejected all those religious practices, faiths and bigotry which were based primarily on the false and irrational nations.<sup>6</sup>

Dayanand was born in 1824 in a Brahmana family at Tankara in the princely state of Morvi, Gujarat. He was a rebel and militant child of his family from the very beginning. The family followed the Shaiva traditional way and this child was nurtured according to the tenets of this branch of Hinduism.<sup>7</sup> Sanskrit grammar and some Vedic texts were deemed prudent for learning sonic lessons by hearty Whenever there were religious discourses he always accompanied his father Thus he completed his formal education which was quite sufficient

for his family business but started seeking the truth of the worldly life.<sup>8</sup> He had to pass through the periods of severe conflicts and gradual sufferings. His faith in the traditional religious practices began to wean away when he saw a rat dancing on Lord Shiva's idol. Since then, he started opposing the idol worship and even his father's constant arguments and persuasion proved futile in this regard.<sup>9</sup>

Two incidents occurred in the family i.e. deaths of his younger sister and uncle left him "in a state of utter dejection and with a still profounder and conviction". He firmly believed that there was "nothing stable, nothing worth living for in this World". In order to divert his attention from such spiritual thrust, his parents wanted him to marry and were in search of a suitable girl. He left his home at the age of twenty two in search of truth salvation.<sup>10</sup> He continued to wander hither and thither more than fifteen years but utterly failed in his mission. Ultimately, he found Swami Virjananda, a true guru at Mathura, who constantly taught him Sanskrit grammar, Vedas and yoga for three years (1861-63). Virjananda had already established him-self as an authority on grammar which made him acquaint with the deepest secret of religion and salvation hidden in Hindu scriptures. He profoundly studied the Ashtadhyayi, Mahabhasya, Nirukta, Nighantu in order to master the treasury of the Vedas and control the mind and body through the yogic powers."<sup>11</sup>

During his stay at the Ashram of Virjananda, Dayanand was, a changed personality. The Vedas were deemed as the biggest treasure of knowledge for all the branches concerning to an human being. His guru was fully satisfied with his attainment of deepest knowledge of Vedic and other contemporary literature. Hence, Dayanand was asked to spread the true knowledge hidden in the Vedas. When he was about to leave the Ashram, his guru explicitly observed: "I demand from you something else as a dakshina. Take a vow before me that so long as you live you will work incessantly to spread the true knowledge of the Vedas and the Arsha-granthas and con-demn works which teach false doctrines and tentets: and that you will even give your life if necessary in re-establishing the Vedic religion. Dayanand bowed and vowed Tathastu, so it be."<sup>12</sup> This was the dakshina demanded by Virjananda from his disciple, Dayanand. It is worthy to spread the message given by his guru. He, undoubtedly, preached and succeeded in his mission to the last breath of his life.

Swami Dayanand clearly declared the Vedas as infallible which possessed a reservoir of knowledge of the past, present and future. He was of the firm view that every Hindu should study the Vedas which had all types of informations : philosophical technical and scientific. One can discover in the Vedas all modern Science engineering, military and even non-military." Swamiji thus challenged the western world which boasted of its new science and technology, India had already attained so many discoveries in the an-t: low period Besides, the Vedas were the original source of religion, culture and civilization of India and these were the real fountain head of Indian thought, philosophy and knowledge.<sup>14</sup>

Another vital question that gripped the mind of Swamiji was the education which could change the over-all personality of an individual. The study of

literature always discarded the century's old superstitious dogmas and prescriptive sentiments. Through education, one can understand and know a variety of movements started earlier in the realms of political, social, cultural and economic for the well-being of the humanity.<sup>15</sup> When Indians, cultural educated, they came to know the numerous defects of British rule and its varied impact on the Indian society . The Arya Samajists opened schools and colleges in many parts of northern India which were by and large educationally backward.<sup>16</sup> He laid great stress on the education of both the boys and girls in their mother tongue so that they could think rationally and abstain from religious beliefs and dogmas prevailing in the then Indian society . He knew it well that education was the most potent instrument of socio-religious and cultural changes . Thus the expansion of education was deemed quite essential for the transformation of Indian society by him . Later on, both the Anglo-vedic and Gurukula systems of educations went simultaneously for the betterment of the society.<sup>17</sup>

Swami had a programme of social reform based on equality. Though he opposed the hereditary caste system but stood for the four varnas to be determined by merit and not by birth.<sup>18</sup> The younger generation had a special attraction for its teachings. Soon the path shown by the Arya Samaj began to be broadened and its centres were established in many parts of northern India. The peasantry in Haryana got attracted towards it as it relieved them from many religious susceptibilities going on in the then society." It was a progressive movement in this sense as its preachers often organized prabhat pheris (community processions) in which they attacked the social evils, advocated education and even preached nationalism in order to mould the public opinion for socio-cultural and political awakening among the masses.<sup>20</sup>

Swamiji always opposed idolatry and other social evils prevailing in the society. He never yielded to the Brahmanical hegemony as far as the religious conscience was concerned. In many of his religious discourses, he often won over the temptations and frowns of the orthodox sections of the society. He continued to decry the evils of Christianity when the British rule was at its climax. He stood for the supremacy of an individual in search of perfect truth and was a great ethical idealist.<sup>21</sup> He was essentially an ascetic, a staunch puritan and a valiant fighter for the truth. He always decried the evils prevailing either in the Islam or Christianity and even did not fear when he started reconverting the Muslims into Hindu-fold. His mobilization for reconversion was full of threats but he never cared for them. He was labeled as a reactionary as far as this aspect was concerned.<sup>22</sup> He attacked both the Islam and Christianity as two proselytizing religions and started the Suddhi and Sanghatan movement to counteract their activities.<sup>23</sup>

Swamiji advocated the parity among the men and gave it too much prominence. A man should be treated in terms of his merit not on the hierarchical gradation. The institutions opened by the Arya Samajists did not make any distinction of colour, creed and caste but admitted the boys and girls of other castes and communities. This was the only organization in which no priest enjoyed any superiority or any woman or untouchable was not prohibited from even studying the Vedas. He often favoured for granting all the rights essential

for better life to all persons without any distinction.<sup>24</sup> He firmly believed that the women should be given high status in every walk of life as far as the education, marriage, property and professions were concerned. In order to counteract social division and inequality, inter-dinnings and inter-marriages should be encouraged among the members of different castes in India. He firmly believed that the physical, intellectual and spiritual growth of an individual would be quite significant if it was directed by the principle of common good and true sense of social service.<sup>25</sup>

Swamiji made it clear that the polity, religion and learning were the three major agencies which controlled the life of an individual. In the polity only those individuals should be made members of political institutions who possessed the qualities of self-control, truthfulness and learning. His constant studies of Vedas and Manuscript clearly indicate that he was for the close connection between the politics and morality<sup>26</sup>. The second authority was the religion which should give an incentive to the moral and spiritual advancement of the individuals. The members of the religious institutions should be learned, intelligent, pious, honest, disciplined, along with denunciatory orientation in the society. They should give guidance to the members of ruling class for the well-being of the masses. The learning institutions should impart proper education to the people in order to make them good citizens on the part of the government as a welfare state.<sup>27</sup> In his opinion, law was the supreme authority through which justice and order should be dispensed with so that the peoples' interests could be fully protected in the country. Thereby, he interpreted the meaning of nationalism as the colonial rule bitterly failed not only to dispense justice but also in meeting the genuine aspirations of the India people.<sup>28</sup>

Swamiji always held women in high esteem and they should be given high respect not only in the family but also in the society. She had quite respectable position in the Vedic period. He was against their sexual, physical, social and economic exploitation as they had continuously been exploited for centuries.<sup>29</sup> He explicitly observed while quoting Manusmriti "where women are honoured being endowed with learning, the men of house Are called gods and live in happiness at home but where not honoured all acts become fruitless.... That family soon goes to ruin where women are sad and miserable..... That family enjoys perpetual prosperity where women are filled with joy and delight."<sup>30</sup> He clearly stated that if the men desired wealth, they should honour women and supply them with jewels, viands and other requisition on the occasions of festivals and jubilees.<sup>31</sup> He fought for the rights of women to educate, to the study of Vedas to do marriage of their own choice, to have equal status in society, to secure widow's right to property and to remarry etc. He always opposed child marriage and was a great supporter of their equality with man.<sup>32</sup>

Though the Arya Samaj was founded in Gujarat, it became quite popular in the Punjab where Hindus were in the cultural identity crisis. It helped in the emergence of social consciousness among the Punjabi Hindus elite. "It was the communal . competition among the Hindus, Muslims and Sikhs that compelled the Hindu elite to channelise the Hindu strength for the identity formation in order to respond to the non-Hindu communal forces.<sup>34</sup> Besides, it created a platform for them to meet the challenges posed by the Christian missionaries

for mass conversions. Moreover, the Punjabi elite failed to bear the crafty policies of the colonial masters who always used one community against the other.<sup>35</sup> It is quite true that English education and institutions had started developing the social base of the Punjabis under the colonial rule in the Punjab. Hence, it developed the form of a crisis of identity in a competitive society. It is true to say that it was swamiji's work and vision which helped the Punjabi Hindus to solve their identity crisis problem.<sup>36</sup>

Swamiji was proud of Indian culture which is very rich in all contents'. He did not have any sympathy with those Indians who believed or adopted western culture as their way of life. He observed that western culture and thought had no moral values and virtues like Indians. He amazed why they should feel inferior and feel ashamed of calling themselves as Indians.<sup>37</sup> He frankly asked the Indians, "why have you parted with your national pride and prestige? In the whole world, there is no country superior to India that's why it is called the land of God." He frankly admitted that that "culturally we are a far too superior nation we were sometimes world teacher. All education that spread in the world started originally from India then it went to Egypt, from there to Greece, from Greece to America and other countries.<sup>38</sup>

Swamiji emphasized that Hindi should be the national language as 'it is being spoken extensively in the larger part of the country'. This was such a language that based on the most scientific alphabets. However, he was Gujarati and knew his mother-tongue well but he gave to Hindi an utmost significance and wrote his famous work *Styarth Prakash* in this language so that a larger population could become familiar with the Vedic literature in which all sorts of knowledge is available.<sup>39</sup> He did not favour English as the medium of instruction but country's own language should take its place. It does not mean that he was opposed to western language, literature and modern sciences but was for greater preference to Vedic literature and Hindi language. He asserted that the great rishis produced a vast material, "digest their philosophy, assimilate their thoughts and then supplement such a kind of oriental learning with the occidental knowledge." Do not neglect the study of English as it is *Rajyabhasha*.<sup>40</sup> He emphasized that Indian must be conversant with "their own culture and traditions lest they should be anglicized to such an extent that they should know more about Bacon and Mill than about Kapila or Patanjali. "He tried to lay great stress on the study of Sanskrit not at the cost of Hindi.<sup>41</sup> Arya Samajists after the death of Swami paid special attention towards the knowledge of western language, literature, science and technology in the 20<sup>th</sup> century.<sup>42</sup>

The British writers and administrators in the Punjab such as Sir Mackworth Young, Sir Denzil Ibbetson, Sir Michel O'Dawyer, Sir Lepel Griffin, Sir Robert Egerton, Valentine Chirol, Hans Khon etc. raised fingers at the Arya Samaj and called it "a political movement as it played an important part in the seditious agitation in the Punjab and United provinces."<sup>43</sup> Even before the foundation of the Arya Samaj, Swami Dayanand was called "a rebel" by Lord Northbrook, the Viceroy of India (1873-76)<sup>44</sup>. Most of the officials asserted that the Arya Samaj was a political body which raised anti-British agitation in the Punjab. Valentine

Chisolm, the editor of the Times (London) visited India in 1907 and wrote a book *Indian Unrest* in which he fully recognized it as a political body which always engaged in anti-British agitation and activities, Sir Mackworth Young, Lt. Governor of the Punjab, was the first administrator who explicitly observed that the movement of the Arya Samaj was "the most active and at the same time most dangerous" in the Punjab.<sup>45</sup> Its leaders like Lala Lajpat Rai, Mahatma Hans Raj, Swami Shirdhanand refuted their statements and always called their movement purely a socio-cultural movement.<sup>46</sup> In the end, it may be pointed out that Swamiji's contribution in emancipating women regarding the child marriage; widowhood, polygamy, purdah sati, dowry and education was, undoubtedly, noteworthy.<sup>47</sup> It was socio-cultural movement that greatly contributed to the growth of new social consciousness from urban to rural elite and strengthened the feelings of self-reliance, confidence which engendered the militant nationalism to carry out his mission in India. He denounced idol worship, rites; rituals, dogmas and hegemony of the priestly class, and other socio-religious evils of the time.<sup>48</sup> A close and critical study of the Vedas and other contemporary literature had fully convinced him that the Indian people who had forgotten the "scientific and etymological systems"<sup>49</sup> must be made familiar with them again. He intended regeneration of the whole land of *Aryavarta* for the sake of the larger body of Hinduism. "He was a missionary and philosopher which joined his theology, morals, economics, politics together for the commonweal of the Indian people."<sup>50</sup> This was his real dharma.

#### References

1. Kohn, Hans, *A History of Nationality in the East* (London. 1929) pp.55-56.
2. Ibid.
3. Pollard. A.F., *The British Empire* (London. 1908) pp.38-39. Laski, H.J., *The Rise of European Liberalism* (London. 1937) pp. 29-30.
4. Desai. A.R., *Social Background of Indian Nationalism* (Bombay, 1917) p. 53.
5. Chandra, Bipan and others, *India's Struggle for Independence* (Delhi, 1987) p.83.
6. Desai, op.cit.,pp.290-91.
7. Yadav, K.C., *Autobiography of Dayanand Saraswati* (Delhi. 1976) pp.15-16.8. *ibid.*
8. *Ibid.*, pp. 17-18.
9. Garg, Ganga Ram, *World Perspectives on Swami Dayanand Saraswati* (Delhi, 1984) p.13.
10. *Ibid.*
11. Yadav, op. cit., p.18.
12. Muller, Max. *Biographical Essays* (London, 1884) p.64.14. *ibid.*
13. Desai, op. cit., pp. 163-164.
14. Jones, Kenneth W., *Socio- Religious Reform Movements in British India* (Delhi., 1994) p. 193.
15. *Ibid.*, pp. 98-103.
16. Desai, op.,ct., p. 291.
17. Singh, Pardaman an and S.P.Shukla (ed.) *Freedom Struggle in Haryana and the Indian National Congress, 1885- 1985* (Chandigarh,1985) p. 11:
18. *Ibid.*
19. Varma, V.P, *Modem Indian Political Thought* (Agra, 1971) pp. 29-30.
20. Sarma, D.S., *Hindustan Through the Ages* (Bombay, 1956) PP. 97-98.

21. Ibid., pp. 98-99.
22. Chhabra, C.S. *Advanced Study in the History of Modern India*. Vol.III (1920-1947) (Delhi, 1977) pp.67-68.
23. Ibid.,p.68.
24. Appadorai A, *Indian Political Thinking in Twentieth Century : From Naoroji to Nehru* (Oxford.1971) p.147.
25. Ibid.
26. Ibid, pp 147-48.
27. Pandit Bhagvaddatta ( ed.) *Swami Dayanand Ke Patra aur Vijnapana*, Part II (sonapat, 1981) pp.746-50.
28. Ibid.
29. Ibid.
30. Ibid.
31. Jones. Kenneth W., *Arya Dharam : Hindu Consciousness in 19 Century Punjab* (Delhi, 1976,) 1, p.185,315.
32. *The Indian Historical Review*, Delhi Vol. Nos. 1-2, pp. 290-91.35. Ibid.
33. Jones. Kenneth W., *Arya W, Arya Dharm: Hindu Consciousness in 19 Century Punjab* (Delhi-1976) 185, 315.
34. *The Indian Historical Review*, Delhi, Vol. Nos. 1-2. pp. 290-91, 35 Ibid.
35. Ibid.
36. Jones Kenneth W., *Arya Dharm* p.66
37. Dayanand. Swami, *Satyarth Prakash*, pp. 427-39.
38. Ibid.
39. Bhan, Suraj, *Dayanand : His Life and work* (Jallundur, 1956) p. 152-53.
40. Ibid., pp. 154-55.
41. Ibid.
42. Sharma, Shri Ram (ed.) *Lajpat Rai, A History of the Arya Samaj* (Delhi, 1967) p. 148.
43. Chirol, Valentine, *Indian Unrest* (London. 1910) p. 112.
44. Sen. N.B., *Wit and Wisdom of Swami Dayanand* (Delhi, 1964) p.7
45. Mackworth Young to Elgin (Viceroy of India) Simla, 15 July. 1887; Elgin Collection (National Archives of India, New Delhi).
46. Rai, Lajpat, *The Arya Samaj* (London, 1915). pp. 145-155.
47. Singh, Pardaman and S.P. Shukla, op. cit., p. 12.
48. Desai, op.cit., p. 292.
49. Arya Samaj, Calicut Branch (ed.) *Arya Sarmaj : Swami Dayanand Saraswati* (Calicut, 1924) p. 17.
50. Ibid., pp. 17-20.

# B. R. Ambedkar and The Politics of 'Kamma Niyama'

---

---

**Dr. Mukesh Kumar Jha**

*Assistant Professor, Department of Political Science, S. M. D. College,  
Punpun, Patliputra University, Patna*

**Abstract:** [Ambedkar read Buddha very differently. Through the philosophy of 'Kamma-Niyama', Ambedkar tries to bridge the balance between utopia and practice. The fine balance between utopia and practicability prey Ambedkar's philosophy to be misinterpreted and mis-incorporated by conservatives, particularly Neo-liberals. The essay tries to save Ambedkar from Neo-liberal skeleton and intends to place the philosophy of Ambedkar at its right place.]

**Keywords:** [ Kamma-Niyama, Buddhism, Responsibility, Common Moral Order, Liberty, Economics, Laissez-faire, Developmental State]

I

This essay assumes the importance of ideas in (re)structuring the society. The essay takes the ideas/concepts/thesis of B. R. Ambedkar and invoke it into the economics. The next task will be to speculate the shape of restructured/reformulated society if the society and the economics of society are supposed to be based on the philosophy of Ambedkar. It also requires establishing causality, if any, between ideas and economics, and hence it requires a clear conceptual distinction of economics from economy. Philosophy of a philosopher can be the mix up of moral and amoral depending on the several contextual factors. To me, philosophy is always a disproportional mix-up of the same duality i.e. moral and amoral. Even the time, contexts and several other factors are important to understand why a set/sub-set of philosophy becomes moral or amoral in different contexts or in different time-periods. So, my intention will be to concentrate on one philosopher and interrogate the consequences of invoking his/her ideas into economics, without giving much attention to the moral/amoral aspects of philosophy. Conceptual mix-up (incorporating ideas of philosophers into economics) can be virtuous, less-virtuous or non-virtuous but not the hazardous.

I am placing the two concepts (one from the philosophy of a thinker and the other from the established domain of economics) in interaction and intends to reach, if any, at the new sub-concepts having the proper mix of accuracy and precision as far as the new conceptual boundary is concerned. Accuracy and the precision, in the sub-concept formation or in the mere interactions of concepts, is the important requirement of this essay. But what is this accuracy and precision and how is it relevant for social science in general and for the purpose of this paper, in particular?

There has been a long debate about relation between science and non-science or social science. Its history can be traced from the time of positivists to post-positivist till present. I do not want to engage in the debate of science and non-science. My only aim is to take certain motivational directions from science to evaluate the few aspects of social science. In the field of science, particularly the measurement, accuracy and precision bear the important position. Accuracy in a measurement refers to the degree of closeness of the measured

quantity  $x$  to the quantity's true value  $X$ . On the other hand, Precision of a measurement system refers to the degree to which repeated measurements under same conditions show the same results. In short, precision is related to repeatability and reproducibility<sup>1</sup>.

A measurement system can have four aspects: first, it can be accurate but not precise; second, it can be precise but not accurate; third, it can be neither and fourth, it can be both. For instance - if any experiment has systematic error, precision can be improved by expanding the sample size but it cannot make the measurement more accurate. On the other hand, if we eliminate systematic error it will increase the accuracy but the precision will not change.

How does this understanding of accuracy and precision help us to understand the conceptual boundaries of a new concept and the location of the same in the social science? To understand this one has to, first, look into the limitations of framework of accuracy and precision in the social science. Accuracy and precision of a measurement system is relatively easier to know as we have true value of the quantity against which the case of accuracy and precision has been attempted to calculate. In social science, on the other hand, we do not know the true or actual boundaries of a concept i.e. responsibility, liberty and the shared fate (which I will be discussing in the next section with the help of Ambedkar's philosophy), as the concept is itself a contested one. If this is so, how can the framework of accuracy and precision will be helpful for the larger understanding of my purpose.

In social science, the framework of accuracy and precision is not used in the same way as in natural sciences. The intent to be more accurate and precise or one of them in concept formation becomes the dominant intent in social science even in the absence of agreement over true or actual conceptual boundary of a concept. The differential notion in the concepts is the prime evidence which captures the concern of being accurate or precise but none the both in the sub-concept formation. The sub-concept I am dealing in this essay, common moral order, shows the extreme sign of precision but remains silent on the issue of accuracy in its conceptual understandings. It broadens the sample to be verified but the conceptual blurring it deploys tries to destroy the associated essence of common morality as such. Precision is not the only justificatory boundaries of conceptual imaginations; rather it should be complimentary with the accuracy aspects of the same. The detail discussions of precision and accuracy dilemma of the concept will be discussed in the next section. For the moment let me come to the limitations of over-reliance on precision aspects.

Heisenberg Uncertainty Principle, in quantum mechanics, has one important lesson to teach for our project irrespective of its some of its principles/ assumptions have come under heavy challenges in last three decades. Uncertainty principle, generally, asserts the limit to the precision with which two complementary variables i.e. positions and momentum of a particle can be known simultaneously. Werner Heisenberg, a German physicist, argued that the more precisely the position of some particle is determined, the less precisely its momentum can be known, and vice-versa<sup>2</sup>. How are the arguments and assumptions of uncertainty principle important for our understanding of the themes of this essay? The problem/challenges which will come before me is: whether to be precise on the argued concept of philosopher or the concept of economics with which I am supposed to incorporate the ideas of philosophers. Being precise on one would come at the cost of other. So, my

task will be to strike a balance between the precision aspects of both the concept as well as the proper mix of accuracy and precision.

The essay is structured into four sections. The next section will, briefly, intend to justify the selection of Ambedkar's thesis as the subject of study of this paper. It will also mention the particular aspects of Ambedkar's philosophy which will be the subject of discussion throughout the paper. The third section will, in detail, explain the Ambedkar's philosophy of 'Kamma-Niyama' and its associated notion(s). The last section would try to incorporate the philosophy of 'Kamma-Niyama' into the economics and will also discuss the directional configuration of the effect of the said incorporation.

## II

Ambedkar, in his writings and speeches, subjected existing 'Buddhisms' to a severe critique, and attempted to build institutions and practices which were conducive to the expansion of Buddhism. He, therefore, reinterpreted Buddhism and wrote a magnificent book on Buddhism 'The Buddha and His Dhamma' which got published after his death in 1957<sup>3</sup>. The book 'Buddha and His Dhamma', henceforth BHD, is not the religious text as was interpreted by several commentators. Several sympathetic scholars have interpreted Ambedkar's work very differently. They compared Ambedkar's Buddhist writings and the movements associated with it to contemporary 'religions of the oppressed'<sup>4</sup> or to a form of 'liberation theology'<sup>5</sup>. Ambedkar do not acknowledge the originality of the book BHD but only the originality of presenting the Buddha's teachings and philosophy in consistent way<sup>6</sup>. But, it could be found that he endorses Buddha's philosophy as emancipatory and conceptualizes his own philosophy in such a way which does not go against essence of Buddha's teachings. The evidence could also be found on 15 October 1956 when Ambedkar publicly embraced Buddhism in Nagpur and subsequently admitted an estimated 380,000 men, women and children in the presence of other bhikkhus.<sup>7</sup> My aim in this essay is to concentrate only on the philosophy of 'Kamma-Niyama' in the book BHD. This essay will not be intended to enquire whether Ambedkar's interpretation of Buddha's 'Kamma-Niyama' is false or correct. I will be taking Ambedkar's understanding of 'Kamma-Niyama', through the reinterpretation of existing Buddhisms, as the starting point under the assumption that Ambedkar endorses this philosophy<sup>8</sup>.

## III

Ambedkar portrayed Buddha making distinction between Religion and Dhamma<sup>9</sup>. Ambedkar saw the place of morality in Dhamma but the same was absent in religion. In Ambedkar's words, "Every religion preaches morality, but morality is not the root of religion".<sup>10</sup> In his work Ambedkar makes morality the root of religion. In Ambedkar's reconstruction of Buddhism, morality is placed at the centre and religious beliefs are supposed to rotate around it<sup>11</sup>. His concept of Dhamma raises the human being above religion and Dharma. It breaks the barrier of caste, creed, sex, region, religion, language and even geographical boundaries. It integrates humanity in one and promises to uphold the dignity of human being and accept the utility and relevance of everything. It centers on the human being and the universe.

Philosophy of Dhamma believes that all compound things impermanent<sup>12</sup>. There is impermanence of composite things, individual beings and the self-nature of conditioned things. All things are produced by the combination of causes and conditions, and have no independent noumenon of their own. When

the combination is dissolved, their destruction ensures<sup>13</sup>. Therefore, as for natural things, so too for human and social entities, the cause for their dissolution is inbuilt into them and accompanies them. Accordingly, the cause behind the moral order of the universe is not God, or historical laws, but 'Kamma-Niyama', man's action. Moral order of the universe may be good or bad but it rests on man and nobody else. Philosophy of Dhamma does not put the onus on the God or Divine for the production and maintenance of moral order in Human Society. It is the Kamma Niyam or Causation which produces the moral order in Human Society and its Vipaka (effect) sustains the same.<sup>14</sup> Ambedkar writes: the theory of the law of Kamma does not necessarily involve the conception that the effect of the Kamma recoils on the doer of it.<sup>15</sup> Could not 'responsibility' be undermined, if the consequences of an action do not have a pertinent bearing on the concerned agent, but have a wider impact on the community/world?<sup>16</sup> On the contrary, could not the scope of personal freedom will be compromised, if an agent is closely monitored/disciplined anticipating the impact of an agents' action on the larger community/society.<sup>17</sup> Ambedkar, in the same book, argues that a society who has chosen Dhamma, plus the Magistrate wherever people fail to observe the Dhamma is the best, compared to society where people do not choose Dhamma or where they choose the police (dictatorship) as an instrument of government as an instrument of government.<sup>18</sup> Yashant Sumant argues that Ambedkar looked upon the state as a supervisor for properly observing the rules of the game, but this does not mean that Ambedkar looked upon the state as an embodiment of morality.<sup>19</sup> But, he himself contradicts this point with his argument in the preceding passage where he portrays Ambedkar who preferred to locate morality into the modern state by way of adopting a democratic constitution guaranteeing liberty, equality, and fraternity to the people at large. But, the important question remains: a). what role Ambedkar saw for modern state in 'Dhamma'? b). If he saw the role of state as a supervisor where people fail to observe Dhamma, what kind of supervising role he gave to state? c). If answer is passive supervising role, it would be completely inconsistent with philosophy of Navyana Buddhism developed by him. If answer is active supervising role, then problem comes in situating the responsibility with defaulter people if the effect of the Kamma does not, necessarily, recoil on the doer of it.

If the responsibility lie with the defaulter people, not the common moral order, the social arrangement will not be arranged on something called 'shared fate'. In the modern time, where market is asserting its position effectively, in relation to other actors and institutions in society, it becomes important to check the social inequalities generated by market through the logic of 'shared fate'.

Dhamma<sup>20</sup> is central to the philosophy of Buddhism. Dhamma has very essential things to say on shared fate. Philosophy of Dhamma conceptualises shared fate in the language of morality. Morality has social connotations as it comes only wherein man comes in relation to man.<sup>21</sup> Philosophy of Dhamma does not stop at morality, rather, argues that morality along with sacredness and universality promotes fraternity in society. On the concept of shared fate Dhamma has very important to say. In philosophy of Dhamma, all aspects: morality, sacredness, universality and fraternity have important function to play. Sacredness of morality is required for protecting the best and rejection of the survival of fittest. Universality of sacred morality is required for sustenance of common rules of morality which could be made effective only by making fraternity universally effective. In the absence of fraternity there will be liberty

for some, but none for the majority; equality for few, but none for the majority.<sup>22</sup> It is the fraternity which would ensure the social arrangement on the principle of shared fate. It is the notion of shared fate which becomes the foundation of Buddhist philosophy of Kamma Niyam. On the question of how to maintain moral order in human society Buddha answered Kusala Kamma produces good moral order and helps to sustain it and Akusala Kamma does the reverse of it. Since action must follow effect, each action has pertinent bearing on common moral order. Also, there may be time interval between the moment when Kamma is done and the moment when the effect is felt.<sup>23</sup> Since there may be time interval between action and its effect, and also individual is mortal; Buddha act tactically to place responsibility on common moral order. Placing responsibility on common moral order rather than on the concerned agent also signifies the Buddha's conceptualisation of human society on shared fate.

On the concept of creed and its consequences for production and maintenance of human society, also, Buddha has enough to say. Buddha's philosophy of Nibbana has three connotations and it is essential to Buddha's Dhamma. These are: Nibbana as happiness of a sentient being, happiness of a sentient being in Samsara when he is alive, and the exercise of control over the flames of the passions which are always on fire.<sup>24</sup> How can Nibbana give happiness? People are unhappy, Buddha argues, not just because he/she is in want. People are unhappy even in the midst of plenty. So, unhappiness is the result of greed to those who have as well as who do not have.<sup>25</sup> In simple words, it is the craving which is the major source of human's unhappiness. Philosophy of Nibbana argues to enough control, not the annihilation, over passion as craving so as to enable one to walk on the path of righteousness.

Let us, now, progress in the next section with the same open-ended question, but under the logic of shared fate and Nibbana, and try to incorporate it into the economics.

#### IV

Economics is a form of social arrangement under a complex set of logic. A surface reading of common moral order can recommend a free-market or *lassie-fair* form of arrangement of society. The thesis of common moral order puts the onus on the collective and assumes that agent's action have effect on the moral order of society. Good action boosts moral order and bad action deteriorates it. The same logic has been put forward by the neo-liberal theorists in defense of autonomous functioning of market. Neo-liberals assume that individuals are rational, and hence, are capable to judge his/her actions before their deployment in the social matrix. Perfect functioning of market will bring the egalitarian logic of social inclusion and capability building of individual agents. Any attempt to shape the functional order of market by state or any dominant external agencies would be a direct interference with the individual's capacity to undertake action(s) as he sees fit in consonance to the requirements of basic common moral order. Neo-liberal will give the example of success of Bangladesh's micro-finance program and its success to quote that even the market can bring egalitarian transformation in society and can make people more capable.

The important interjection, therefore, at this juncture comes, are: Does Ambedkar's interpretation of Buddha's Kamma-Niyama was a strategy of Ambedkar to advocate society on the logic of Neo-liberalism or the free-market economy? If this so, how would it be in congruence with the other powerful social and political philosophy of Ambedkar as well as of Buddha?

Surely, Neo-liberal interpretation of Ambedkar's theory of Kamma-Niyama is inconsistent with the other emancipatory theories. So, the new point comes is: does this inconsistency has root in the philosophy of Ambedkar or is it because of faulty incorporation and invocation of Ambedkar? To my mind it is because of the latter reason. The problem could arise if we invoke theorists by wrongfully incorporating him/her to serve our foundational system of knowledge. Careful reading of BHD speaks very differently and it could be used in very different way in the economics. I think Ambedkar's philosophy of Kamma-Niyama should be read in consonance with the concept shared fate and nibbana. Actors in the economics, in Ambedkar's framework, should possess the wider element of nibbana i.e. self-control. The major social interactions amongst people should follow under the logic of shared fate. The contemporary experience of Hurricane Katrina in USA demands the urgent inclusion of shared fate as the unit of social arrangement for the effective institutionalization of social citizenship. Racial discrimination was clearly visible in the state's as well as non-state's actions in post-Katrina scenario, especially in the relief work. This aspect clearly shows that having citizenship in the sense of territoriality is not enough to institutionalize equality in a society, but an additional ingredient i.e. all the people should be included in the spheres of civil society and also as a people having equal moral worth. And, this will be possible only under the institutionalized form of shared fate. Ambedkar, nevertheless, understood the social complexity and realized that all people in the society do not possess equal moral worth. So, for him an idealized society becomes the one in which Dhamma and magistrate is both present, but the role of magistrate is only remedial. Ambedkar did not placed morality in the state. He only thought that where people fail to observe dhamma, magistrate should have the role of corrective. So, Ambedkar's idea of market and market oriented growth with the help of state is not the same as that of theorists of Developmental State. For Ambedkar, role of state is only remedial. Remedial in the sense, that the present social arrangement requires state to correct the immoral actions of individual which will have definite effect on the common moral order. In a context of all round inequalities and discrimination, in my view, Ambedkar would be prescribing for the role of state in development and the regulation of market. But once the notion of shared fate and Nibbana creeps in the minds of people and in the social arrangement, role of state will be unnecessary and market will also function in the same egalitarian framework.

#### Footnote

- <sup>1</sup> W. M. Stallings and G.M. Gillmore, 'A Note on "Accuracy" and "Precision"', *Journal of Educational Measurement*, Vol. 8, No. 2, Summer 1971, pp. 127-129.
- <sup>2</sup> See, J. Oppenheim and S. Wehner, 'The Uncertainty Principle Determines the Nonlocality of Quantum Mechanics', *Science*, New Series, Vol. 330, No. 6007, Nov. 2010, pp. 1072-1074.
- <sup>3</sup> See, Aakash Singh Rathore and Ajay Verma, eds., *B. R. Ambedkar: The Buddha and His Dhamma – A Critical Edition*, New Delhi: Oxford University Press, 2011.
- <sup>4</sup> Fiske, 'Understanding', p. 103.
- <sup>5</sup> Bharat Patanakar and Gail Omvedt, 'The Dalit Liberation Movement in Colonial Period', *Economic and Political Weekly*, XIV, pp. 409-24.
- <sup>6</sup> See, Aakash Singh Rathore and Ajay Verma, eds., *B. R. Ambedkar: The Buddha and His Dhamma – A Critical Edition*, New Delhi: Oxford University Press, 2011, p. xxvii.
- <sup>7</sup> Dhananjay Keer, *Dr Ambedkar: Life and Mission*, Bombay:, 1962.
- <sup>8</sup> Though I start the next section with the 'assumption' that Ambedkar's endorsement to Buddhist philosophy is his own project and intentions, there are several academic literatures

which argues in the same line. For greater clarity see, Fitzgerald, Timothy, 'Ambedkar, Buddhism and the Concept of Religion', in S.M. Michael ed. *Dalits in Modern India: Visions and Values*, New Delhi: Vistar Publications, 1999, pp. 118-134; Pradeep P. Gokhle, 'Universal Consequentialism: A Note on B.R. Ambedkar's Reconstruction of Buddhism with Special Reference to Religion, Morality and Spirituality', in Surendra Jondhale and Johannes Beltz ed. *Reconstructing the World: B.R. Ambedkar and Buddhism in India*, New Delhi: OUP, 2004, pp. 120-131; A. K. Narain, 'Dr. Ambedkar, Buddhism and Social Change', in A.K. Narain and D.C. Ahir ed. *Dr. Ambedkar, Buddhism and Social Change*, New Delhi: B.R. Publishing, 1994, pp. 77-98; Christopher S. Queen, 'Ambedkar, Modernity and the Hermeneutics of Buddhist Liberation', in A.K. Narain and D.C. Ahir ed. *Dr. Ambedkar, Buddhism and Social Change*, New Delhi: B.R. Publishing, 1994, pp. 99-122

<sup>9</sup> See, Aakash Singh Rathore and Ajay Verma, eds., *B. R. Ambedkar: The Buddha and His Dhamma – A Critical Edition*, New Delhi: Oxford University Press, 2011, pp. 167-173.

<sup>10</sup> Ibid., 170

<sup>11</sup> Ibid., 171

<sup>12</sup> Ibid., 129

<sup>13</sup> Ibid., 130

<sup>14</sup> Do *kusala kamma* so that humanity may benefit by a good moral order which a *kusala kamma* helps to sustain; do not do *akusala kamma* for humanity will suffer from bad moral order which an *akusala kamma* will bring about. (see Aakash Singh and Ajay Verma ed. 'B.R. Ambedkar: The Buddha and His Dhamma - a critical edition', p. 132).

<sup>15</sup> Ibid., p. 132

<sup>16</sup> In one of my paper, earlier, I had tried to resolve this question, unsuccessfully, in the following words: "Individual comes and goes but common moral order sustains. Viewing this, if responsibility of an action has bearing on individual it would be impermanent, transitory despite the fact that effect of some action could be seen long time after its actualization. If action has no immediate effect how the responsibility could be laid on the alleged individual? It is this uncertainty which prompted Buddha to act wisely and place responsibility over the common moral order. This alteration is not deviant from acceptance of responsibility rather responsibility is placed in wider framework irrespective of the time gap of effectual actualization of alleged action."

<sup>17</sup> In the same paper I have tried to resolve this dilemma in the following words: Dhamma saw individual as moral being. But craving has inflicted the slavery over individual. It is the personal dependence of individual over worldly impermanent matter which is causing harm to the individual liberty. How to get rid of this dependence? Buddha did not remove the dependence. He just diverted personal dependence into dependence on common moral order. This diversion did not cause the loss of individual liberty rather it established the liberty in pure and sustained form.

<sup>18</sup> See Aakash Singh Rathore and Ajay Verma, 'B.R. Ambedkar: The Buddha and His Dhamma - a critical edition', p. 132.

<sup>19</sup> See Yashwant Sumant, 'Situating Religion in Ambedkar's Political Discourse', in Surendra Jondhale and Johannes Beltz ed. *Reconstructing the World: B.R. Ambedkar and Buddhism in India*, OUP, 2004.

<sup>20</sup> Concept of 'Dhamma' in Buddhism is radically different from Buddha's predecessors' and also fundamentally from common understanding of religion. Dhamma is essentially social, unlike religion which is personal. Unlike religion, dhamma keeps morality at the centre and religious beliefs at the periphery. Purpose of dhamma, unlike other religions, is to make the world a kingdom of righteousness.

<sup>21</sup> A. S. Rathore and A. Verma, *Buddha and His Dhamma: A Critical Edition* (New Delhi: OUP, 2010). P.171.

<sup>22</sup> Ibid., 173.

<sup>23</sup> Ibid., 132.

<sup>24</sup> Ibid., 126.

<sup>25</sup> Ibid

# A Comparative Study of Adjustment Pattern of High and Low Achievers as Related to Their Academic Achievement

---

---

Dr. Shashi Kala Singh

*University Dept. of Psychology, Ranchi University, Ranchi*

## Abstract

Effort has been made to examine the adjustment pattern of high academic achiever and low academic achiever. 150 school students (75 high achievers and 75 were low achievers) were administered Mohsin-Shamshad Adaptation of Bell Adjustment Inventory to examine whether the high and low achievers differ in terms of their adjustment patterns with regard to home, health, social and emotional areas. The result reveals that the high achievers have significantly better adjustment in comparison to low achiever.

*Keyword: High and low achievers and adjustment*

## Introduction

The impact of the busy schedule and social change in the present scenario has caused a drastic change in youngsters and this is very much known to us. The change in the society is not only affecting one dimension but various dimensions and this has affected our education system to a large extent. Ever increasing load on studies, higher expectation of the parents towards their children's result, increasing level of competitive spirit, etc. has increased the level of stress on the youngsters, which becomes difficult for them to adjust in their environment.

The present scenario is dependent mostly on economic status and every person is in the race of earning more and more money to spend their lives with comfort and luxury. By the time the students reach the level of 10<sup>th</sup> and 12<sup>th</sup> they need to decide the stream in which they want to continue their studies or sometime such decisions are imposed by **their parents**. If the decision taken by the parents match with that of the child then it is acceptable, if not it will add to the tension and stress, thereby making it difficult for them to accept the decision being imposed and adjust accordingly.

The concept of adjustment was originally biological on and was concerned with adaptation to physical environment from survival. Adaptation to physical environment is of course a person's important concern. But he has also to adjust to social pressures and demands of socialization that are inherent in living inter-dependently with other persons.

One of the problems faced by the educational institutions is the maladjusted behavior shown by some students. It is not uncommon to find some students suffering from anxiety, stress, insecurity, mild depression and other related problems which affect their academic achievement. Some studies have been conducted to explore the effect of adjustment on scholastic performance. The general finding has been that scholastic achievement of students is adversely affected by psychological problems associated with adjustment (Ameerjan, 1983; De and Singh, 1970; Gupta, 1970; Mottoo, 1994; Miya and Krishna, 1996; Orpen, 1976; Sharma and Manju, 1993). De and Singh (1970) examined the role of home adjustment as a determinant of academic motivation. The sample for the study consisted of 220 students of class V111 and IX. The results showed that students with high academic motivation had better adjustment. Gupta (1970) compared high and low scholastic achievers on measures of adjustment and found that satisfactory adjustment boosted up scholastic achievement while anxiety and depression had negative effect on scholastic achievement. Sinha (1966) found that high achievers tended to be more adjusted in the area of home, health and society. The low achievers were poorer with regard to intelligence and were more anxious and inferior in general adjustment. Mattoo (1994) compared high and low creative students on their level of adjustment, scholastic achievement and vocational interests. Results indicated that adjustment had an important role in creatively and scholastic achievement. Daulta (2008) studied the impact of home environment on the scholastic achievement of children. The study was conducted on a sample of 220 students drawn from Senior Secondary School of Panipat. Results showed that good quality of home environment had significant positive correlation with high level of scholastic achievement. This finding demonstrates that home adjustment affects scholastic achievement significantly. Chauhan, (2006) in his research work, observed that male rural student group was significantly lower than their urban counterparts on neuroticism.

## **Material and Methods**

### **Sample**

The sample of the proposed study will be selected from the Ranchi District. One hundred and fifty (150) school students studying in XI will be selected by a stratified random sampling technique.

The sample will be selected in two stages. In the first stage, three schools of Ranchi will be randomly selected. In the second stage, high academic achiever and low academic achiever will be identified from XI on the basis of marks obtained in class X Final Examination. The high academic achievers (75) will be those students who obtained 60% or more marks and low academic achiever (75) will be those, who had obtained below 45% marks.

### **Tools**

1. Personal Data Questionnaire.
2. Mohsin Shamshed Adaptation of Bell's Adjustment Inventory (Hindi Form).

**Result and Discussion**

Comparison of High and Low Achievers in terms of Adjustment variables. (N=75 in each group).

*Table 1: Comparison of Home Adjustment Scores of High and Low Academic Achievers.*

<i>Variables</i>	<i>Group</i>	<i>Mean</i>	<i>SD</i>	<i>t-Value</i>
Home	High	9.46	4.79	2.21
	Low	11.36	4.63	

N.B. Significant at 0.05 level

The findings in table 1 are obvious that the mean of home adjustment scores of high achiever (9.46) is lower than the mean (11.36) of low achiever. The obtained t-ratio of 2.21 is significant at .05 level, indicating that both groups differ significantly in terms of their home adjustment.

*Table 2: Comparison of Health Adjustment Scores of High and Low Academic Achievers.*

<i>Variables</i>	<i>Group</i>	<i>Mean</i>	<i>SD</i>	<i>t-Value</i>
Health	High	9.15	4.55	5.50
	Low	12.56	2.83	

N.B. Significant at 0.01 level.

Table 2. The high achievers has obtained a mean of health adjustment score (9.15) is lower than the mean (12.56) of low achievers. The obtained t-ratio of 5.50 is significant at .01 level, indicating that both groups differ significantly in terms of their health adjustment.

*Table 3: Comparison of Social Adjustment Scores of High and Low Academic Achievers.*

<i>Variables</i>	<i>Group</i>	<i>Mean</i>	<i>SD</i>	<i>t-Value</i>
Social	High	9.56	4.97	3.88
	Low	13.56	7.45	

N.B. Significant at 0.01 level.

In table 3 the high achievers has obtained a mean of health adjustment score (9.56) is lower than the mean (13.56) of low achievers. The obtained t-ratio of 3.88 is significant at .01 level, indicating that both groups differ significantly in terms of their social adjustment.

*Table 4: Comparison of Emotion Adjustment Scores of High and Low Academic Achievers.*

<i>Variables</i>	<i>Group</i>	<i>Mean</i>	<i>SD</i>	<i>t-Value</i>
Emotion	High	10.44	6.01	2.30
	Low	12.68	5.98	

NB: Significant at 0.05 level

In table 4 the high achievers has obtained a mean of emotion adjustment score (10.44) is lower than the mean (12.68) of low achievers. The obtained t-ratio of 2.30 is significant at .05 level, indicating that both groups differ significantly in terms of their emotional adjustment.

The findings presented reveal that the high achievers have scored lower on home, health, social and emotional dimensions of adjustment than the low achievers. Since high scores on Bell Adjustment Inventory signify poor adjustment and low scores better adjustment. High achievers on Bell Adjustment inventory significantly high adjustment than low achievers, it can be said that the low achievers suffer more from adjustment problems than the high achievers.

### **Conclusion**

The comparison of the high and the low achievers in respect of home, health, social and emotional dimensions of adjustment has yield significant t- values of 2.21, 5.53, 3.77 and 2.30 respectively. The findings of the present study have support from the observation made by Daulta (2008), De and Singh (1970), Gupta (1970), Sinha (1966), and several others. They report that the high achievers tend to be more stable and adjusted in different situations than the low achievers.

### **References**

- Ameerjeen, M.S. (1983): Personality and academic achievement of schedule caste schedule tribe college students of agricultural science. A comparative study. Unpublished Ph.D. Thesis, Bangalore University.
- Chauhan, P. R. S. (2006): Adjustment of College Students in relation to some personality characteristics, Doctoral Dissertation unpublished Thesis, B.R.Ambedkar Bihar University, Muzaffarpur.
- Daulta, Meena Siwach nee. (2008): Impact of home environment on the scholastic achievement of children. *J. Hum. Ecol.* 23 (1): 75-77.
- De Bimleshwar and Singh, R. (1970): Home adjustment as a determinant of academic motivation, *Indian Educational Review*, 5(2), 52-58.
- Gupta, H.G. (1970): A comparative study of the personality characteristics of high and low achievers as related to their academic achievement. *The Rajasthan Board Journal of Education*, 6, 29-35.
- Mattoo Mohammad Iqbal.(1994): Vocational interests, adjustment problems and scholastic achievement of high and low creative students. *Indian Educational Review*, 29 (1&2). 86-88.
- Miya, I and Krishna, K.P. (1996): Adjustment problem among socio-Economically deprived adolescents. *Indian Journal of Psychol. Issues*, Vol. 4 (1), 32-35.
- Orpen, C. (1976): Personality and academic attainment: A cross- cultural study, *British Journal of Educational Psychology*, Vol. 46 (2), 220-222.
- Sharma, Mukta and Mehta, Manju. (1993): The effect of discordance between interest and chosen curriculum upon psychological adjustment and academic achievement. *Indian, Journal of Psychometric and Education* 24 (1), 25-30.

# A Comparative Study – Insecurity among Co- Education and Single Gender Education School Students

---

---

Dr.Smritikana Mitra Ghosh

## **Abstract**

The present investigation was conducted with a view of comparative study on Insecurity feeling of co-education and single gender education school students of Ranchi. Sample consisted of 160 students out of whom 80 were from co-education and the other 80 were single gender education schools of Ranchi having age range 17 - 18 years. All of these belong to middle socio-economic status. Security - Insecurity Scale developed by Shah was administered to know about the insecurity level of the students. Findings revealed no significant difference between co-education and single gender education school students on Security - Insecurity Scale.

In present educational environment girls and boys study in either co-educational or single gender education schools. In India, boys are said to do better in single gender classrooms because of the varying educational needs of boys when compared to girls. However, the number of single-gender schools has dropped substantially over the past 40 years. Before the 19th century, single-gender schooling was common. During the 19th century, more and more co-educational schools were set up. Together with mass education, the practice of co-education was universalized in many parts.

## **Co-education**

Education of girls and boys in the same institutions. The system of education in which both girls and boys attend the same institution or classes.

## **Single Gender Education**

A school that is for either girls or boys, but not both.

Schools are one important place where children have contacts with their peers, form friendship, and participate in social groups with other children. As children grow from infancy through adolescence, peers are increasingly important in their lives. Their interactions become more complex with age. In adolescence- peer relationship affect whole personality. Girls and boys have different characteristics, needs etc. to each other, therefore people think that due to these differences it is must to provide different educational conditions and for this purpose tradition of co-education emerges. But with the modernization of society people think that for development of an androgynous personality of individual or for better development of individual, it is must to provide that type of educational condition in which individual easily understand

the characteristics of their opposite gender and for reducing antagonism, the trend of co-education emerges.

Co-educational schools offer students the opportunity to exchange a broad range of opinions and viewpoints with their peers since the schools comprise a mixed gender student body. In a co-educational learning environment, students are exposed to both male and female role models. Both girls and boys at co-ed schools have positive self-images, are socially well adjusted, and enjoy being challenged. Students at co-ed schools responded in the survey that they make friends easily with members of the opposite gender and that their peers are more likely to respect members of the opposite gender. Again, student responses confirm that independent co-education schools foster an environment that prepares students for real-world experiences and situations.

There are many advantages and hardly any disadvantages in the co-educational system of education. The first advantage is that if boys and girls are taught together, there will not be any need for opening separate schools for girls and boys. Co-education is an economical system, because both girls and boys can study in same schools and they can be taught by the same staff. Girls and boys have to live together in the society in their later lives and if they are taught together from the very beginning, they can understand each other well. The girls will not feel shy in the presence of boys. The boys will also not tease the girls. It is also a common experience that the boys behave decently in the company of girls. They do not use rough and abusive language in the presence of girls. They also dress properly and talk mannerly. The girls will also lose their fear of the boys if they are taught with them. On the other hand if boys and girls are taught in separate schools, boys misbehave with the girls. The boys always have a curiosity to know about them. But when they study together, their curiosity is satisfied and they do not consider girls as strange creatures.

*Co-education schools offer:*

- A diverse student body that reflects both genders
- Preparation for real-world experiences and situations
- Exposure to male and female role models
- Exposure to different leadership styles
- Exposure to diverse values and lifestyles
- A rich academic experience
- Encouragement of wide-ranging opinions and ideas
- Preparation of boys and girls to become leaders
- Creation of a good learning and social environment in the classroom
- Nurturing confidence in boys and girls.

Many parents in India admit their daughters only in the girls' schools rather than in those that focus on co-education. Everybody knows the reason behind it. All this stems from the insecure feeling that prevails among the parents regarding their daughters' safety. They also fear that co-education will develop immoral relationship between girls and boys. They believe that in this system both the girls and boys will be spoilt these arguments do not hold much water.

Insecurity is a word we often use in our conversation. We all were insecure. No human being is exempt from feeling of insecure as long as they are living in a community of other people. The condition or quality of being insecure, want to safety, danger, hazard; as, the insecurity of a building liable to fire, insecurity of a bed. Insecurity comes in a different shapes and forms in our lives, causing negative feelings to overshadow our true worth. Having loads of insecure feelings cause one to enjoy less of life and robs him of the chance to realize his full potential. Kids feel insecure when they don't have or don't find their parents around. We are social beings. We are dependent on each other for our physical and emotional survival and, we want to be accepted and appreciated by others around us so we can feel a sense of reciprocity in our network of relationships.

### Hypothesis

The security - insecurity of adolescent girls and boys coming from co-education and single gender education school does not differ significantly.

### Method

#### Participants

The sample consisted of 160 students out of whom 80 were from co-education and the other 80 were from the single gender education school of Ranchi town between 17 and 18 years (mean age 17.3 years) volunteered for this study.

#### Instrument

##### Security- Insecurity Scale (SIS)

This test was developed by Shah (1989). It contains 75 items and measures security in eight areas-family security, school security, security peer group, study context security, prospective context security, test context security, self context security and existence context security. It is meant for 10<sup>th</sup> to P.G level students of both the genders. It is a highly reliable and valid instrument.

#### Procedure

The Security- Insecurity Scale was administered to both groups with instructions to complete all questions honestly and not to discuss the questions with fellow students. Scoring was done according to the respective scoring keys. In order to fulfill the objective of the study the score obtained were analyzed with mean, SD's and t values.

### Result and Discussion

*Table 1: Means, SDs and t value of co-education and single gender education girls student on Insecurity Scale.*

<i>Groups</i>	<i>Means</i>	<i>SDs</i>	<i>t value</i>
Co-education	30.55	5.52	0.79 (NS)
Single Gender Education	31.55	5.61	

NS: Not Significant

*Table 2: Means, SDs and t value of co-education and single gender education boys student on Insecurity Scale.*

<i>Groups</i>	<i>Means</i>	<i>SDs</i>	<i>t value</i>
Co-education	34.42	5.86	0.29 (NS)
Single Gender Education	34.8	5.89	

NS: Not Significant

The purpose of the present study was to investigate whether; co-education and single gender education school students differ on insecurity feeling. To examine the framed hypothesis t – test was applied to find out the significant differences among mean scores of two groups. Results are mentioned in the Table – 1 and 2. The result clearly revealed that there is no significance in insecurity feeling among co-education and single gender education school students (girls & boys). Hence null hypothesis is accepted. The result does not significant.

### **Conclusion**

The findings of the present study indicated that there is no significant difference between co-education and single gender education school students on insecurity feeling.

# Job Satisfaction and Industrial Psychology

---

---

Sidam Singh Munda

*Assistant Professor, Sahibganj College, Sahibganj*

Job satisfaction describes how content an individual is with his or her job. The happier people are within their job, the more satisfied they are said to be. Job satisfaction is not the same as motivation, although it is clearly linked. Job design aims to enhance job satisfaction and performance, methods include job rotation, job enlargement and job enrichment. Other influences on satisfaction include the management style and culture, employee involvement, empowerment and autonomous work position. Job satisfaction is a very important attribute which is frequently measured by organizations. The most common way of measurement is the use of rating scales where employees report their reactions to their jobs. Questions relate to rate of pay, work responsibilities, variety of tasks, promotional opportunities the work itself and co-workers. Some questioners ask yes or no questions while others ask to rate satisfaction on 1-5 scale (where 1 represents “not at all satisfied” and 5 represents “extremely satisfied”).

## **Definitions**

Job satisfaction has been defined as a pleasurable emotional state resulting from the appraisal of one’s job; an affective reaction to one’s job; and an attitude towards one’s job. Weiss (2002) has argued that job satisfaction is an attitude but points out that researchers should clearly distinguish the objects of cognitive evaluation which are affect (emotion), beliefs and behaviours. This definition suggests that we form attitudes towards our jobs by taking into account our feelings, our beliefs, and our behaviours

## **History**

One of the biggest preludes to the study of job satisfaction was the Hawthorne studies. These studies (1924-1933), primarily credited to Elton Mayo of the Harvard Business School, sought to find the effects of various conditions (most notably illumination) on workers’ productivity. These studies ultimately showed that novel changes in work conditions temporarily increase productivity (called the Hawthorne Effect). It was later found that this increase resulted, not from the new conditions, but from the knowledge of being observed. This finding provided strong evidence that people work for purposes other than pay, which paved the way for researchers to investigate other factors in job satisfaction.

Scientific management (aka Taylorism) also had a significant impact on the study of job satisfaction. Frederick Winslow Taylor’s 1911 book, Principles of Scientific Management, argued that there was a single best way to perform any

given work task. This book contributed to a change in industrial production philosophies, causing a shift from skilled labour and piecework towards the more modern.

Headline text of assembly lines and hourly wages. The initial use of scientific management by industries greatly increased productivity because workers were forced to work at a faster pace. However, workers became exhausted and dissatisfied, thus leaving researchers with new questions to answer regarding job satisfaction. It should also be noted that the work of W.L. Bryan, Walter Dill Scott, and Hugo Munsterberg set the tone for Taylor's work.

Some argue that Maslow's hierarchy of needs theory, a motivation theory, laid the foundation for job satisfaction theory. This theory explains that people seek to satisfy five specific needs in life – physiological needs, safety needs, social needs, self-esteem needs, and self-actualization. This model served as a good basis from which early researchers could develop job satisfaction theories. Job satisfaction can also be seen within the broader context of the range of issues which affect an individual's experience of work, or their quality of working life. Job satisfaction can be understood in terms of its relationships with other key factors, such as general well-being, stress at work, control at work, home-work interface, and working conditions.

## **Models of Job Satisfaction**

### ***Affect Theory***

Edwin A. Locke's Range of Affect Theory (1976) is arguably the most famous job satisfaction model. The main premise of this theory is that satisfaction is determined by a discrepancy between what one wants in a job and what one has in a job. Further, the theory states that how much one values a given facet of work (e.g. the degree of autonomy in a position) moderates how satisfied/dissatisfied one becomes when expectations are/aren't met. When a person values a particular facet of a job, his satisfaction is more greatly impacted both positively (when expectations are met) and negatively (when expectations are not met), compared to one who doesn't value that facet. To illustrate, if Employee A values autonomy in the workplace and Employee B is indifferent about autonomy, then Employee A would be more satisfied in a position that offers a high degree of autonomy and less satisfied in a position with little or no autonomy compared to Employee B. This theory also states that too much of a particular facet will produce stronger feelings of dissatisfaction the more a worker values that facet.

### ***Dispositional Theory***

Another well-known job satisfaction theory is the Dispositional Theory Template:JacksonApril 2007. It is a very general theory that suggests that people have innate dispositions that cause them to have tendencies toward a certain level of satisfaction, regardless of one's job. This approach became a notable explanation of job satisfaction in light of evidence that job satisfaction tends to be stable over time and across careers and jobs. Research also indicates that identical twins have similar levels of job satisfaction. A significant model that

narrowed the scope of the Dispositional Theory was the Core Self-evaluations Model, proposed by Timothy A. Judge in 1998. Judge argued that there are four Core Self-evaluations that determine one's disposition towards job satisfaction: self-esteem, general self-efficacy, locus of control, and neuroticism. This model states that higher levels of self-esteem (the value one places on his/her self) and general self-efficacy (the belief in one's own competence) lead to higher work satisfaction. Having an internal locus of control (believing one has control over her/his own life, as opposed to outside forces having control) leads to higher job satisfaction. Finally, lower levels of neuroticism lead to higher job satisfaction.

### **Two-Factor Theory (Motivator-Hygiene Theory)**

Frederick Herzberg's Two factor theory (also known as Motivator Hygiene Theory) attempts to explain satisfaction and motivation in the workplace. This theory states that satisfaction and dissatisfaction are driven by different factors – motivation and hygiene factors, respectively. An employee's motivation to work is continually related to job satisfaction of a subordinate. Motivation can be seen as an inner force that drives individuals to attain personal and organizational goals. Motivating factors are those aspects of the job that make people want to perform, and provide people with satisfaction, for example achievement in work, recognition, promotion opportunities. These motivating factors are considered to be intrinsic to the job, or the work carried out. Hygiene factors include aspects of the working environment such as pay, company policies, supervisory practices, and other working conditions.

While Herzberg's model has stimulated much research, researchers have been unable to reliably empirically prove the model, with Hackman & Oldham suggesting that Herzberg's original formulation of the model may have been a methodological artifact. Furthermore, the theory does not consider individual differences, conversely predicting all employees will react in an identical manner to changes in motivating/hygiene factors. Finally, the model has been criticised in that it does not specify how motivating/hygiene factors are to be measured.

### **References**

- Arndt, William B. Jr. : *Theories of Personality*, Macmillan, New York, 1974.
- Asch, M. : *Abnormal and Developmental Psychology*, Ivy Pub, Delhi, 2003.
- Boring, E.G.: *A History of Experimental Psychology*. New York: The Century Company, 1929.
- Chaudhri, R.D. : *Herbal Drugs Industry : A Practical Approach to Industrial Pharmacognosy*, Eastern, Delhi, 1996.
- Dibbern, Jens : *The Sourcing of Application Software Services, Empirical Evidence of Cultural, Industry and Functional Differences*, Physica Verlag Heidelberg, 2004.
- Dicken, P. : *Wheels of Change, the Automobile Industry, Global shift, Mapping the Changing Contours of the World Economy*, London, 2007.
- Dubey, K.C. : *Experimental and Developmental Psychology*, Omega Pub, Delhi, 2009.
- Ellis, A. : *Humanistic Psychology, The Rational-emotive Approach*, Julian Press, New York, 1973.
- Georgi, A. : *Psychology as a Human Science*, Harper & Row, New York, 1970.

# Anthropological Survey of Indian Maravars Tribes

**Kumari Sunita Chaudhary**

*Research Scholar, Department of Anthropology,  
TMBU, Bhagalpur*

Maravar is another warrior tribe that is related to Tamil Muthurajas. Maravar are one of the oldest social groups to be mentioned by the Sangam Tamil literature. This indicates an association with the Tamil land which is at least 2,000 years old. Maravar, in Tamil, means a warrior. Maravars are the courageous breed and were involved in the major wars that Tamilnadu witnessed. Other historians postulate that Maravar is derived from Tamil language term Marutham. The name of the city Madurai is also postulated to be derived from Maruthai and honorific title of local Pandya kings.

The Maravar were, according to the Madras Presidency census report for 1891 "a fierce and turbulent race famous for their military prowess" and were "chiefly found in Madura and Tinnevely where they occupy the tracts bordering in the coast from Cape Comorin to the northern limits of the Ramnad Zemindari." The Dutch found them to be the traditional soldier caste of Jaffna and availed themselves of their caste services as such one of the earliest instances of a colonial power making use of a specific military caste in South Asia.

As a community, the Mmaravars are hailed as patriotic, brave, courageous, and fighters for freedom. The Villupattu ballads 'Poolithevan Kadai' and 'Veerapandiya Kattabomman Kadai' are interesting to read. Their courage and love for freedom come out strongly. The Kallars and Agamudayars are part of the Maravar community as belonging to Mukkulathor. Poolithevan, who belonged to the Maravar community, was the first freedom fighter from Tamil Nadu, a fact not well known. The other Maravar warriors about whom we can come across ballads are - Vandaiya thevar, Mechum Peruman Pandiyan, Sonamuthu Pandian, Balammal, Vannirajam, Vanniyadi Maravan and, Sappani Muthiah.

Puli or Pooli is one of the surnames of used by Maravars and this surname can also be seen among Tamil Muthurajas and Telugu Mudirajas. The Maravar in Madura and Tinnevely likewise claim the position of Rajputs, and if we regard them as a warrior tribe, they are entitled to this distinction.

They are also most probably in some way connected with Mars (Maars) of the North India. Marwari bhils belong to South Punjab north of Dadu and Nawabshah. They could be bhilalas of North India, who many times claimed to be Rajputs. Two communities who Vanniars and Marwars of Tamilnadu were Jains at one point of time. Mutharayars were the first kings who supported Jainism in South India. Vanniars were essentially sea farers and traders, so were the Marwars. Marwars could most probably belong to Marwad at some point of time and this was the region from where most Mudiraja relatives came to South India. These clans mostly came from North where Jainism took its birth. In Hindi and Sanskrit language, the words "Mara" and "Maro" are related and points to Killing. Maravar or Maravan could mean They could be a

killer tribe of Marwar region near Rajasthan. The Maravar have to a great extent preserved their freedom and independence They are brave, warlike, self willed like most semi barbarous races, but they have latterly taken to more peaceful pursuits than they used to follow formerly. Their chief was the Setupati of Ramnad, one of the oldest and most respected princes in South India, and who is still highly honoured.

The Uttumalai kings were members of the Maravar caste. Maravars are one of the three clans of Mukkulathor. There were as many palayams governed by maravars. Their history was officially recorded by Lord McEnzee and They have been published by State Archaeology Dept. You can find in them that Maravar zamins have refused to give their daughters to the Pandiya kings. They refused saying that they wont give their daughters to the "Chandra vamsa kings". It is a known fact that Pandiyan kings claimed them as Chandra kulam. Resistance to British rule was also offered by Padal Vellaiya Devan who fought the British along with Kattabomman. His son Desakaval Senbaga Devar is also remembered for his exploits.

Queen Velu Nachiyar, Queen of Sivaganga, is another noted personality who fought with the British during early British Era. The Maruthu Pandiyar brothers are notable for their role in the Polygar Wars. They were eventually captured by the British and hanged in 1801. According to the description in Kanakasabhi, the Maravars were men of curled locks of hair, blood thirsty, armed with bow bound with leather, ever ready to injure others, shoot their arrows at poor and helpless travellers, from who they can rob nothing, only to feat their eyes on the quivering limbs of their victims. Thus the Maravars were represented as fierce warriors and merciless robbers as early as the first few centuries of Christian era. They were potrayed as outsiders in Tamilnadu in the early centuries. But they progressively changed as they wtitched over to settled agriculture and cultivation. They could not fit neatly coventional South Indian notion of caste hierarchy. They could be Kalabhras from South Andhra and Deccan India.

Many Maravars were Tamil Zamindars eight big or small. Maravars were warriors with a tradition of Lordship and protection in the village localities. They were similar to Kapus and Kavalgars in Andhra region. According to evidences collected by British officers from Tinnevely district, the Maravars were 10 % of the population but committed 70 % of rural crime or dacoity. Some groups of these Marvars were declared as Criminal Tribes or Castes in 1911. The foremost among those designated as " Criminal Tribes " in the Madras presidency were the Kallars and Maravars of Tamilnadu. During 1919 -20, about 1400 piramalai Kallars were brought under this section, the hours were fixed between 11 pm to 4 am, which compelled then to sleep at police station each day.

George Joseph, who established himself as a leading criminal lawyer in Madurai became quite affluent with a large house, a retinue of servants, a horse and carriage, etc. A promising legal career with the prospects of high judicial office in the future was cut short by his passionate involvement in public affairs. Right from the beginning of his practice, he espoused the cause of the so-called criminal tribes of Madurai like Paramalai Kallars, Maravars, etc.

In 1929 the Maravars of 19 villages in Appanad were forced to registered under the CTA. Since 1920 the Criminal Tribes Act had been enacted by the government of the Madras Presidency and began to be implemented in the Madurai, Ramnad and Tirunelveli districts. After Sri U. Muthuramalingan

Thevar's entry into politics, Thevar began to mobilize resistance to the CTA. He toured villages in the affected areas and led protest rallies for the rights of the individuals registered under the CTA. The authorities partially withdrew, and reduced the number of CTA registrations in the concerned areas from around 2000 to just 341.

The Kallars, like the Maravars, settled in mixed economy zones such as Pudukkottai on the borders of the central political and economic regions of the south. In these areas they quickly attained dominance in late medieval times by exercising rights of protection (patikkaval) over local communities and institutions. The Kallars were successful in this role because their strongly kin and territory based social structure and cultural valuation of heroism and honour were highly conducive to the corporate control of the means of violence and coercion. It was no accident that Kallars, like Maravars, were often, when not granted rights of protection, the very groups from which others sought protection.

The Tondaiman dynasty of Kallar kings wrested control over a significant swath of the Pudukkottai region in central Tamil Nadu in the last quarter of the seventeenth century. Whereas Kallars had been branded as thieves in much early Tamil literature and as criminals by the British under the Criminal Tribes Act, in Pudukkottai—a little kingdom that became the only Princely State in the Tamil region of southern India—they became the royal caste. Kallars controlled much of the land, occupied the greatest number of authoritative positions, particularly as village and locality headmen and as miracidars, and ran the most important temples as trustees.

Kallar and Maravar districts of South were notoriously unsettled. Kondavan Kottai Maravar is one such group that has been classified as Seer Marabinar. This group was categorized as Criminal Tribes during the British Rule. During the British Era. There were several decoity/armed robbery committed by Maravars during this period. To contain this activity the British declared laws that outlawed the tax collection and arrested several Maravar community members and subjected them to comply with several regulatory procedures. About 90 in every hundred Kallars and 79 Maravars were cultivators, but have still of course leisure hours; inordinate attachment to their neighbours' goods and cattle makes them figure largely in jail statistics for theft and dacoity, their hereditary calling. They are known as cattle lifters.

The opposite of the valorized martial caste, (whose members exuded fortitude, nobility, etc.) were the criminal castes, e.g., the Tamil Kallars. Some of the criminal castes demonstrated sustained antipathy to British rule. The District Magistrate must bring occasionally some of their settlements under the operation of the Criminal Tribes' Act passed in 1911. The Criminal Tribes Act of 1911, with the express objective of thoroughly obtaining knowledge of, supervising and disciplining the Kallar and Maravar who were classified as dacoits and thugs under this act.

Here is a write-up on the suppression of Tamil Martial castes Kallars, Maravars and Ahampadiyar. - What did the British mean by the Tamil habit of predatory war? The Tamil works which contain treatises on martial life and the conduct of war define it as Thannuru tholil (a task undertaken on one's own) and Mannuru tholil (a task undertaken on behalf of the king or commander). Tholkappiyam, Purathinaiyiyal, Unlike many other martial castes of the

subcontinent, the Kallar and the Maravar were not yeoman peasants who dropped the plough for the sword only in times of war. They had to seek battles even when their king or chieftain was not at war. Most of the hero-stones found in Tamilnadu commemorate such battles between groups of Kallar or Maravar.

Some of the warrior gods who are worshipped to this day in southern Tamil Nadu are Maravar, who distinguished themselves in such battles which took place even after the British began to abolish the culture of predatory war.

The bow-song of Eena Muthu Pandian, a Tamil demigod, describes the martial life and heroic deeds of that Maravar warrior who lived in British times. The warrior's virtue was to desire the bliss of the hero's heaven; it was degrading for him to seek fertile lands. The most important structure which gave the Kallar and Maravar immense power in the Tamil country-side was the system of kaval. It was abolished in 1832. This has been the traditional means by which the Kallar, Maravar and Ahampadiyar derived their livelihood in times of peace when they were not employed as soldiers. The Kallar and Maravar who had been referred to as the military tribes of the southern provinces by early British writers were classified as criminal tribes towards the end of the nineteenth century.

The manual of the Tinnevely district, described the origins of the Maravar kavalkarars thus: "As feudal chiefs and heads of a numerous class of the population, and one whose characteristics were eminently adapted for the followers of a turbulent chieftain, bold active, enterprising, cunning and capricious, this class constituted themselves or were constituted by the peaceful cultivators, their protectors in times of bloodshed and rapine, when no central authority existed. Hence arose the system of desha and stalum kaval, or the guard of separate villages.

The feudal chieftain (and his Kallar and Maravar) received a contribution from the area around his fort in consideration of protection afforded against armed invasion." It was ascertained that "according to native ideas", husbandry was their only proper means of livelihood and that they had no established traditions of kingship, like Kallar and Maravar. The Madurai Manual noted that Aryanayaga Mudali, the great general of the sixteenth century was dissuaded from making himself a king on the ground that no Vellalan ought to be a king.

## References

- Agrawal, M.M. : *Ethnicity, Culture and Nationalism in N.E. India*, New Delhi: Indus Publishing Company, 1996.
- Bailey F.G. : *Tribe, Caste and Nation, Bombay*: Oxford University Press, 1960.
- Bala Kiran : *Social and Economic Development of Scheduled Tribes*, Deep & Deep, Delhi, 2000.
- Crooke W. : *Natives of Northern India*, London : Archibald Constable and Co., Ltd., 1907.
- Daniel M. : *Socio-Cultural and Religious Life of Mao Naga Tribe*, Mittal Pub, Delhi, 2008.
- Ghosh Abhik : *History and Culture of the Oraon Tribe : Some Aspects of Their Social Life*, Mohit Pub, Delhi, 2003.
- Joshi O. P. : *Art and Aesthetics in Tribes of Gujarat*, RBSA, Delhi, 2006.
- Karma Oraon : *Dimension of Religion, Magic and Festivals of Indian Tribe : The Munda*, Kanishka, 2002.

# Scope for Commercialisation of Small Farm Agriculture

---

---

**Dr. Shammi Kumari**

*Contract Asst. Professor, Dept. of Economics, Doranda College, Ranchi*

The crux of agricultural development in India is to maintain a rising level of foodgrain production and a reduction in rural poverty by speedy growth of income and employment. The new seed-fertiliser based technology has helped the farmers achieve the first goal of food security, because priority for foodgrain production is rightly compatible with subsistence orientation of the majority of the farmers-especially marginal and small farmers. In the past, it was believed and in fact verified by several studies that the new technology is scale neutral and the poor would share at least equally with rich in the gains from the technology. This has not happened and poverty persists. It is a paradox that a record foodgrain production of 186 million metric tonnes in 1994-95 coexists with nearly a third of the country's population living below the poverty line. Indeed, the economic inequalities have widened over the years, revealing that integrating capitalist agriculture with welfare goals is more formidable than earlier thought of.

One reason is the lack of adequate attention in policies and programmes for agricultural development to the need for rapid commercialization of agriculture. The history of the presently developed economies shows that modernisation, monetisation and integration are the essential ways of agricultural development. The new technology helped modernization. Further, the increasing demand for money-to purchase most of the input off farm, leads to increasing sensitivity of farmers to relative prices of agricultural commodities and that helped monetization and commercialization. The next step is to ensure the transfer of resources (generated surpluses)-wage goods, raw materials and investible funds-from agricultural development and improve the capacity of farmers to adopt new agricultural technology. Therefore, it would increase the income of the farmers and contribute to creating employment for the landless. This is the process and theory of 'Integrated Rural Development'. The farm size, direction and pace of this transfer are important. Indian experience is that the process has bypassed a vast majority of the producers in agricultural sector and the progress in integration is highly inadequate. While modernisation and monetization have helped agricultural growth-largely in foodgrain production and commercialization on a limited scale, the process has failed to encompass the marginal and small farmers. The paper analyses the causes and consequences of this deficiency in integration.

## **Marginal and Small Farms**

By their numerical strength, the marginal and small farmers form the majority of cultivators in the country as a whole and in Tamil Nadu and Madurai

district which form the universe for the present study. The pattern of size distribution of farms is similar-the predominance of marginal and small farms in both number and area operated by them. Compared to all India, their predominance is much greater for Tamil Nadu and Madurai district. This served the purpose of this study-namely to understand the scope and constraints for commercialization of the small farms and to identify the policy options therefore :

### **Data**

The study is necessarily based on primary data, because the required information was not available with any source of secondary data. Therefore, a sample of 200 farms was selected in Madurai district by a three stage random sampling method-the stages being CD blocks, villages and farms and by distributing the sample among the villages in probability proportion to the number of farms in each village to the total number of farms in all the 20 sample villages in five C.D. blocks. These sample farms were post-stratified into three size groups based on this operational area viz., small ( $\leq 2$  ha); medium (2-4 ha) and large ( $>4$  ha). By definition therefore, small group included marginal farms and the large group included medium farms and the group of semi-medium in the secondary data corresponded to the medium size group of the sample.

The distribution of sample farms among the size groups and area operated by them. The striking similarity between the primary and secondary data for Madurai district in the percentage share of operational area of the three size groups in the total area of all the farms cannot be missed. Consequently the average size of operational area of a farm is 1.15 ha in the sample and 1.14 ha in the data for the district. Thus the sample is adequately representative of the district and allows generalisation of the results. In all the size groups, average area of the farm was closer to the lower limit of the range rather than the upper limit.

### **Cropping Pattern**

The concept of commercialization refers to the increasing share of the marketable surplus in the total farm business income of the farms. This share can be increased by (i) generation of more marketable surplus in subsistence oriented foodgrain crops; (ii) by increasing production of market oriented cash crops and other products (collectively known as high value adding enterprises) and (iii) both. An increase in foodgrain production through improvement in productivity of land and diverting area for the high value adding (HVA) crops or other enterprises will ensure food security and commercialization simultaneously. Therefore the cropping pattern of the farms will show the share of high value adding crops. Groundnut, onion, chillies, sugarcane and cotton are the value adding (cash) crops cultivated by the farmers of the district, while paddy, jowar and blackgram are the food crops raised by them. The share of the non-food crops in the gross cropped area of the farms. In the total gross cropped area of 297.05 ha, cash crops accounted for 64.03 ha (21.56 percent) only showing the farmer's preference to food crops-a sign of subsistence orientation. The share of the food crops in gross cropped area was as high as 90 percent in small farms as compared to 59.75 percent in large farms. Therefore commercialization

through production of products for market (cash crops) was very small i.e., less than 10 percent in total area under cash crops. The large farms were just 12 (six percent) in the sample of 200 farms, but their share in area under the cash crops was 53.60 percent. Therefore the commercialization of agriculture would need attention to small farms, to encourage area under cash crops.

### **Productivity of Crops**

The average productivity (in kg/ha) of the crops raised in the sample farms, for a comparative study. In jowar, bajra, blackgram and groundnut (rainfed crop), the small farms had the highest productivity. In other crops excepting sugarcane, the productivity of small farms was not significantly different from that in other groups. Only in sugarcane average productivity per hectare was just 101 tonnes/ha as compared to 140 tonnes/ha on large farms. Therefore, productivity was not a serious constraint for commercialisation of small farms if the marketed surplus were not different for the size groups. By the time of enquiry (April '95) the sample farmers had completed the sale of crops raised in the previous years. Therefore their marketed surplus was estimated and expressed as percentage to total production.

It is readily seen that small farmers had the lowest percentage of marketed surplus in food crops, with only exception of blackgram, but they had 90 percent of GCA under them. The area under cash crops was just 10 percent but their marketed surplus was 100 percent with one exception of onion where it was 98.70 percent. The inference is that production in small farms is more subsistence oriented than market oriented. This is a constraint for their commercialization.

### **Livestock**

The farmers maintained one or two cows/she-buffaloes, work bullocks, sheep and poultry birds. Income from livestock supplemented the income from crops. But the size of livestock depended upon the availability of family labour to attend them. As members of the family of small farms worked as wage earners off-farm and non-farm, the livestock maintenance was on a small scale and brought very little income to the farms. It was not a commercial activity. This can be seen in the source-wise income of the farms.

### **References**

- Anindya Bakrie & Morendy Octora.: *Schooling, Experience, and Earnings*, New York, Singapore National University, Columbia University Press 2002.
- Bazilevskii, Y. Y.: *The Theory of Mathematical Machines*, Pergamon Press, Macmillan Co., New York, 1963.
- Copeland, Tom, Tim Koller, and Jack Murrin, *Valuation: Measuring and Managing the Value of Companies*, New York, Wiley, 1994.
- Damasio, AR.: *Descartes' Error: Emotion, Reason and the Human Brain*, New York, 1994.
- Fraser, Steven, *Labor Will Rule, Sidney Hillman and the Rise of American Labor*, Reprint ed. Ithaca, N.Y.: Cornell University Press, 1993.
- Fruhan, W. E.: *Financial Strategy, Studies in the Creation, Transfer and Destruction of Shareholder Value*. Homewood, 1979.
- Gul, F. and Pesendorfer, W.: *The Foundations of Positive and Normative Economics*, New York, Oxford University Press 2008.
- Harrigan, K. R.: *Strategies for Declining Businesses*. Lexington, MA: Heath, 1980

# A Case Study on Comparative Analysis between Gold Etf's And Nifty50–A Selected Gold Etf's In India

---

---

**Atul Kumar Shukla**

*Research Scholar, Department of Commerce,  
Veer Kunwar Singh University, Ara (Bihar)*

---

---

**Prof. (Dr.) Rameshwar Singh**

*P.G. Department of Commerce, Veer Kunwar Singh University, Ara (Bihar)*

## **Abstract**

As an alternative to actual gold, gold exchange-traded funds (ETFs) have seen a rise in investment over time. Since gold, gold ETFs, and gold mutual funds are typically regarded as alternative investments to stocks and shares, their returns ought to closely mirror those of equities. Stated differently, it is generally anticipated that the returns on investment paths will not differ significantly. The goal of the current analysis is to compare the 2015–19 Nifty50 with the risk and returns of five chosen Gold ETFs. In overall, the correlation coefficient is found to be negative for three Gold ETF's (i.e. AxisGold, HDFCFMGETF and GoldShare) which is 60 percent and positive for the remaining two Gold ETF's (i.e. IDBIGold and KotakGold) which is 40 percent. Hence, it is concluded that though returns of some of the gold ETFs fall in line with the returns on the stocks but returns on majority of the gold ETFs do not closely follow the returns on the stocks. The investors are advised to include gold ETFs in the portfolio of the stocks to diversify

**Keywords:** Gold ETF, Nifty50, Return, Risk, Variance

## **Introduction**

Gold is one of the precious metals being bought and traded. Since gold served as the foundation for the gold standard, which helped determine the value of all money worldwide, many investors view it as an avenue for investment. In addition, it serves as a direct investment for future savings, a hedging tool, and a security against financial crises. The Gold Exchange Traded Fund (Gold ETF) is an alternative investment to actual gold that has developed over time.

In essence, gold exchange-traded funds (ETFs) are mutual funds that are listed and traded on the stock exchange similarly to shares. Physical gold is

represented by the units that make up the Gold ETFs. They are predicated on the gold underlying asset's Net Asset Value (NAV). Like any other shares on an exchange, these can be purchased and sold at any time during the trading day. They can be held in paper or dematerialized form. The price of this reflexive investment is determined by the price of gold, and the holdings are fully transparent. Like any other share, investors can buy a single ETF. Compared to physical gold investments, gold exchange-traded funds (ETFs) are less expensive because of their unique structure and formation procedure. Thus gold ETF offers an opportunity to the investors to take part in the gold bullion market without necessarily taking physical delivery of gold.

The concept of ETF emerged originally in Canada by commencing "Central Fund of Canada", a closed-end fund founded in 1961 and listed on "Toronto Stock Exchange" in 1966. It was later on in 1983 modified into exchange traded product with underlying asset of gold and silver. There are a variety of types of ETFs which are traded on the stock exchanges like Equity Index ETFs, Gold ETFs, Liquid ETFs and International Index ETFs. The ETF enables the investors to invest in the entire market with just one security. Thus it offers the benefit of flexibility as well as diversification. In current financial markets ETF is considered as highly valuable instrument of investment and witnessed a rapid growth in the last decade.

### **Review of Literature**

The researchers reviewed the following literature to find the research gap.

Goyal & Joshi conducted a study in the year 2011. In their study, they examined the performance of 5 Gold ETFs those of which are listed in NSE by using different assessment techniques by measuring Alpha, Beta, and Standard deviation of preferred ETFs from March 2008 to November 2010. They finalized by saying that ETFs price very less compared to NSE Index. Jaffe, 1989 says that Gold plays a significant role in numerous portfolios. Since Gold is a risky asset and its return does not rely on others. The author tested 4 hypothetical portfolios with distinct risk and states that extension of Gold in each of the portfolios increases the return and decreases the risk as well as if the Gold stocks are added to the hypothetical portfolios results in an increase in the reruns and the risk also increases. Therefore, high return than high risk. Sunkara, 2017 quotes the performance of Gold and Gold ETFs are correlated with Gold bonds and deposits on the ground of total return, standard deviation, and Compounded Annual Growth Rate (CAGR) by taking the closing price from April 1st, 2013 to March 31st, 2017.

They finalize that the CAGR of Material Gold is higher than compared to Gold ETF. Thus, Material Gold functions better than Gold ETF. In opposition to Aggarwal, 2014 finalized by quoting that Gold ETF performance is better than Material Gold since Gold ETF have less volatility. S Wagle & Naik, 2014 tackled to examine the performance of listed Gold ETFs on NSE. These Gold ETFs were evaluated clearly from their launch to December 2012. They finalized by saying that Gold ETF handled to accomplish its purpose of developing return in

reference with the returns. But no specific Gold ETF is performed exceptionally. They attained the objective by taking up a strategy passive in nature and the funds and basic assets tracking errors were reduced. Eswara conducted a study in the year 2009 that examined the relationship between Gold ETFs and spot Gold price and also evaluate the performance of Gold ETFs as well as evaluate Gold ETFs to Nifty by using Regression and Correlation. The study concluded that out of 5 selected Gold ETFs Gold share has more correlation compared to spot Gold price. The evaluation of Gold ETFs to Nifty shows that Gold ETF performed well whereas Nifty reduced. Athma & Mamtha in the year 2017 throws light on the development of ETFs from the time of its launch on the ground of secondary data by using tools such as Net Asset Value, Return, Risk to Sharpe, and Treynor's Performance evaluation ratio. Their study finalized by saying that there is a gradual increase in the price of the Gold that contributed to the exchange-traded funds. Swain & Samal in the year 2017 conducted a study on Gold price volatility on the ground of day-to-day prices from 1st January 2009 to 30th September 2011. They used two Models as standard deviation and Generalized Auto- Regressive Conditional Heteroskedasticity. The study detected that Gold price volatility exists. Narang & Singh studied the relationship between the gold price and the returns of Sensex in India from 2002 to 2012. According to their study, there is no relationship between the price of gold and the returns of Sensex in India. Najaf & Najaf in the year 2016 investigated the impact of oil and gold price on BSE by using Granger causality, correlation, variance decomposition analysis, and co-integration test. According to the investigation in a long run, there is no relationship existing between the stock market of India and the oil and Gold market. On the other hand, Mishra, Das, & Mishra conducted a study to analyze the relationship between Stock market returns and gold price on the based of Bombay Stock Exchanges by using different models and techniques and finalized that Gold price and stock market returns in India are linked. Samantha & Zadeh, 2012 in his article he explained the co-movements of different macroeconomics variables by analyzing the co-integration, spill over-index over these variables, and also common trend factors and the results show that stock price and Gold price do not move in a similar direction and the oil price are affected by these variables.

### **Research Gap Need for the Study**

As an alternative to actual gold, gold exchange-traded funds (ETFs) have seen a rise in investment throughout time. Since gold, gold ETFs, and gold mutual funds are typically regarded as alternative investments to stocks and shares, their returns ought to closely mirror those of equities. Though, many studies have been performed on this problem, the results varied greatly. This made it necessary to demonstrate empirically whether or not gold ETF returns closely resemble stock returns. Thus, "A Comparative analysis between Gold ETF's and Nifty50-A Selected Gold ETF's in India" was selected as the study's topic.

### Objectives of the Study

- To investigate the risk and returns of selected Gold ETF's and Nifty50 during 2015-19
- To examine the relation between the risk and returns of Gold ETF's and Nifty50

### Hypotheses

H<sub>0</sub>: There is no significant relation between the returns of Gold ETF and Nifty50.

H<sub>1</sub>: There is a significant relation between the returns of Gold ETF and Nifty50.

### Limitations of the Study

- Though many gold ETFs are available for investment in India, the current study considers only five gold ETFs. Viz. AxisGold, HDFCFMGETF, IDBIGold, KotakGold and GoldShare
- The financial performance of gold ETFs is compared with only one benchmark i.e. Nifty50
- The financial data collected for the analysis belongs to time frame of 2015-19.

### Results and Discussions

The current study is considered to be analytical research as it undertakes analysis of financial performance and its comparison with benchmark Nifty50. The current study is based on secondary data of market prices of gold ETFs obtained from NSE website during 2015-19. The following five Gold ETFs are chosen. These are: Viz. 1) AxisGold of Axis mutual fund, 2) HDFCFMGETF of HGFC mutual fund, 3) IDBIGold of IDBI mutual fund, 4) KotakGold of Kotk mutual fund and 5) GoldShare of UTI mutual fund.

*Table 1: Descriptive Statistics of selected ETF's and Nifty50 during the year 2015*

GOLD ETF	Mean	Std. Deviation	Variance	Skewness	Kurtosis
AXISGOLD	-0.040149	0.7254828	0.526	-0.281	1.784
HDFCFMGETF	-0.027155	0.6562848	0.431	0.571	1.208
IDBIGOLD	-0.030302	1.0511740	1.105	0.344	1.084
KOTAKGOLD	-0.412163	5.7432506	32.985	-15.302	238.348
GOLDSHARE	-0.027120	0.7973817	0.636	1.152	7.501
NSE 50	-0.011608	1.0220117	1.045	-0.974	4.139

Source: Author's calculation using SPSS

Table 1 reflects descriptive statistics of the selected ETF's and Nifty50 during the year 2015. Both the returns of the selected ETF's and NSE50 are found to be negative during 2015. The returns of most of the Gold ETF's are near to the returns of NSE50 and there is no significant difference. The Skewness of returns is found to be negative for NSE50 during the period. However, it is negative only in two ETF's (i.e. AXISGOLD and KOTAKGOLD) and other three have positive.

**Table 2: Descriptive Statistics of selected ETF's and Nifty50 during the year 2016**

GOLD ETF	Mean	Std. Deviation	Variance	Skewness	Kurtosis
AXISGOLD	-0.040149	0.7254828	0.526	-0.281	1.784
HDFCFMGETF	-0.027155	0.6562848	0.431	0.571	1.208
IDBIGOLD	-0.030302	1.0511740	1.105	0.344	1.084
KOTAKGOLD	-0.412163	5.7432506	32.985	-15.302	238.348
GOLDSHARE	-0.027120	0.7973817	0.636	1.152	7.501
NSE 50	-0.011608	1.0220117	1.045	-0.974	4.139

Source: Author's calculation using SPSS

Table 2 shows descriptive statistics of the selected ETF's and Nifty50 during the year 2016. Both the returns of the selected ETF's and NSE50 are found to be positive during 2016. The returns of most of the Gold ETF's are near to the returns of NSE50 and there is no significant difference. The Skewness of returns is found to be negative for NSE50 during the period. However, it is positive for all the selected ETF's.

**Table 3: Descriptive Statistics of selected ETF's and Nifty50 during the year 2017**

GOLD ETF	Mean	Std. Deviation	Variance	Skewness	Kurtosis
AXISGOLD	-0.040149	0.7254828	0.526	-0.281	1.784
HDFCFMGETF	-0.027155	0.6562848	0.431	0.571	1.208
IDBIGOLD	-0.030302	1.0511740	1.105	0.344	1.084
KOTAKGOLD	-0.412163	5.7432506	32.985	-15.302	238.348
GOLDSHARE	-0.027120	0.7973817	0.636	1.152	7.501
NSE 50	-0.011608	1.0220117	1.045	-0.974	4.139

Source: Author's calculation using SPSS

Table 3 depicts descriptive statistics of the selected ETF's and Nifty50 during the year 2017. Both the returns of the selected ETF's and NSE50 are found to be positive during 2017. The returns of most of the Gold ETF's are near to the returns of NSE50 and there is no significant difference. The skewness of returns is found to be negative for NSE50 during the period. However, it is positive for all the five ETF's.

**Table 4: Descriptive Statistics of selected ETF's and Nifty50 during the year 2016**

GOLD ETF	Mean	Std. Deviation	Variance	Skewness	Kurtosis
AXISGOLD	-0.040149	0.7254828	0.526	-0.281	1.784
HDFCFMGETF	-0.027155	0.6562848	0.431	0.571	1.208
IDBIGOLD	-0.030302	1.0511740	1.105	0.344	1.084
KOTAKGOLD	-0.412163	5.7432506	32.985	-15.302	238.348
GOLDSHARE	-0.027120	0.7973817	0.636	1.152	7.501
NSE 50	-0.011608	1.0220117	1.045	-0.974	4.139

Source: Author's calculation using SPSS

Table 4 exhibits the descriptive statistics of the selected ETF's and Nifty50 during the year 2018. Both the returns of the selected ETF's and NSE50 are found to be positive during 2018. The returns of most of the Gold ETF's are near to the returns of NSE50 and there is no significant difference. The Skewness of returns is found to be negative for NSE50 during the period. However, it is negative only in one ETF (i.e. GoldShare) and other four have positive skewness.

**Table 5: Descriptive Statistics of selected ETF's and Nifty50 during the year 2017**

<b>GOLD ETF</b>	<b>Mean</b>	<b>Std. Deviation</b>	<b>Variance</b>	<b>Skewness</b>	<b>Kurtosis</b>
AXISGOLD	0.090000	0.822	0.676	0.957	5.327
HDFCFMGETF	0.085224	0.7607218	0.579	0.28	2.086
IDBIGOLD	0.089831	0.9633724	0.928	0.434	3.841
KOTAKGOLD	0.095391	0.8674706	0.753	1.181	7.634
GOLDSHARE	0.088773	0.8712533	0.759	0.832	11.257
NSE 50	0.051629	0.8710424	0.759	1.196	6.019

Source: Author's calculation using SPSS

Table 5 shows the descriptive statistics of the selected ETF's and Nifty50 during the year 2019. Both the returns of the selected ETF's and NSE50 are found to be positive during 2019. The returns of most of the Gold ETF's are near to the returns of NSE50 and there is no significant difference. The Skewness of returns is found to be positive for all 5 ETF's and NSE50 during the period.

**Table 6: Correlation values of Gold ETF's with NSE50 during 2015-19**

<b>Year</b>	<b>AXISGOLD</b>	<b>HDFCFMGETF</b>	<b>IDBIGOLD</b>	<b>KOTAKOLD</b>	<b>GOLDSHARE</b>	<b>Mean Values</b>
<b>2015</b>	-0.024	-0.0155	0.097	-0.054	-0.079	-0.043
<b>2016</b>	-0.73	-0.215	0.27	-0.127	-0.229	-0.2062
<b>2017</b>	-0.17	-0.158	0.125	-0.226	-0.144	-0.1146
<b>2018</b>	0.108	0.09	-0.046	0.051	0.052	0.051
<b>2019</b>	-0.017	0.04	-0.121	0.39	0.027	0.0638
<b>Mean Values</b>	-0.1666	-0.0796	0.065	0.0068	-0.0746	

Source: Author's calculation using SPSS

Table 6 shows correlation values of Gold ETF's with NSE50 during 2015-19. The correlation coefficient is found to be negative for most of the Gold ETF's (i.e. four out of five Gold ETF's which are -0.024, -0.155, -0.054 and -0.079) during 2015. It implies that the returns of Gold ETF's have no relation with the returns of the market index.

Again during 2016 and 2017 the correlation coefficient is found to be negative for four out of five Gold ETF's which implies that the returns of Gold ETF's have no relation with the returns of the market index. However, only during two years out of five years, (i.e. 2018 and 2019) the correlation coefficient is found to be positive for most of the Gold ETF's. During 2018, four (i.e. AxisGold, HDFCFMGETF, KotakGold and GoldShare) and during 2019 three gold ETF's

(i.e. HDFCFMGETF, KotakGold and GoldShare) are found to be having positive correction.

In overall, the correlation coefficient is found to be negative for three Gold ETF's (i.e. AxisGold, HDFCFMGETF and GoldShare) and positive for the remaining two Gold ETF's (i.e. IDBIGold and KotakGold) during the period 2015-19. It is also learnt that out of five years study period, in three years (i.e. 2015-17) the correlation coefficient is found to be negative and only for two years (i.e. 2018 and 2019) it is positive. Hence it is inferred from the analysis that there is a significant difference between the return of Gold ETF and market index NSE50 and also it is negatively correlated.

### **Scope for Further Study**

Since the current study is conducted only for five gold ETF's, the study can be extended to all other gold ETF's in India. It can also be extended to gold ETF's of other countries. The current study considers Nifty50 as bench mark and hence the researcher feels that it can be extended to BSE Sensex as bench mark.

### **Research Implications**

The results of current study help the common investors to take right decision of investment-whether to invest in physical gold, gold ETF or stocks. It also helps the mutual fund managers in diversifying the portfolio into gold ETF in addition to common stocks.

### **Conclusion**

Overall, the correlation coefficient for the three gold exchange-traded funds (AxisGold, HDFCFMGETF, and GoldShare) is 60 percent negative, while it is 40 percent positive for the other two gold exchange-traded funds (IDBIGold and KotakGold). As a result, it may be said that while the returns of some gold exchange-traded funds (ETFs) are comparable to those of stocks, the bulk of gold ETFs do not closely track market returns. It is recommended that investors diversify their stock portfolios by adding gold exchange-traded funds (ETFs).

### **References**

1. 'Aggarwal, V. K., Jain, S., & Aggarwal, A. (2013)'. Gold v/s gold ETFs evidences from India. *International Journal of Scientific Research and Management*, 2(4), 758-762.
2. 'Anand, R. G. (2017)'. A comparative study on gold v/s gold ETF's and analysis of gold ETFs as an effective investment tool for Indian retail investors. *International Journal of Management and Business Studies*, 7(3), 26-34.
3. 'Esampally, C. & Aarthi, B. (2015)'. Performance of gold ETFs and gold FOFs: A comparative study. *Smart Journal of Business Management Studies*, 11(2), 49-60.
4. Garg, S., & Singh, Y. (2013). An empirical comparison of ETF's and index funds performance in India. *International Journal of Applied Financial Management Perspectives*, 2(3), 578-589.
5. Goyal, A., & Joshi, A. (2011). Performance appraisal of gold ETFs in India. *Elixir International Journal*, 32(1) pp.2229-2060.
6. Goyal, M. M. (2014). Accelerating growth of ETF in India. *International Journal of Innovative Research and Development*, 3(10), 206-210.

7. Jayanthi, M., Malathy, S., & Radhulya, T. (2013). A Study on Performance of Gold ETF Companies in India, *International Research Journal of Business Management*, 6(1), 97-102
8. Krishna Prasanna, P. (2012). Performance of Exchange-Traded Funds in India. *International Journal of Business and Management*, 7(23), 122-143
9. Saleem, M. & Khan, M. (2013). The overview of gold ETFs and its various positive features. *International Journal of Marketing, Financial Services and Management Research*, 2(4), 125-135.
10. Velmurugan, P.S., Saravanan, A., & Raghavendra, R. H. (2013). A comparative study on investing in gold related assets. *ELK's International Journal of Finance*, 4(1) 1-5.
11. Wang, L., Hussain, I., & Ahmed, A. (2010), Gold exchange traded funds: Current developments and future prospects in China. *Asian Social Science*, 6(7), 119- 125.

# Capital Punishment in India: Constitutional Validity of Capital Punishment

---

---

Karishma Tamta

*Department of Law (Net Qualified),  
RAJIV Gandhi National University of Law, Punjab*

## Abstract

All punishments are based on the same premise, i.e. there must be a punishment for wrongdoing. Most systems of religion or ethics teach that bad actions lead to bad consequences. There are two main reasons for imposing a penalty. One is the belief that it is right and just that a person who has done something wrong should suffer for it; the second is the belief that punishing wrongdoers deters others from doing wrong. The death penalty also rests on the same proposition as other punishments. Because of its drastic and irreversible nature, it is even more open to debate about its fairness, appropriateness, and effectiveness than other punishments. Proponents of the death penalty believe it is an effective way to stop crime. They focus on the death penalty as a deterrent or something that will stop or reduce crime. He believes that the death penalty brings the most justice to the victim of a heinous crime.

The death penalty is a form of punishment from time immemorial. The pros and cons haven't changed much over the years. Crimes, like the method of punishment, correlate with the culture and form of civilization from which they originate. At a time when the question [whether the death penalty must be abolished or not] continues to rage, it will be appropriate to recall how lawmakers and the Supreme Court have dealt with this question every time it has come up before them. Another issue is the extent of judicial discretion.

This article will analyze the constitutional validity of the death penalty across jurisdictions, the abolitionist and retentionist debate on the death penalty and its status in India in the context of the current scenario.

**Keywords:** Crime, Murder, Capital Punishment, India, Constitutional Validity, IPC Section, death penalty

## Introduction

According to The Oxford Dictionary, capital punishment is "the legally authorized killing of someone as punishment for a crime". The death penalty is imposed for capital crimes, such as crimes involving premeditated murder, multiple murders, repeated crimes; rape and murder, etc., where the penal provisions consider such persons to be a gross danger to the existence of society and provide for the death penalty. The death penalty, or capital punishment, is

a legal process in which a person is put to death by the state as punishment for a crime.

There is much debate about how powerful a deterrent the death penalty is. Most of us have an instinctive feeling that the death penalty must be at least somewhat deterrent. Deterrence is one of the basic reasons for punishment of any kind. Since death is considered the most severe punishment available under the law, it seems logical that it must also be the most effective deterrent to crime. English barrister Sir James Stephen noted, "No other punishment deters men from committing crimes so effectively as the death penalty. In every secondary punishment, however terrible, there is hope; but death is death; its horror cannot be described more violently."

#### Origin of Capital Punishment

The death penalty was prescribed for various crimes in Babylon at least 3,700 years ago. Some of the ancient society imposed it only for the most heinous crimes and others imposed it for lesser offenses. For example, under Roman law in the 5<sup>th</sup> century BC, publishing offensive songs and disturbing the peace of the city at night was punishable by death. Under the Greek draconian legal code in the 7<sup>th</sup> century BC, death was the penalty for any crime. Beginning in ancient times, executions were often carried out in public. Public executions brought benefits to all. For the surviving victims of convicted criminals, execution was a grim satisfaction as they witnessed the final punishment of those who had harmed them. For the authorities, the executions served as a graphic demonstration of their determination to protect public safety. Public executions even helped the authorities do their job and served as terrifying object lessons for potential wrongdoers.

The extent or nature of the punishment depended as much on the social status of the offender as on the nature of the crime. Commoners were executed much more often than nobles. Minorities and foreigners were treated more harshly than members of the dominant group. The methods of execution were also different. Common methods of imposing the death sentence on the offender were drowning, burning, boiling, beheading, throwing the offender off a cliff, stoning, strangulation, beating, amputation, shooting with a gun, or starving to death. Hanging and beheading were the most common methods of execution in Europe and Great Britain. Currently, common methods of execution are suffocation, electrocution, guillotine, shooting and hanging. The method of electrocution was first used in the Auburn State Penitentiary in New York in 1890 and is now widely used in the USA, Great Britain, USSR, Japan and other European countries. The use of the guillotine for execution was introduced in France in 1792. The method of hanging a condemned prisoner until death has been commonly used in almost all countries for centuries. Public hanging is now considered unconstitutional in India.

#### Capital Punishments In Different Countries

Now let's look at what other countries of the world have to offer in terms of capital punishment and some of their famous cases in history that have been recorded.

### Private Punishments in America

After the American Revolution, the US Constitution gave both the states and the federal government the right to establish their own criminal penalties. The very first Congress of the United States passed federal laws granting the death penalty for rape, murder, and other crimes. Although the death penalty was widely accepted in the early United States, its approval was not universal. Some of the people viz. Cesare Beccaria, Thomas Jefferson, Dr. Benjamin Rush expressed serious doubts and objections and advocated that the death penalty be abolished. And in 1917, the state of Missouri and the territory of Puerto Rico abolished the death penalty. Opposition to the death penalty regained momentum in the mid-twentieth century following the controversial executions of Willie Francis, Burton Abbot, Caryl Chessman, and Barbara Graham. Several states have again abolished or limited the use of the death penalty.

In 1972, American abolitionists achieved their greatest success. In the case of *Furman v. George*, the US Supreme Court declared that the death penalty, as administered at the time, was “cruel and unusual” punishment and therefore constitutional. Four years later, the court ruled in several cases. In *Gregg v. Georgia*, the Supreme Court held that the death sentences imposed in some states under the new laws were constitutional. But murder is a capital crime in all 38 US states that have the death penalty.

### Capital Punishment in Britain

Hanging was the traditional form of capital punishment in England. However, he was not the only one. In England, beheading was normally reserved for the nobility and was last used in 1747. Hanging was the most common method of execution in England from Saxon times until the 20th century. The last hangings in Britain were two men, Peter Allen and Gwynne Jones, who were hanged on the same day in 1964. In Britain, the death penalty for murder with a probationary period of 5 years was abolished in 1965. It was abolished permanently in 1969. Free ballots were held in 1979 and 1994 to reinstate the death penalty, but both times it was rejected.

### Capital Punishment in China

The death penalty in the People’s Republic of China is usually given to perpetrators of serious and violent crimes such as aggravated murder, but China retains a number of non-violent capital crimes such as drug trafficking under the law. The People’s Republic of China executes the highest number of people annually, although other countries such as Iran or Singapore have higher execution rates per capita. Watchdog groups believe that the actual number of executions greatly exceeds the officially recorded executions: in 2009, the Dui Hua Foundation estimated that 5,000 people had been executed in China – far more than all other nations combined.

### Capital Punishment in India

About 40 people were executed between 1975 and 1991. The year 1995-2004, when there were no executions. Anti-death penalty activists dispute these

numbers, claiming much higher numbers on death row and actual executions. In August 2004, 41-year-old former security man Dhananjay Chatterjee was executed in Kolkata for the rape and murder of a 14-year-old schoolgirl. It was the first execution in the country since 1995. In 2005, there were about a dozen people on death row in the country. In 2006, it was reported that the number of pardon applicants with President Abdul Kalam from death row convicts was 20, including 12 submitted when K.R. Narayanan was the president.

#### Method of Execution

Capital punishment in India is carried out in two ways, hanging by the neck until death and shooting. The prison manuals of various states lay down the manner of execution of the death penalty in India. Once the death sentence is passed and confirmed after all available remedies have been exhausted, the execution is carried out in accordance with Section 354(5) of the Penal Code 1973, i.e. by hanging by the neck until death.

Section 354, paragraph 5 of the Criminal Code says: "When someone is sentenced to death, the sentence stipulates that he will be hanged by the neck until death." The Air Force Act 1950, the Army Act 1950 and the Navy Act 1952 also stipulate that execution must be by either hanging to death or by firing squad.

#### Capital Punishment Under Various Laws in India

The death penalty is prescribed as one of the punishments in various provisions

1. Indian Penal Code 1860,
2. Arms Act 1959,
3. The Narcotic and Psychotropic Substances Act 1985,
4. Scheduled Caste and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act,
5. The Commission of Sati (Prevention) Act, 1987,
6. The Air Force Act, 1950,
7. The Army Act of 1950 a
8. The Navy Act, 1952

In the Prevention of Terrorism Act, 2002, there was also a provision for the death penalty for causing death to persons by use of bombs, dynamite or other explosive substances with the object of endangering the unity and integrity of India or inducing terror among the people. It is also interesting to note that under the Arms Act, the NDPS Act and the Scheduled Caste and Scheduled Tribes Act, death penalty is the only punishment for the offense covered by these sections, thus leaving no scope for the judicial authorities to exercise their discretion. It is debatable whether these provisions stand the test of constitutional validity in the light of the decision in *Mithu v. State of Punjab*.

This is because in this case Section 303 of the Indian Penal Code was struck down as violative of Articles 21 and 14 of the Constitution of India as the offense

under that section was punishable only with death and was without discretionary power to the judiciary and thus resulted in an unfair, unjust and unreasonable procedure depriving a person of his life.

#### Abolition of Capital Punishment

The UN High Commissioner for Human Rights convened a meeting in early July to commemorate the fifth anniversary of the General Assembly's vote in favor of a moratorium on the death penalty. Secretary-General Ban Ki-Moon delivered several remarks in which he delivered several remarks reminding the audience that more than 150 countries have either abolished or reduced the death penalty. Some 32 states retain the death penalty for drug-related crimes, and only 20 countries actually carried out executions last year. In the United States, 17 states have abolished the death penalty.

The right to life is the most fundamental of all human rights. It lies at the heart of international human rights law. The taking of life is too absolute, too irreversible, for one human being to inflict on another, even if it is backed by legal process. Where the death penalty is in place, conditions for those awaiting execution are often appalling, leading to even greater suffering. Information regarding the application of the death penalty, including secret trials and executions, is often shrouded in secrecy. And it is undeniable that innocent people are still being put to death.

The UN system has long been pushing for the abolition of the death penalty. However, the death penalty is still used for a wide range of crimes that do not reach this threshold.

#### Constitutional Validity of Capital Punishment

Article 21 of the Constitution of India provides protection of life and personal liberty to every nation. And taking anyone's life is unconstitutional under Article 21. It also says that "No one shall be deprived of life or personal liberty except by procedure established by law", that is, if there is a procedure, then the state can deprive a person of his life.

In many countries there has been a demand for the abolition of the death penalty and in some this demand has been accepted and the death penalty has been abolished. There are also many social workers in India including lawyers and judges who have voiced this demand. Krishna Iyer J recently spoke strongly for the abolition of the death penalty in a speech to a human rights organisation.

Justice A.K. The Supreme Court's Ganguly termed the death sentence as "barbaric, anti-life, undemocratic and irresponsible", which is "legal" under the prevailing judicial system. The "rarest of the rare" crime doctrine was a "grey" area in imposing the death penalty because its interpretation depended on individual judges. He pointed out that before imposing the death penalty, the judge must be "extremely cautious" and consider "mitigating and aggravating circumstances.

Through Article 21, the state is given the power to deprive a person of his life in accordance with the procedure established by law. This means that although there is a procedure established by law, the state can deprive a person of his life. Through court decisions, this procedure is interpreted as fair, just and reasonable. Although the constitutional validity of the death penalty has been challenged as a violation of Articles 19 and 21 of the Constitution of India as it did not provide any procedure for the court to confirm the validity of the death sentence. Because the procedure by which life is taken is fair, just and reasonable. Judges are given extensive discretion to award the death penalty as opposed to life imprisonment.

The question of the constitutional validity of the death penalty has been raised before the Supreme Court of India more than once. In the case of Jagmohan Singh v. State of Uttar Pradesh the constitutional validity of the death penalty was upheld by the Supreme Court in a unanimous decision of a five-judge bench.

In the case of Rajendra Prasad v. State of Uttar Pradesh Krishna J. Iyer said that the death penalty directly affects the lives of people guaranteed by Article 21 of the Constitution. But it was laid down by law and there is nothing like ordinary law in Article 21. Therefore it is valid. He further said that two things must be required to impose the death penalty.

- i. Special reasons for imposing the death penalty in the case should be recorded.
- ii. The death penalty must only be imposed in exceptional circumstances.

This question was reconsidered by five judges in Bachan Singh v. State of Punjab, particularly in light of certain observations of Krishna Iyer. In the Bachan Singh case, the judges considered the social, ethical and even spiritual aspects of the death penalty while upholding its constitutional validity.

But by a majority of four to one, Bhagwati J in the Bachan Singh case recorded a dissenting note. In his dissenting judgment, Bhagwati J gave a number of reasons why he believed that the death penalty was not only unconstitutional because it violated Articles 14 and 21, but was also undesirable on several counts. One of the reasons he gives is that the death penalty is irrevocable because the execution of the death penalty in such a case renders the miscarriage of justice irrevocable.

He referred to Hugo A. Bedau's *The Death Penalty in America*, which lists 74 cases in which he was held responsible, and in most of which it was proven beyond a reasonable doubt that persons were wrongfully convicted and executed, even though innocent. It is undoubtedly true that the conviction and execution of an innocent man for murder shocks the human conscience, and it is also true that human judgment is not infallible, but I may respectfully point out that the criminal law in our country is heavily weighted in favor of the accused and wrongful conviction is not at all possible. In England and America the trial is by a jury, and they can, with the greatest honesty, record an erroneous verdict of guilty more easily than a judge. The jury is greatly influenced by the

consideration that the interests of society require that no offender who commits a shocking crime should escape the clutches of the law and the punishment he deserves. The judge's approach is more cautious here. It follows the principle that a hundred guilty may escape, but not a single innocent should be convicted.

#### No Chance for Injustice

It is on the basis of this principle that in India the benefit of reasonable doubt is given to the accused even in cases of murder. The defense attorney uses all his skills and ingenuity to create doubt in the judge's mind and is given repeated opportunities to do so. If he fails at the first instance court, he makes a second attempt at the High Court and a third at the Supreme Court. The possibility of a wrongful conviction is therefore completely excluded.

In addition, the power to pardon, pardon and commute the sentence vested in the Governor and the President provides an additional safeguard against miscarriage of justice in the matter of punishment. The whole matter is examined with great care and caution in the exercise of the said power, having regard to the interests of the individual on the one hand and the interests of society on the other. The president is the elected head of state and is expected to carry out the will of the people. Thus, a condemned person cannot be executed unless the capital punishment in a particular case is considered not only correct in the court verdict, but also not in accordance with the wishes of the people in general. I need not refer to the other aspects of the matter which were dealt with at length by Sarkaria J in his elaborate majority judgment, but I would like to emphasize one aspect of the matter. I do not see why the life of an individual who has been found guilty of a heinous crime should be given too much importance when the interests of society demand that he be given the death penalty.

In riots, the police are often required to open fire in the interest of society to disperse unruly mobs indulging in arson and violence, to restore order when other methods fail. Even with such firing, innocent people are killed. Shall we say that the police should never resort to firing to quell a riot or disperse an angry mob just because there is a risk of innocent people being killed? No one will ever say that. If so, why should we have any qualms about imposing the death penalty on an offender in extreme cases where the interest of society requires it?

The reformatory aspect of justice is undoubtedly very important. But we come across criminals who are beyond redemption.

Even Krishna Iyer, who strongly advocated the social and human aspect of law, conceded in Rajendra Prasad's case that capital punishment can be legally permissible when it can never be reformed.

In addition, the Criminal Code provides sufficient guarantees. According to § 354, paragraph 3 of the Criminal Code, the Court must state special reasons for awarding the death penalty. Section 235 paragraph 2 provides for a post-conviction hearing on the issue of punishment. "Hanging a murderer brings no

pleasure to the judge. He is only performing a painful duty and passing sentence of death in the interest of society". We can therefore trust judges to perform this difficult function with care and human interest, bearing in mind that life imprisonment is the normal punishment for murder, while the death penalty is only given where the offender appears to be extremely depraved and a potential threat for society. From a constitutional point of view, the majority judgment presents very strong reasons for maintaining the constitutional validity of the death penalty.

In short, there can be no doubt about the constitutionality of the death penalty in our country. As to its appropriateness in a particular case, the matter must be left to the discretion of the Magistrate, who must bear in mind that for murder under Section 302 IPC, life imprisonment is usually an appropriate sentence, particularly in the case of a woman. In the case of adult men, the death penalty may be imposed in cases where the murder and the totality of the case show that he is a potential threat to society. The question of the appropriateness of the death penalty in a particular case must be assessed not only from the point of view of the accused; the interests of society as a whole must also be taken into account.

A challenge to the constitutionality of the death sentence also arose in *Triveniben v. State of Gujarat* and the Supreme Court confirmed that the Constitution does not prohibit the death penalty.

#### Section 303 of the Indian Penal Code

In the case of *Mithu v. State of Punjab* it was held that the mandatory death penalty for murder committed by life convicts under Section 303 IPC violates the rights guaranteed under Sections 14 and 21. Therefore, Section 303 IPC is unconstitutional not only on the ground that it is disproportionate and arbitrary, but also because it permits the deprivation of life by an unfair and unjust procedure. Section 303 of the IPC provides for the punishment of murder for life imprisonment - whoever commits murder, if sentenced to life imprisonment, shall be punished with death. In this case, the Supreme Court struck down Section 303 of the Penal Code as unconstitutional and declared it invalid.

#### Postponement of Execution of Death Sentence

Delay in the execution of the death penalty is a factor that may be considered when commuting a sentence of death to life. In the case of *Triveniben v. State of Gujarat* the Supreme Court held that "...inordinate delays in the execution of the sentence of death entitle the convicted person to approach this judicial will under Article 32, but this Court only to inquire into the nature of the delay and the circumstances, which occurred after the judgment had been finally confirmed by judicial process.... No fixed period of delay could be fixed to make the sentence of death executory. If the Supreme Court finds the postponement in the above sense to be unreasonable, it would cancel the death sentence and replace it with life imprisonment for the accused. Procedure prescribed by law in Article 21 means a procedure which is fair, just and reasonable. Thus, any

circumstance that makes the punishment harsh, unfair or unjust violates Article 21. Unreasonably long delays in the execution of a sentence of death after its confirmation (ss 413-415, CPC), for which the accused himself is not responsible, make the sentence harsh and unjust because it causes further torture and inhuman treatment.

#### Rope Suspension

A question arose before the Supreme Court in *Deena v. Union of India*, whether the execution of the death penalty by hanging with a rope is constitutional or not? The Supreme Court stated that the method prescribed by § 22 paragraph 1 letter 354(5), cr. PC for the execution of the death penalty does not violate the provisions of Article 21 of the Constitution. The hanging system operates throughout much of the civilized world, and there is a responsible body of scientific and legal opinion which holds that hanging is not a cruel method of capital punishment.

#### Public Hanging

Another question arose before the Supreme Court in *Lachma Devi v. State of Rajasthan* whether public hanging is constitutional for the execution of the death penalty or not? To answer this question, the Supreme Court took a liberal view and decided that public hanging is not prescribed in the prison rules, so it is unconstitutional.

#### Principle of the Rarest of Rare Cases

Now the judiciary has developed its own jurisprudence in evaluating which cases should be considered suitable for the imposition of the death penalty. Therefore, the death penalty is only given in rare cases. This determination is very difficult. There are various decisions in which the determination of the rarest of the rare has been challenged. In the end, the court could not follow any uniform guidelines, and the subjectivity of the judges also plays a crucial role in this decision. The death penalty should be imposed in the rarest of cases. The Supreme Court in *Machhi Singh v. State of Punjab* (1983) the Supreme Court laid down several principles to be kept in mind while deciding the question of punishment:

- i. Is there anything unusual about the crime that makes a life sentence disproportionate and warrants a death sentence?
- ii. Are the circumstances of the crime such that there is no alternative but to impose the death penalty even after the maximum weight of mitigating circumstances speaks in favor of the offenders?

#### Latest Rare Cases of Capital Punishment

The cases below are some of the recent death penalty cases that were also considered the rarest of the rare.

1. Appellant *Dhananjoy Chatterjee* was convicted by judgment of offenses punishable under Sections 376, 302 and 380 of the Indian Penal Code and

was awarded death sentence by the Sessions Judge, which was confirmed by the Supreme Court. The petitioner filed a motion for special leave. Permission was granted but the appeal was dismissed by the High Court.

- The prosecution alleges that the appellant sacrificed a 9-year-old child before the goddess Kali for his own prosperity. The Supreme Court sentenced the accused to death.
- Emphasizing that leniency in punishing serious crimes would have serious consequences, the Supreme Court awarded the death penalty to a man for raping and murdering a six-year-old girl.
- A special court in Bombay convicted Ajmal Kasab of murder, waging war in India, possession of explosives and other charges and later sentenced him to death. He was found guilty of 80 crimes and was responsible for mercilessly killing 166 people and injuring thousands while causing over 1000 crores of damage to state and private property.

### Critical Analysis

The death penalty has recently met with a lot of opposition. Can the death penalty be a morally acceptable punishment? A popular quote on the Internet by Anonymous says, "We kill people to show people that killing people is wrong." The slogan is short, simple and to the point. But is the death penalty really as ironic as the slogan suggests?

First, the slogan misses an important point. The death penalty does not punish people for killing, but for murder. Killing is justified when it is done in self-defense. To kill means to cause death. Murder, on the other hand, is defined as "the unlawful and malicious or willful killing of one human being by another" (for the less observant, this definition cannot be applied to the death penalty, since the death penalty is lawful, non-malicious, and not carried out by an individual, but by a government). "Kill", "murder" and "execute" are not interchangeable terms. Opponents of the death penalty would have us believe otherwise. Just because two actions lead to the same goal does not make them morally equivalent. If that were the case, legal imprisonment would be compared to kidnapping, love-rape, self-defense by battery, etc. Therefore, the slogan is better said: "We execute people to show people that murder is wrong."

Killing someone for killing other people is hypocritical and unjust. Maybe seeing a person who killed someone you know and love would give you peace, but it won't bring him back. Not to mention, maybe the criminally prosecuted person has a family. Anyone thinking about them? Offer comfort and condolences? No. They throw them out of the company saying they were close to the killer and are just as bad. Furthermore, crimes are acts of revenge. Revenge is not without reason. And no one ever asks what that reason is until it's too late. Therefore, the constitutional validity of the death penalty should not be constitutional and should be removed from the Constitution of India as soon as possible.

## Conclusion

Considering the above discussions, we see that the Indian thinking on capital punishment is still quite confused. It is not only a debate about the legality and constitutionality of the death penalty, but also the moral and social aspects related to this controversial topic, which has led to widespread confusion in this regard. Leaving the question of law aside, the question of capital punishment must take into account factors such as public sentiment on the one hand and the struggle with the moral problem of the principle of “an eye for an eye” on the other. We also know that it is only humane to err on the side of judgment and sometimes giving someone a second chance is like giving them another shot because they missed you the first time.

Perhaps there is no real right or wrong answer to the question of the death penalty, or perhaps if society in our country needs to evolve to a point where the answer is clear to us. Until then, a careful examination of the facts and evidence by the judiciary is required in every such sensitive case to avoid any possibility of error. India also lacks an authentic statistical database of the number of death sentences and executions against various other factors to give us a clearer picture of what needs to be done going forward.

## References

- [1] <http://oxforddictionaries.com/definition/english/capital%2Bpunishment> Last Accessed on 22-10-2016
- [2] <http://www.legal-explanations.com/definitions/capital-punishment.htm> Last Accessed on 22-10-2016
- [3] Leonard A Stevens, Death Penalty: The Case of Life vs. Death in the United States. Pp.74
- [4] Bring back death Penalty, THE HINDU, Chennai Edition, dated 12<sup>th</sup> October, 2005
- [5] George S. Blumer, Capital Punishment: A Reference Book, pp.552
- [6] Lachuma Devi v. State of Rajasthan, (1986) Cri L.J. 364
- [7] 408 US 238 (1982)
- [8] 428 US 153 (1976)
- [9] <http://www.localhistories.org/capital.html> Last Accessed on 22-10-2016
- [10] <http://faizlawjournal.blogspot.in/2007/12/capital-punishment-in-india.html>. Last Accessed on 22-10-2016
- [11] AIR 1983 SC 47
- [12] Right to Life and Dignity
- [13] Right to Equality before Law.
- [14] <http://www.deathpenaltyinfo.org/abolitionist-and-retentionist-countries>. Last accessed on 27-10-2016
- [15] <http://www.un.org/News/Press/docs/2012/sgsm14393.doc.html>. Last Accessed on 27-10-2016.
- [16] U.N. Publication, Rex. K. Singer, Death Validity? Pp 57
- [17] Ceylon Report, summary of arguments, pp 223 under Prison administration.
- [18] Law Commission of India, 35<sup>th</sup> Report Volume I-III (Capital Punishment) September 1967, Ministry of Law, Government of India.
- [19] U.N. Publication (1962), pp 62. Last Accessed on 22-10-2016
- [20] [http://articles.timesofindia.indiatimes.com/2011-11-15/india/30401179\\_1\\_death-penalty-sc-judge-the-rarest-of-rare-cases.html](http://articles.timesofindia.indiatimes.com/2011-11-15/india/30401179_1_death-penalty-sc-judge-the-rarest-of-rare-cases.html). Last Accessed on 22-10-2016.

# Study on Position of the Survivors and Victims of Child Sexual Abuse and the Impact of the Crime

---

---

**Shagufta Rashid**

*Research Scholar, Department of Law, Mewar University*

---

---

**Dr. Chandra Lok Chaudhry**

*Department of Law, Mewar University*

## Abstract

The aim and object of this article is to analyze the position of the survivors and victims of child sexual abuse and the impact of the crime. The paper aims at understanding the effective implementation of the Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012. The researcher will divide the research paper into three sections. The first section would be to understand the Child Protection System in India and the proceedings of the Special Courts in effectively implementing the Act. The second section would highlight the position of survivors and victims of child sexual abuse. The third section would focus on the latest Judgments of the Hon'ble Higher Courts with respect to the POCSO Act. This research paper is an attempt to find the major concern that whether the Act has served to deter the rate of sexual offences against the children because there has been no reduction in the number of such crimes. The researcher also tries to identify the factors that have led to the low level of convictions under the POCSO Act and also offers recommendations for strengthening the prosecution and investigation.

**Keywords:** Aggravated Penetrative Sexual Assault, Aggravated Sexual Assault, Sexual Exploitation, Perverse Mind, Gender Neutral, cataclysms.

## Introduction:

The Children are the world's most valuable resource and its best hope for the future. Children's rights aim to take into account the necessity of the development of a child.

Every 15 minutes a child is sexually abused in India.

95% of the Children abused in 2015 were known by a relative.

According to National Crime Records Bureau<sup>1</sup> one in four families don't even come forward to report such cases.

CONSTITUTIONAL GUARANTEES THAT ARE MEANT SPECIFICALLY FOR THE PROTECTION OF CHILDREN

Article 15(3) - Nothing in this article shall prevent the State from making any special provision for women and children.

Right to being protected from being trafficked and forced into bonded labour (Article 23)

Right of weaker sections of the people to be protected from social injustice and all forms of exploitation (Article 46)

Right to be protected from being abused and forced by economic necessity to enter occupations unsuited to their age or strength (Article 39(e))

Right to equal opportunities and facilities to develop in a healthy manner and in conditions of freedom and dignity and guaranteed protection of childhood and youth against exploitation and against moral and material abandonment (Article 39 (f))

India is also a signatory to the United Nations Convention on the rights of the Child.

Article 19(1)<sup>2</sup>, UNCRC<sup>3</sup> directs State Parties to take all appropriate measures to protect children from violence, including sexual abuse.

Article 34<sup>4</sup>, UNCRC obligates State Parties to ensure that children are protected from all forms of sexual exploitation and sexual abuse, including the inducement and coercion of a child to engage in unlawful sexual activity and the exploitative use of children in prostitution, unlawful sexual activities and pornographic performances and materials. Article 36<sup>5</sup> also prohibits all forms of exploitation prejudicial to any aspect of the child's welfare.

The comprehensive POCSO Act was came into effect on November 14, 2012 on the Children's day. Sec 2 (1) (d) of the Act states "Child" means any person below the age of eighteen years.

The enactment of the POCSO Act, 2012 and the establishment of Special Courts under this Act was really a step forward in addressing the cases of child sexual abuses to meet the needs of children. It is almost a decade on it, is time to analyze whether the criminal justice system has succeeded in giving children access to justice.

#### What are the Amendments to the Act?

On August 5, 2019, the POCSO was amended and it increases the minimum punishment from 7 years to 10 years. It further adds that if a person commits penetrative sexual assault on a child below the age of 16 years, he will be punishable with imprisonment between 20 years to life, with a fine.

The amendment adds two more grounds to the definition of aggravated penetrative sexual assault. These include: (i) assault resulting in death of child, and (ii) assault committed during a natural calamity, or in any similar situations of violence. Before the amendment, the punishment for aggravated penetrative sexual assault is imprisonment between 10 years to life, and fine. It also increases the minimum punishment from 10 years to 20 years, and the maximum punishment to death penalty.

The amendment adds two more offences to the definition of aggravated sexual assault. These include: (i) assault committed during a natural calamity, and (ii) administering or helping in administering any hormone or any chemical substance, to a child for the purpose of attaining early sexual maturity.

A sexual offence of any kind not only harms the child physically, but also causes long term damage to the mental state of the child. The POCSO cases require understanding of the complexities of abuse, the child should feel supported, the testimony and evidence should be sensitively appreciated, and the privacy of the child should also be protected. The purpose of this provision is to ensure that POCSO cases are dealt only in Special Courts “designated for similar purposes” as laid down in the Act, and to ensure speedy trial.

According to Section 28(1) of POCSO Act, State Governments should, in consultation with the Chief Justice of the Hon’ble High Court, designate a Sessions Court to be a Special Court to try offences under the POCSO Act, in order to facilitate the speedy trial. The Standing Committee Report on the POCSO Bill had observed that the establishment of multiple courts or legal infrastructures would not be useful and recommended that “wherever the legal framework has been created under the Commissions for Protection of Child Rights Act, 2005, the same should be used.” Accordingly, if a Sessions Court has been notified as a Children’s Court under the Commissions for Protection of Child Rights Act, 2005, or if any other Special Court has been designated for similar purposes under any other law, it will be regarded as a Special Court under the POCSO Act. The POCSO Act does not expressly require Special Courts to exclusively deal with offences under the POCSO Act or offences against children.

#### Structural Modifications of the Court-room

According to Section 33 (4) of POCSO Act, the “child-friendly atmosphere” of the courtroom should be created “by allowing a family member, a guardian, a friend or relative, in whom the child has trust or confidence, to be present in the Court.” This provision bears no reference to the physical dimension of the courtroom or the behaviour required to ensure that the child’s interaction with the criminal justice system is child-friendly.

#### Preventing Exposure towards Accused While Recording Testimony of the Victim Child

Section 36(1) of POCSO Act, requires the Special Court to ensure that the child is not exposed to the accused at the time of recording evidence, and for this purpose it can record the evidence using video conferencing, single visibility mirrors, curtains, or any other device.

#### Child-friendly Procedures

Section 33(2) of POCSO Act prohibits the Special Public Prosecutor and the defence lawyer from putting questions directly to the child. All questions during the Chief examination and Cross-examination must be routed only through the Special Court. The very purpose of such a provision is to guarantee

that the child does not feel insecure, intimidated or threatened by the SPP and the defence lawyers and age appropriate questions were also permitted to ask. The POCSO Act has given statutory recognition to the Supreme Court's direction in *Sakshi Vs Union of India*<sup>6</sup>, (2004) 5 SCC 518 that during a trial of child sex abuse or rape. All the questions asked during cross-examination should be given in writing to the Presiding Officer of the Court so that they can be addressed to the victim or witnesses in a language understood by the child. As per Section 33 (3)<sup>7</sup> POCSO Act, frequent breaks should be allowed to the child during trial if necessary. Special Courts must ensure that children are not called repeatedly to testify in the Court under Section 33(5)<sup>8</sup>. The Model Guidelines on the POCSO Act emphasize that "the child's testimony should not be delayed by other matters. The Court should bear in mind the child's concentration, the length of any recording, and the need for frequent breaks."

#### Position of the Survivors and Victims

The Voices of victims and witnesses are often silenced by threats and other coercive techniques employed by powerful accused persons. The reality is that there is a gross failure to support and rehabilitate the victims and their family. As a result of this, either the victims turn hostile or the witnesses turns hostile, or they simply lose hope and stop cooperating for investigation or the Court Proceedings. The timely payment of compensation and due rehabilitation of the victim are key to ensure a proper trial that actually brings out the truth.

Section 33(8)<sup>9</sup> of POCSO provides that in appropriate cases, in addition to punishment, the Special Court may direct payment of compensation to the child for any physical or mental trauma caused to the child and also for immediate rehabilitation. In pursuant to the parent Act, the POCSO Rules of 2012 dedicated Rule 7 to the procedure and parameters of providing such compensation. Rule 7(3) enlisted the various parameters/factors to be considered by the Special Court in deciding such compensation, such as gravity of the offence, expenditure incurred/likely to be incurred on medical treatment, loss of educational opportunity, financial conditions, etc. Rule 7(4) and (5) states that after the amount is decided by the Special Court, it is to be disbursed from the Victims Compensation Fund or such other scheme by the legal services authority within 30 days of receipt of such order.

In a sample study conducted by the Delhi Commission for Protection of Child Rights (a statutory body constituted under Section 17 of The Commissions for Protection of Child Rights Act, 2005) in collaboration with Human Development Society titled Mapping of Needs and Priorities in 2019: A Study of Child Rape Victims in Delhi was conducted and the study highlighted the challenges the child rape victims and their families face, and aspects that have a definite bearing on their rehabilitation and social reintegration.

In *Re Nipun Saxena & Anr Vs Union of India & Ors*<sup>10</sup>, (2019) 2 SCC 703 the Hon'ble Supreme Court has directed that the Special Court, upon receipt of information as to commission of any offence under the Act by registration of FIR, shall on his own or on the application of the victim make an enquiry as to

the immediate needs of the child for relief or rehabilitation and pass appropriate order for interim compensation.

Nipun Saxena's case was preceded by another pertinent judgment passed under POCSO Act by the Supreme Court in Alakh Alok Srivastava Vs UOI<sup>11</sup>, (2018) SCC OnLine SC 212 wherein the Apex Court directed for each High Court to constitute a three-judge committee to regulate and monitor the progress of trials under POCSO. In addition, each state was directed to constitute a Special Task Force to ensure that investigation is properly conducted under POCSO Act.

Latest Judgments of the Hon'ble Supreme Court and High Courts With Respect to Pocso Act

### ***The Body of a Woman is her Own Temple***

The Hon'ble Supreme Court held in State of Madhya Pradesh Vs Madhanlal<sup>12</sup> in 2015 that in a case of rape or attempt of rape, the conception of compromise under no circumstances can really be thought of. These are crimes against the body of a woman which is her own temple. These are offences which suffocate the breath of life and sully the reputation. And reputation, needless to emphasize, is the richest jewel one can conceive of in life. No one would allow it to be extinguished. When a human frame is defiled, the "purest treasure, is lost. Dignity of a woman is a part of her non-perishable and immortal self and no one should even think of painting it in clay. There cannot be a compromise or settlement as it would be against her honour which matters the most. It is sacrosanct.

POCSO Act Is Gender Neutral: The Hon'ble Delhi High Court Awards 15 year Jail Term For a Man For Sodomizing a 6-year-old Boy.

In Re Jabbar Vs State, the Hon'ble Court said "The POCSO Act applies to every person below 18 years of age". The Delhi High Court upheld the conviction of a man for sodomizing a 6-year-old boy and sentenced him to rigorous imprisonment of 15 years under the Protection of Children from Sexual Offences (POCSO) Act. A bench of Hon'ble Justice SP Garg and Justice C Hari Shankar observed that the Protection of Children from Sexual Offences (POCSO) Act is gender-neutral and it does not discriminate or distinguish between a boy and a girl, as victims of sexual offences.

Sexual Offences Constitute an Altogether Different Class of Crime Which is the Result of a Perverse Mind: Allahabad High Court

In Re Bodhi Sattwa Gautam Vs Subhra Chakraborty<sup>13</sup>, AIR 1996 SC 922, the Hon'ble Supreme Court observed that "Sexual offences constitute an altogether different class of crime which is the result of a perverse mind. By their very nature these crimes cannot be treated at par with matrimonial offence. Sexual violence apart from being a dehumanizing act is an unlawful intrusion of the right of privacy and sanctity of a female and is a serious blow to her supreme honor offending her self-esteem and dignity."

It was again reiterated in Mohd Kaleem Vs State of Uttar Pradesh decided on August 22, 2019 by Hon'ble Justice Sanjay Kumar Singh.

The Allahabad High Court held that sexual offences constitute an altogether different class of crime which is the result of a perverse mind. By their very nature these crimes cannot be treated at par with matrimonial offence. Sexual violence apart from being a dehumanizing act is an unlawful intrusion of the right of privacy and sanctity of a female and is a serious blow to her supreme honor offending her self-esteem and dignity. Allowing quashing of charge-sheet, pursuant to a compromise, will, in such cases, only embolden the perpetrators of such crimes, which otherwise are on the increase, in society. If the accused in such a case is an affluent person and the prosecutrix comes from a socially or economically weaker strata of the society, quashing in such a case would only encourage commission of such offences, as the accused, using his money power or otherwise, may be able to induce the prosecutrix or victim to enter in to settlement with him and then seek quashing of criminal proceedings, on the strength of that settlement.

**The Judge is at the Liberty to Test the Capacity of a Child Witness:**

In Re P Ramesh Vs State, Criminal Appeal No. 1013 of 2019 decided on August 1, 2019, the Hon'ble Justice Dr. Dhananjaya Y Chandrachud and Hon'ble Justice Indira Banerjee of the Hon'ble Supreme Court held that in order to determine the competency of a child witness, the judge has to form her or his opinion. The Judge is at the liberty to test the capacity of a child witness and no precise rule can be laid down regarding the degree of intelligence and knowledge which will render the child a competent witness. The competency of a child witness can be ascertained by questioning her or him to find out the capability to understand the occurrence witnessed and to speak the truth before the Court. In Criminal proceedings, a person of any age is competent to give evidence if she or he is able to (i) understand questions put as a witness; and (ii) give such answers to the questions that can be understood. A child of tender age can be allowed to testify if she or he has the intellectual capacity to understand questions and give rational answers thereto. A child becomes incompetent only in case the court considers that the child was unable to understand that the child was unable to understand the questions and answer them in a coherent and comprehensible manner. If the child understands the questions put to her or him and gives rational answers to those questions, it can be taken that she or he is a competent witness to be examined.

In Re Sri Joubansen Tripura Vs The State of Tripura, The Hon'ble Tripura High Court has held that "Conviction Of Accused Only On The Basis Of Presumption Under POCSO Act Would Offend Article 20(3) and Article 21 Of The Constitution of India"

The Tripura High Court held that the conviction of an accused only on the basis of presumption under Section 29 and Section 30 of the POCSO Act would offend Article 20 (3)<sup>14</sup> "No person accused of any offence shall be compelled to

be a witness against himself” and Article 21<sup>15</sup> “Right to Life of the Constitution of India.” Noting that such presumption would lead up to the prosecution commencing the trial with “an added advantage”, a Division Bench comprising of Hon’ble Chief Justice Akil Kureshi and Justice Arindam Lodh observed thus:

*“Upon meticulous reading of Section 29 and Section 30 of the POCSO Act, according to us, prosecution will commence the trial with an additional advantage that there will be presumption of guilt against the accused person, but, in our considered view, such presumption cannot form the basis of conviction, if that be so, it would offend Article 20 (3) and 21 of the Constitution of India. Perhaps, it is not the object of the legislature to incorporate Sections 29 and 30 under the POCSO Act.”*

The Hon’ble Delhi High Court in Dinesh Sharma and others Vs State and another has held that “POCSO - FIR Cannot Be Quashed On The Ground That Victim Decided To Compromise Matter After Attaining Majority” A single judge bench comprising of Hon’ble Justice Subramonium Prasad observed thus:

“Exercising jurisdiction under Section 482 Cr.P.C<sup>16</sup> to quash an offence under POCSO Act would go against the intention of the legislature which has brought out the special enactment to protect the interests of children. The FIR cannot be quashed on the ground that the victim after attaining majority has decided to compromise the matter with the accused.” The Court, while noting that the exercise of jurisdiction under Section 482 of Cr P C in quashing an offence under POCSO will go against the intention of the legislature, also relied on the Statements of Objects and Reasons of the POCSO Act which reads “heinous crime like rape cannot be quashed by the High Court by exercising power under Section 482 Cr.P.C. even if the prosecutrix and the accused have entered into a compromise.”

**Victim Girl and Man In Love and Living Together For 4 Years Won’t Make POCSO Offence Compoundable Even If Girl Agrees To It held Madras High Court.**

In a significant ruling, the Hon’ble Madras High Court held that once a victim girl gives a complaint about an offence under the POCSO Act, and the case is registered, it becomes an offence against State and the subsequent compromise won’t take away the offence. Underlining that any offence committed under the POCSO Act is not compoundable offence, the Bench of Hon’ble Justice P. Velmurugan observed,

*“The scope of the (POCSO) Act is very clear, mere falling in love is not an offence but a person who is above 18 and who had sexual assault intentionally against a child who is under 18 years is an offence.”*

Facts of the Case: A case was registered against the Petitioner for the offence u/s 5(1)<sup>17</sup> read with Section 6<sup>18</sup> of the POCSO Act and after trial, the petitioner was convicted and sentenced to undergo 10 years R.I.

At the outset, the Court noted that before the trial Court, the victim girl had deposed and further her statement was also recorded u/s 164 Cr.P.C.<sup>19</sup> before the Magistrate, wherein she had clearly stated that the appellant had committed the offence. Significantly, noting that at the time of the commission of offence, the victim child was aged under 18 and hence, the victim is a child under Section 2(1)(d) of the POCSO Act, the Court observed, "The evidence of the victim girl is very clear that she was at the age of 17 years on the day of occurrence and the appellant had made a false promise that he would marry her and against her will, he had forceful penetrated sexual intercourse repeatedly with her, subsequently, he refused to marry her." Further, the Court noted that after the completion of examination of prosecution witnesses, the appellant convinced the victim girl and filed an affidavit and even in the affidavit, the victim girl had not stated that no such occurrence occurred, but, she had only stated that for four years they had been living together.

Significantly, the Hon'ble Court ruled, "Even assuming that victim girl had fallen in love with the appellant and admitted that they are living for four years, even on the date of commission of the offence, provisions of POCSO Act attract. It is not a compoundable offence. Subsequently, she cannot turn it to compound the offence."

**In Re Badri Nath Vs Union Territory of Jammu and Kashmir, the Hon'ble Jammu and Kashmir High Court has held that "POCSO - Victims Entitled To Receive Information About Court Proceedings"**

The Jammu and Kashmir High Court has held that (minor rape) victims are entitled to receive most appropriate information of the proceedings which would include the status of the accused including his or her bail, temporary release, parole or pardon, escape, absconding from justice or death.

A single bench of Hon'ble Justice Sanjay Dhar observed thus in view of the guidelines issued by the Union Ministry of Women and Child Development under Section 39<sup>20</sup> of the POCSO Act.

#### Conclusion

The intention behind the POCSO Amended Act is laudable. However, the rhetoric over severe punishments should not deflect our attention from the problems related to implementation of POCSO Act so far such as lack of adequate Special courts, lack of sensitization for investigators and prosecutors in dealing with child victims, poor rate of convictions etc.

The poor conviction rate and epidemic rise in crimes under POCSO itself leaves an unpleasant picture of the manner in which the criminal justice system is being administered and managed in India. As per the last available data from the National Crime Records Bureau 2016, less than three per cent of child rape cases that came up before the Courts ended in convictions.

While hearing a Public Interest Litigation in 2017, the Hon'ble Delhi High Court was told that only 18.49 per cent of people accused of child sexual abuse under the POCSO (Protection of Children from Sexual Offences) Act were found guilty by Courts in the capital in the first half of 2016. A report by the

National Law School Bangalore, which examined 667 judgments between 2013 and 2015, highlighted this predicament. It expressed that alleged victims and their family members turned hostile in “67.5% cases, and in just 26.7% cases these people dared to testify against the accused”.

Once a POCSO case is filed, the long-winded procedure provides the accused more than enough time to coerce and intimidate the victims or their families to backtrack on their complaints. This situation turns out to be more complicated when the accused is someone from the family itself. The conviction rate drops even further due to these circumstances.

According to Health Assessment Questionnaire’s analysis of POCSO cases it handled since 2013, the average time taken for completing a child’s testimony in seven of the 10 cases was 242 days, which is eight months as against the mandated 30 days. On an average, these cases remained pending for 69 months, which is 5.75 years, as against the mandated period of one year.

The provisions of capital punishment might provoke the accused to murder the victims and increase the risk of sex offenders doing away with their victims to destroy evidence and to ensure that there is no principal testimony. This proposition is widely feared among various NGOs and Child right activists. Everyone wants the perpetrator to be punished but not at the cost of the life of the victim.

Taking suo moto notice of the huge pendency of POCSO cases, the Hon’ble Supreme Court has directed the establishment of Special Courts in each district.

Simply having laws and numerous guidelines do not per se guarantee protection of the child. The focus should be more on taking measures to ensure faster and efficient investigation and prosecution of POCSO cases.

#### References:

1. NCRB, is an Indian government agency responsible for collecting and analysing crime data as defined by the Indian Penal Code and Special and Local Laws. NCRB is headquartered in New Delhi and is part of the Ministry of Home Affairs, Government of India.
2. Article 19 (1) of UNCRC -States Parties shall take all appropriate legislative, administrative, social and educational measures to protect the child from all forms of physical or mental violence, injury or abuse, neglect or negligent treatment, maltreatment or exploitation, including sexual abuse, while in the care of parent(s), legal guardian(s) or any other person who has the care of the child.
3. The United Nations Convention on the Rights of the Child
4. Article 34 -States Parties undertake to protect the child from all forms of sexual exploitation and sexual abuse. For these purposes, States Parties shall in particular take all appropriate national, bilateral and multilateral measures to prevent:
5. The inducement or coercion of a child to engage in any unlawful sexual activity; The exploitative use of children in prostitution or other unlawful sexual practices; The exploitative use of children in pornographic performances and materials.
6. Article 36 -States Parties shall protect the child against all other forms of exploitation prejudicial to any aspects of the child’s welfare (2004) 5 SCC 518
7. Sec 33 (3) -The Special Court may, if it considers necessary, permit frequent breaks for the child during the trial.

8. Section 33 (5) -The Special Court shall ensure that the child is not called repeatedly to testify in the court.
9. Section 33 (8) -In appropriate cases, the Special Court may, in addition to the punishment, direct payment of such compensation as may be prescribed to the child for any physical or mental trauma caused to him or for immediate rehabilitation of such child.
10. (2019) 2 SCC 703
11. (2018) SCC OnLine SC 212
12. 2015 SCC OnLine SC 579
13. AIR 1996 SC 922
14. Article 20 (3) -No person accused of any offence shall be compelled to be a witness against himself
15. Article 21 -Protection of life and personal liberty No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law
16. Sec 482 of Cr P C -Saving of inherent powers of High Court. Nothing in this Code shall be deemed to limit or affect the inherent powers of the High Court to make such orders as may be necessary to give effect to any order under this Code, or to prevent abuse of the process of any Court or otherwise to secure the ends of justice.
17. Sec 5 (l) -whoever commits penetrative sexual assault on the child more than once or repeatedly
18. Sec 6 -Punishment for aggravated penetrative sexual assault. —(1) Whoever commits aggravated penetrative sexual assault shall be punished with rigorous imprisonment for a term which shall not be less than twenty years, but which may extend to imprisonment for life, which shall mean imprisonment for the remainder of natural life of that person and shall also be liable to fine, or with death.
19. Sec 164 of Cr P C -Recording of confessions and statements.
20. Sec 39 of POCSO Act -Guidelines for child to take assistance of experts, etc

# Emotional Intelligence of Two-year B.Ed. Students in the District of Jalandhar

---

---

**Mukesh Kumar**

*Assistant Professor, DIPS college of Education, Dhilwan, Dist. Kapurthala(Pb.)*

## Abstract

The main objective of this paper was to study the Emotional Intelligence of two-year B.Ed. Students in terms of Gender and types of Management. Using the Stratified Random Sampling Technique 300 two-year B.Ed. Students formed the sample of the study. The data was collected using Emotional Intelligence Inventory (EII) 2004 by Dr S.K. Mangal and Shubhra Mangal. The collected data were analysed with the help of an Independent Sample t-test. The result showed that in terms of Gender, the mean scores of Emotional Intelligence of Male and Female two-year B.Ed. students did not differ significantly. In terms of types of Management, the mean scores of Emotional Intelligence of Private two-year B.Ed Students and Govt. aided two-year B.Ed. Students differ significantly.

**Keywords:** *Emotional Intelligence, Two-year B.Ed. Students*

## Introduction:

The term emotional intelligence (EI) was popularized by Goleman (1995) who claimed that emotional intelligence "can be as powerful, and at times more powerful, than I.Q." There are a number of different definitions of emotional intelligence in the psychological literature, but in general, it is defined as an ability to identify, regulate, and manage emotions in the self and in others. Research indicates that higher levels of emotional intelligence are associated with a range of positive outcomes, such as better workplace performance, physical and mental health. Good teachers need a strong emotional intelligence. Emotional intelligence (EQ) is emerging as a critical factor for sustaining high achievement, retention, and positive behaviour as well as improving life success. Increasingly, schools and educational organizations are turning to EQ seeking a systemic solution to improve outcomes – both academic and social. It is also found that the faculty members who performed superior in overall EI skills tended to achieve higher teaching effectiveness. Sutton & Wheatly (2003) have stated that emotional competency of teacher is necessary, both in general for their own well-being and for effectiveness and quality in carrying out teaching-learning processes in the classroom, and in particular for the socio-emotional development of students.

Emotional intelligence: Emotional intelligence is the ability to perceive emotions, to access and generate emotions so as to assist thought, to understand emotions and emotional knowledge, and to reflectively regulate emotions so

as to promote emotional and intellectual growth (Mayer & Salovey, 1997). Emotional intelligence is the ability to recognize, understand and manage emotions in ourselves and others. Emotional Intelligence is divided into the four clusters namely Self-Awareness, Self-Management, Social Awareness and Relationship Management (Daniel Goleman, 2002). In short Emotional intelligence is the capacity to blend thinking and feeling to make optimal decisions.

#### Literature Review

Sharma (2014) studied the relationship between environmental awareness and emotional intelligence of student teachers and teachers. The sample of the study consisted of 200 student- teachers (100 male and 100 female) and also of 100 teachers (50 male and 50 female). The results showed that there was no significant difference between male and female student-teachers and teachers regarding environmental awareness and emotional intelligence. The results also showed that the environmental awareness of male and female student-teachers was also found to be slightly positively but not significantly correlated with emotional intelligence. The environmental awareness of male teachers was found to be moderately, positively and significantly correlated with emotional intelligence. On the other hand the environmental awareness of female teachers was found to be slightly positively but not significantly correlated with emotional intelligence

Ravi Kant (2019) studied the emotional intelligence among the university students to find the difference between EI on the basis of gender, locality, level of course and school of study. This survey based study used data from 200 students of a Central University. The result indicates that all students of School of Education have emotional Intelligence of high level except in comparison of students of School of Law & Governance. Male and female students are significantly differed from each other on Emotional Intelligence on overall sample. Female students found more Emotional Intelligent with high mean value. UG and PG students of were found not significantly differ from each other on Emotional intelligence. UG students were more emotionally intelligent on the basis of mean value. Residential location does not have any significant role but rural students were more emotionally intelligent in comparison to their counterpart.

#### Rationale of the Study

In this present era, every person has to be busy in their activities in such a way that they even don't get much more time to spend with their family. Most truly speaking, the students enrolled in the two-year B.Ed. Programme in different universities have to cover up their subject with the B.Ed. Course starting from 9.00 am to 5.00 pm. Teaching is measured to be one of the stressful occupations, especially because it involves daily work based on social interactions. The teacher must make great endeavour to control not only his own emotions and also emotions of students, parents, administrators and colleagues. It is evident that the capability of B.Ed. student teachers to perform

the work not only depends on their teaching skills, and intellectual capability (IQ) but also emotional intelligence (EI). So the researcher wants to test the emotional intelligence of the pupil teachers.

#### Objectives of the Study

1. To compare the Mean Scores of Emotional Intelligence of Male and Female two-year B.Ed. Students.
2. To compare the Mean Scores of Emotional Intelligence of Private and Government two-year B.Ed. Students.

#### Hypotheses:

H1: There is no significant difference in the Mean Scores of Emotional Intelligence of Male and Female two-year B.Ed. Students.

H2: There is no significant difference in Mean Scores of Emotional Intelligence of Private and Government two-year B.Ed. Students.

#### Methodology

The present study has used the Descriptive Survey Method.

#### Population

The population included two-year B.Ed. students studying in different private and Government Educational colleges in the district of Jalandhar.

#### Sample and Sampling Technique

Using a Stratified Random Sampling Technique, a sample of 300 Two-year B.Ed. students was considered for the present study considering the type of Gender and Type of Management.

#### Tool for Data Collection

The current study has adopted Emotional Intelligence Inventory (EII) standardized and developed by Dr. S.K. Mangal and Shubhra Mangal (2004) for measuring the Emotional Intelligence of two-year B.Ed. Students. The tool has four areas of Emotional Intelligence namely i) Intra-personal awareness, i) Inter-personal awareness, iii) Intra-personal management and iv) Inter-personal management respectively. It has 100 items with 25 items in each dimension. The data was collected at one point of time using the cross-sectional method.

#### Analysis and Interpretation

The collected data were analyzed using both Descriptive and Inferential statistics such as Mean, SD, and sample t-test, SPSS 18 was used to compute all statistical calculations for the present investigation.

#### Result and Interpretation

The first objective was to compare mean scores of Emotional Intelligence of Male and Female two-year B.Ed. Students. The data were analyzed with the help of t-Test, using Statistical Package for the Social Sciences (SPSS -18), and the results are given in Table 1.

**Table 1: Gender-wise M, SD, N and t-Values of Emotional Intelligence of Male and Female two-year B.Ed. Students**

<i>Gender</i>	<i>N</i>	<i>M</i>	<i>SD</i>	<i>Df</i>	<i>t-value</i>	<i>Remarks</i>
Male	150	57.00	10.13	298	0.43	Not Significant
Female	150	57.53	11.21			

From Table 1, it is evident that the t-value is 0.43 which is not significant at 0.05 level with df=298. It shows that the mean scores of Emotional Intelligence of Male and Female two-year B.Ed. Students did not differ significantly. Thus, the null hypothesis that there is no significant difference in Mean Scores of Emotional Intelligence of Male and Female two-year B.Ed. Students is not rejected. It may, therefore be said that both Male and Female students were found to have same extent of Emotional Intelligence.

The second objective was to compare the Mean Scores of Emotional Intelligence of Private and Government two-year B.Ed. Students. There were two types of Management, namely, Private educational colleges and Govt. aided educational colleges. The data were analyzed with the help of t-Test, using Statistical Package for the Social Sciences (SPSS-18), and the results are given in Table 2.

**Table 2: M, SD, N and t-Values of Emotional Intelligence of Private two-year B.Ed. Students and Govt. Aided two-year B.Ed. Students**

<i>Types of Management</i>	<i>N</i>	<i>M</i>	<i>SD</i>	<i>Df</i>	<i>t-value</i>	<i>Remarks</i>
Govt. Aided educational colleges	150	55.20	11.81	298	3.41	Significant
Private educational colleges	150	59.33	8.97			

From Table 2, it is evident that the t-value is 3.41 which is significant at 0.05 level with df=298. It shows that the mean scores of Emotional Intelligence of Private two-year B.Ed. Students and Govt. aided two-year B.Ed. Students differ significantly. Thus, the null hypothesis that there is no significant difference in Mean Scores of Emotional Intelligence between Private two-year B.Ed. students and Government two-year B.Ed. Students is rejected. Further, the mean score of Emotional Intelligence of Private two-year B.Ed. Students is 59.33 which is significantly higher than that of Govt. Aided two-year B.Ed. Students, whose mean score is 55.20. It may, therefore be said that Students studying in Private colleges were found to have significantly higher Emotional Intelligence than their counterpart students who were studying in Govt. Aided educational colleges.

#### Conclusion

Emotional Intelligence is one of the most overlooked areas in the educational pedagogy. The study has taken into consideration various demographic and structural factors which influences the Emotional Intelligence of Students. To conclude, there is no significant influence of Gender on Emotional Intelligence of two-year B.ED. Students but the types of Management have significant

influence on the Emotional intelligence of the two-year B.Ed. Students. Thus, recommendations are proposed for the behaviour modifications of students since Emotional Intelligence is learn and not inherited.

### References

- Goleman, D. (1995). *An EI-Based Theory of Performance, The Emotionally Intelligent Workplace*. New York: Bantam Books.
- Mangal, S. K., & Mangal, S. (2004). *Mangal Emotional Intelligence Inventory (MEII)*, (2004). *Mangal Emotional Intelligence Inventory (MEII)*,.
- Ravi Kant (2019), *Emotional intelligence: A study on university students*, *Journal of Education and Learning (EduLearn)*, 13( 4) 441-446.
- Salovey, P. & Mayer, J.D. (1990) *Emotional Intelligence Imagination, Cognition & Personality Journal of Social Psychology*, 9, 185-211.
- Sharma, S. (2014), *A Study of Environmental Awareness of Student Teachers and Teachers in Relation of Their Emotional Intelligence*. *Open Journal of Social Sciences*, 2, 146-151.
- Sutton, R.E.; Wheatley, K.F(2003). *Teachers' emotions and teaching: A review of the literature and directions for future research*. *Educ. Psychol.* 15, 327–358.

# Career Decision Maturity of Adolescence Students In Relation to Their Self-concept

---

---

Dr. Sunita Arya

Kaligdhar Institutie of Higher Education, Malout(Pb).

## Abstract

*The present study was meant to investigate the career decision maturity of Adolescence students in relation to their self-concept. The study consisted of 200 school students of 11<sup>th</sup> and 12<sup>th</sup> class randomly drawn from two different schools of Malout. Data was collected with the help of Career Decision making Scale by Singh (2014) and Self-Concept Scale (Ahluwalia and Singh, 2012). The data obtained were analysed statistically with the help of Mean, SD, t-ratio and correlation to arrive at the following conclusions: (i) There was significant difference between the career decision maturity of boys and girls, (ii) There was significant difference between the self-concept of boys and girls (iii) There was significant and positive relationship between career decision maturity and self-concept of boys (iv) There was significant and positive relationship between career decision maturity and self-concept of girls (v) There was significant and positive relationship between career decision maturity and self-concept.*

## Introduction

Adolescence is a time of life when the child is on the threshold of adulthood. It is a period of intense and rapid development and is characterized by numerous developmental tasks including gaining new and more mature relationship with others, achieving emotional independence from parents and the cognitive and psychological resources to face the challenges of adult life (Hazen, Schlozman & Beresin, 2008). Thus this is the time when the responsibilities of mature adult are slowly becoming manifest in the child's mind. The adolescent mind is filled with dreams of future, and perhaps even some fantasy. Adolescents acquire the increasing ability to think abstractly and hypothetically. One of most crucial decisions a young adolescent must make is the selection of an occupation. Frequently, it is viewed by family and community as a mere start to workplace readiness; however, this decision plays a major role in the establishing youth in a career path that open as well as closes opportunities. Adolescence is a period of life with specific health and developmental needs and rights. It is also a time to develop knowledge and skills, learn to manage emotions and relationships, and acquire attributes and abilities that will be, important for enjoying the adolescent years and assuming adult roles. All societies recognize that there is a difference between being a child and becoming an adult. How this transition from childhood to adulthood is defined and recognized differs between cultures

and over time. In the past it has often been relatively rapid, and in some societies it still is. In many countries, however, this is changing. Age is a convenient way to define adolescence. But it is only one characteristic that delineates this period of development. Age is often more appropriate for assessing and comparing biological changes (e.g. puberty), which are fairly universal, than the social transitions, which vary more with the socio-cultural environment.

### Career Decision Maturity

Maturity is respective liberty from the inferiority complex, pride and fierce. Maturity other important element is knowledge of reality. Its characteristic is dynamic and adaptable. The more mature an individual is the more stable, he is in adjustment. A mature person is able to accept a tolerable failure. A mature person is preferred future planning and has ability to holding up or reconsidering his hopes in according to conditions demand. An emotionally mature person is able to handle situations in the school/workplace, society and culture and on the other hand an immature person shows general unhappiness as seen in the feeling of fear, failure, disappointment, frustration and stress. Career is a person's journey over the whole life; an expression of what is significant and useful to him. It is a sequence of rewards and unrewarded experiences and can include the role of an individual's as a student, worker, parent, citizen and so on. Career satisfaction mainly comes from the interaction between being (sense of self) and doing (the expression of self). The procedure of good career decision making involves – knowledge of one's self, knowledge of opportunities available in society and making a choice to pursue a particular role.

Spokane (1991) considers that career maturity is based on the direct assistance given to an individual to promote more effective decision making, intensive counselling to help resolve career difficulties; enhancement of person's career development to enable him to make more effective career decision.

Guyrdhan and Tyler (1992) said that career decision making is considered as a logical process that includes knowledge, aim, assessment, exploration, commitment, implementation and reassessment.

Dogan (2014) defined career decision as making a choice for a profession, educational courses, occupation or school.

### Self Concept

One's personality is composed of a core, it is called concept of self. Self-concept is collection of beliefs that we have for ourselves whether it is positive or negative. Self is composition of all that a man can call his body, traits and abilities, his material possessions, his family, friends, enemies, his vocation and avocations etc. In the broader sense a man's self is the sum total of all that he can call his and related to him whether his body, psychic power, property, relationships, reputation whatever he possess in any form.

Baumeister (1999) defined self- concept as "how we think about and evaluate our self. To be aware of oneself is to have a concept of oneself".

Huitt (2004) defined self-concept “as an intervals sense of self, including self-definition in the various social roles one enacts, including assessment of one’s own status with respect to a single trait or to many human dimensions, using societal or personal norms as criteria”

Hurlock (2007) as cited in Istiana (2017) defined self-concept “is an individual view of himself. Self-concept consists of two components, namely the concept of the real self which is a picture of the self, and the concept of the ideal self which is the picture of the individual about the desired personality.”

#### Review of Related Literature

Kaur (2005) studied the career maturity among the students of public and government schools. The results of the study indicated that the students of public schools possess a higher career maturity attitude, career maturity competence, as well as self-concept and achievement motivation. Significant relationships have also been obtained between career maturity attitude and career maturity competence, internal locus of control and achievement motivation in case of boys in public schools and between career maturity attitude, achievement motivation and self-concept in case of boys in government school and between career maturity competence and achievement motivation in case of girls in government school.

Hasan (2006) had investigated whether self-concept, occupational aspiration and gender were capable of generating variance in career maturity of Indian adolescents studying in class X. It was found that all the three variables i.e. self-concept, occupational aspiration level and the gender had a significant positive correlation with the adolescents’ level of career maturity.

Kaur and Amritsa (2008) had investigated the dimensions of career maturity among adolescents in high, medium and low school climates and found that self-appraisal, occupational information and problem solving were significantly different aspects of career maturity where those adolescents demonstrated differential abilities.

Jakhar (2014) studied the relationship of career maturity with the school environment of adolescents. The study found that there was a positive correlation between the career maturity and school environment of adolescents. The study revealed that school environment had a significant influence on career maturity. The study also observed that in healthy school environment the students become more mature and could choose their career wisely.

Osoro, Amundson and Borgen (2000) studied factors related to career decisions of high school students in Kenya. The study revealed that gender, self-concept, and vocational stereotyping are among the major factors that influence career decisions of high school students.

Sumati and Kaur (2011) made a study to analyse the influence of self-concept on career maturity of senior secondary students. A sample comprised of 200 senior secondary students. Findings showed that students who have high self-concept have a below average career maturity and that means the self-concept did not play a decisive role in adolescents career maturity.

Nasir and Lin (2013) studied the relationship between self-concept and career awareness among the secondary school students. A sample 165 students age 12 was taken from an international school of Malaysia for the study. Career Awareness Inventory Test and Piers- Harris Children's Self Concept Scale were used to collect the data. Pearson correlation method was employed to find the relationship. The results revealed significant relationship between self-concept and career awareness among the students.

Abdullah and Talib (2018) studied career decision-making competence, self-knowledge, and occupational exploration of graduating students. 1655 students from university in Malaysia was selected as sample for the study by cluster sampling procedure or multistage random sampling technique. Confirmatory Factor Analysis, Structure Equation Modelling were used test collect the information from respondents. The descriptive quantitative research design with survey method was used. The study indicated self-knowledge (self-concept, effective behaviours, develop changes and transitions) and career decision making have positive and significant relationship.

#### Need and Justification of the Study

Choosing a career is an extremely important decision that impacts an individual's entire future. Career development, for the most people, is a lifelong process of engaging the work world through choosing among employment opportunities made available to them. Just as physical and intellectual development can be stunted if appropriate interventions are not applied, so can the normal developmental process of vocational development be stunted if appropriate interventions are not available in a planned, systematic way. A major turning point in adolescents' lives involves the career choice that they make while in secondary school.

A large number of career options are available these days to the students, making it a difficult task for the youngster to make a mature choice. Moreover, their career and vocational choices are certainly influenced by many social and environmental, sex, age, rural and urban background, psychological factors which may include intelligence, personality, achievement, motivation, interest, aptitude, self-concept, academic achievement etc. Thus, career selection is not an exclusively intellectual process in which various possibilities are sorted out in a logical manner. Instead decisions are based on the interaction of career maturity with various social or psychological factors. The complex interaction of these factors affects individual's readiness to succeed in mastering the tasks appropriate to various stages of career development. It has been found to be influenced differentially in different culture, race and gender groups by certain psychological, educational and demographic factors. The present study was, therefore, undertaken to examine the career maturity and self-concept of Adolescents' school students.

#### Objectives

1. To study the career decision maturity of adolescents' school students.
2. To examine the self-concept of adolescents' school students.

3. To study the relationship between career decision maturity and self-concept of boys.
4. To study the relationship between career decision maturity and self-concept of girls.
5. To study the relationship between career decision maturity and self-concept of total sample.

#### Hypotheses

1. There exists no significant difference between boys and girls of career decision maturity.
2. There exists no significant difference between boys and girls of self-concept.
3. There exists no significant relationship between career decision maturity and self-concept of boys.
4. There exists no significant relationship between career decision maturity and self-concept of girls.
5. There exists no significant relationship between career decision maturity and self-concept of total sample.

#### Sample

The present study consists of 200 students including boys and girls studying in 11<sup>th</sup> and 12<sup>th</sup> class drawn from two Government Senior Secondary schools of Malout (Pb). The 100 students comprising of 50 boys and 50 girls each were taken from both the schools. The sample was taken using random sample techniques.

#### Design

The design of the present study was based on sample of 200 students of Government senior secondary schools of Malout(Pb). The variables under the study were career decision maturity and self-concept of adolescent's school students. Career decision making was dependent variable and self-concept was taken as independent variable. In the present study descriptive survey method of investigation was utilized to know about career decision maturity and self-concept of adolescents school students.

#### Tools Used

1. Career Decision Making Scale (Singh, 2014)
2. Self-Concept Scale (Ahluwalia and Singh, 2012)

#### Analysis, Interpretations And Discussion Of The Results

The statistical techniques such as mean, standard deviation, t-test and correlation were used in the study. The results are given in the following tables 1, 2, 3, 4 & 5

**Table 1: t-ratio between boys and girls of career decision maturity of adolescents' school students**

Variable	Boys			Girls			SED	t-value
	N	Mean	SD	N	Mean	SD		
Career Decision Maturity	100	5.17	1.79	100	5.98	1.63	0.242	3.345**

\*\*Significant at 0.01 level of significance

(Critical Value 1.97 at 0.05 and 2.60 at 0.01 levels, df 198)

Table-1 reveals that the mean score of career decision maturity of boys is 5.17, which is lower than the corresponding mean scores of career decision maturity of girls is 5.98. The t-value testing the significance of mean difference between career decision maturity of boys and girls is 3.345, which in comparison to the table value was found significant at 0.01 levels of significance. Hence, the null hypothesis. H1: There exists no significance difference between boys and girls of career decision maturity, is rejected. The result indicates that girls are more conscious towards career decision maturity than that of boys. The results are supported by the finding of Kushwaha and Hasan (2005) found that sex have emerged as potential factors in generating significant variance upon career decision making. Mize (2005) found women as a group scored higher for career maturity than men. The results are contradicted by the finding of Albion (2000) found no gender differences in overall levels of career decidedness. Sharma (2014) found that no significant gender difference was found on the variable of career decision-maturity.

**Table 2: t-ratio between Boys and Girls of Self-Concept Adolescents School Students**

Variable	Boys			Girls			SED	t-value
	N	Mean	SD	N	Mean	SD		
Self-Concept	100	77.26	3.79	100	75.17	1.79	0.42	4.98**

\*\*Significant at 0.01 level of significance

(Critical Value 1.97 at 0.05 and 2.60 at 0.01 levels, df 198)

Table-2 shows that the mean score of self-concept of boys is 77.26, which is higher than the corresponding mean score of self-concept of girls is 75.17. The t-value testing the significance of mean difference between self-concept of boys and girls is 4.98, which in comparison to the table value was found significant at 0.01 levels of significance. Hence, the null hypothesis H2: There exists no significant difference between boys and girls of self-concept, is rejected. The result indicates that boys have more self-concept than that of girls. The results are supported by the findings of Patton, Bartum and Creed (2004) who reported self-concept for males as performing a positive and contributory role to career development. Joshi and Srivastava (2009) who found boys score significantly higher on self-concept as compared to girls. Bean and Northrup (2009) who found significant gender difference for males and females on the self-concept

scores . Sari (2007) found the levels of self-concept was higher among female students than male students, this difference was not statistically significant.

**Table 3: Correlation between Career Decision Maturity and Self Concept of Boys**

Variables '	N	Group	Value of 'r'
Career Decision Maturity and Self Concept	100	Boys	0.592**

*\*\*Significant at 0.01 level*

*(Critical Value 0.195 at 0.05 and 0.254 at 0.01 levels, df 98)*

Table-3 found that positive and significant correlation of 0.592 between career decision maturity and self-concept of boys, which in comparison to the table value was found positive and significant at 0.01 levels of significance. Hence, null hypothesis H3: There exists no significant relationship between career decision maturity self-concept and of boys, is rejected. The result indicates that the relationship between career decision maturity and self-concept of boys is highly correlated to each other.

**Table 4: Correlation between Career Decision Maturity and Self-concept of Girls**

Variables '	N	Group	Value of 'r'
Career Decision Maturity and Self- Concept	100	Girls	0.294**

*\*\*Significant at 0.01 level*

*(Critical Value 0.195 at 0.05 and 0.254 at 0.01 levels, df 98)*

Table-4 found that positive and significant correlation of 0.294 between career decision maturity and self-concept of girls, which in comparison to the table value was found positive and significant at 0.01 levels of significance. Hence, the null hypothesis H4: There exists no significant relationship between career decision maturity and self-concept of girls, is rejected. The result indicates that the relationship between self-concept and career decision maturity of girls is highly correlated to each other

**Table 5: Correlation between Career Decision Maturity and Self - Concept of Total Sample**

Variables '	N	Value of 'r'
Career Decision Maturity and Self-Concept	200	0.797**

*\*\*Significant at 0.01 level*

*(Critical Value 0.195 at 0.05 and 0.254 at 0.01 levels, df 98)*

Table-5 shows that positive and significant correlation of 0.797 between career decision maturity and self-concept of total sample, which in comparison to the table value was found positive and significant at 0.01 levels of significance. Hence, the null hypothesis H5: There exists no significant relationship between self-concept and career decision maturity of total sample, is rejected. The result

indicates that the relationship between self-concept and career decision making of total sample is highly correlated to each other. The findings are supported by Munir and Tarigan (2017) found that there is a significant and positive relationship between self-concept and career maturity.

#### Findings

1. There was significant difference between the boys and girls of career decision maturity.
2. There was significant difference between the boys and girls of self-concept.
3. There was significant and positive relationship between career decision maturity and self-concept of boys.
4. There was significant and positive relationship between career decision maturity and self-concept of girls.
5. There was significant and positive relationship between career decision maturity and self-concept.

#### Conclusions and Recommendations

In conclusion, the relationship between self-concept and career decision-maturity was examined and validated using a structural equation model. The findings show that there are significant relationships between self-concept and career decision-maturity. It is very important for students to build their self-concept in order to make them more confident in preparing themselves for their careers. The findings show that self-concept such as parental influence has a strong relationship on career decision-making among students. This highlights the importance of parental support and guidance for good career decision-making among students. Both present and previous researches have shown that self-concept is important in adolescent development. As a result, parents and teacher should help foster self-concept development in adolescents. Given that self-concept only accounted for a small variance in the career decision maturity variables under study research should be carried out to determine whether self-concept can also function as an outcome variable. The results demonstrate that self-concept has a significant role to play in adolescents' career development.

#### References

- Abdullah, N., Hussin, N., Shonubi, O. A., Ghazali, S. R., & Abu Talib, M. (2018). Career decision-making competence, self-knowledge, and occupational exploration: A model for university. *Journal of Technical Education and Training*, 10(1), 71-81.
- Ahluwalia, S. P. & Singh, H. S. (2012). *Manual for children's self concept scale*. Agra: National Psychological Corporation.
- Albion MJ.(2000) Career decision making difficulties of adolescent boys and girls. Unpublished Doctoral Dissertation, Australian Council for Educational Research. Available from <http://eprints.usq.edu.au/id/eprint/>. aspiration and gender. *Journal of the Indian Academy of Applied Psychology*, 32(2), 20-23.
- Hasan, B. (2006). Career maturity of Indian adolescents as a function of self-concept, vocational Education Beacon, 3(1),42-59.
- Hazen, Schlozman & Beresin (2008). Gender identity status and career maturity of adolescent in South West Nigeria. *Journal of Social Science*, 16 (1) 44-47.

- Huitt, W. (2004). Psychology and life. In Neetu (2006), *Self- concept and self- esteem*. Educational Psychology Interactive, Valdosta, G.A: Valdosta State.
- Istiana (2017).The relationship between self-concept and career maturity viewed from students' gender at Panca Budi Medan, Indonesia. *Journal of Humanity and Social Science*, 22(9,3), 56-66.
- Joshi S, Srivastava R. Self-esteem and academic achievement of adolescents. *Journal of the Indian Academy of Applied Psychology*, 2009; 35(1): 33-39.
- Kaur, P. (2005). Career Maturity Among Adolescents in Relation to Their School Climate *International Journal of Research in Education Methodology*. 1(1). Retrieved from <https://cirworld.com>>pdf.
- Kushwaha and Hasan B.(2005) Career decision making as a function of personality dimension and gender.*Journal of the Indian Academy of Applied Psychology*, 31 (1-2): 77-82.
- Marcotte D, Fortin L, Potvin P, Papillion M.(2002) Gender differences in depressive symptoms during adolescence: Role of gender-typed characteristics, self-esteem, body image, stressful life events, and pubertal status. *Journal of Emotional &Behavioral Disorders* 10(1): 29-42.
- Mize JB.(2005)Relationships of career decision making and self-esteem for college students and athletes. *Electronic Theses & Dissertations,Georgia Southern University:Georgia*.
- Munir A, Tarigan B(2017) The relationship of self-efficacy and self-esteem with career maturity on the students of SMA Negeri 15 Medan, Indonesia. *IOSR Journal of Humanities and Social Science*, 22(11): 67-73.
- Nasir, R. & Lin, L. S. (2013).The relationship between self-concept and career awareness among adolescents. *Asian Social Science*, 9(1), 193-197.
- Osoro, B. K., Amundson, N. E. & Borgen, W.A. (2000). Career decision making of high school students in Kenya. *International Journal for the Advancement of Counselling*.22: 289.doi:10.1023/A:1005661001209.
- Patton W, Bartrum DA,Creed PA. (2004).Gender differences for optimism, self-esteem, expectations career planning and goals in predicting career planning and exploration in adolescents.*International Journal for Educational and Vocational Guidance*, 2004; 4(2-3): 193-209.
- Sari, E. (2007).The effects of impetuous, exploratory and overall in decidedness on selfesteem among Turkish university students.*Theory and Practice of Educational Sciences*, 2007; 7(2): 915-926
- Sharma V. Depression among adolescents in relation to their family environment peer group influence academic stress and career decision-making.Unpublished Ph. D. Thesis, Panjab University:Chandigarh.2014.
- Sumati, D. & Kaur, S. (2011). Career maturity of senior secondary students in relation to their self-concept. *International Journal of Education and Social Science*, 2(1), 117-126.

# Ultrasound Studies on Some Schiff Bases

---

---

Rachana Kumari

*Assist. Prof. of Physical Science, Department of Education,  
Chanakya Teachers Training College, 52 Bigha Sapaha, Madhupur,  
Deoghar, Jharkhand*

## Abstract:

The present study, the Schiff base of benzaldehyde with p-bromoaniline and benzaldehyde with p-nitroaniline prepared. The ultrasonic study have been done and different acoustical properties of such as Ultrasonic velocity ( $U_s$ ), adiabatic compressibility ( $b_s$ ), Specific acoustic impedance ( $Z$ ) and Intermolecular free length ( $L_f$ ) in three different solvents viz DMSO, acetone and DMSO+Acetone mixture have been investigated. The ultrasonic study on Schiff's bases concluded that the ultrasonic velocities with varying concentration of schiff's bases were found to be highest in DMSO and lowest in acetone and when proportion of DMSO decreases, the corresponding ultrasonic velocity through the mixture also decreases. Intermolecular free length ( $L_f$ ) decrease linearly and hence increased in ultrasonic velocity observed with increase in concentration of Schiff base. It was occurred due to strong interaction between solvent and ion molecules suggesting a structure promoting behavior of the added electrolyte. The specific acoustic impedance ( $Z$ ) increased with the increase in concentration of Schiff base. When concentration of electrolyte was increased, increase in ionic strength is observed hence the thickness of oppositely charged ionic atmosphere is decreases. This is suggested by increase in acoustic impedance with concentration in system. It was seen that when concentration in system increases the intermolecular free length is decreases. As the concentration of solution increases, the adiabatic compressibility is decreases. The decrease in to collection of solvent molecule around solute molecules indicates that there are solute-solvent interaction are presence. This indicates that there is strong interaction between solvent and solute molecule in solution and the solution is becoming more and more compressible.

## Introduction

Compounds containing azomethine group ( $-C=N-$ ) usually known as Schiff bases which have been synthesized by the condensation of primary amines with active carbonyls compounds such as aldehydes or ketones. The term Schiff's bases were named to honour the Scientist Ugo Joseph Schiff, one of the founders of modern chemistry. The Schiff base metal complexes have occupied an important position in the modern inorganic chemistry. The interest in these compounds arises from their various applications in the field of bioinorganic chemistry. The Schiff bases are known for their biological importance. Recently

the pharmacological activities of Schiff bases such as anti-inflammatory activity, antibiotic activity and antimicrobial activity have been studied thoroughly [1-10]. Schiff bases form a significant class of compounds in medicinal and pharmaceutical chemistry with several biological applications which includes antibacterial [11-13], antifungal [14] and antitumor activities [15]. Schiff bases are interesting due to their preparation accessibilities, structural varieties and varied denticities [16-18]. Metal organic frameworks are widely regarded as promising materials for application in catalysis, separation, magnetism and molecular recognition [19-28].

Various types of Schiff bases are available which are forming very stable complexes with transition metal. Schiff bases are generally classified as monodentate, bidentate, tridentate, tetradentate and polydentate ligands. In bidentate Schiff bases the major donor atoms are NN, NO and NS, similarly in tridentate Schiff bases donor atoms are NNN, ONN, ONO and ONS, these ligands are capable of forming very stable complexes. Therefore large number of metal complexes of these ligands have been reported. The example of Schiff base are I) bidentate, II) tridentate, III) tetradentate IV) pentadentate etc. are summarized below

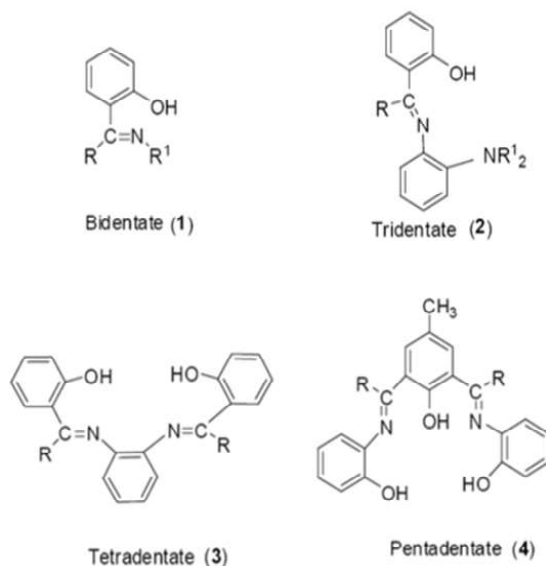


Fig. 1 Some classes of Schiff base ligands

### Biological Importance of Schiff Bases

Many biologically important Schiff bases have been reported in the literature possessing antimicrobial, antibacterial, antifungal, anti-inflammatory, anticonvulsant, antitumour and anti HIV activities [29-31]. Another important role of Schiff base structure is in transamination [32]. Transamination reactions

are catalysed by a class of enzymes called transaminases. Transaminases are found in mitochondria and cytosol of eukaryotic cells. Schiff base ligands may contain a variety of substituents with different electron-donating or electron-withdrawing groups and therefore may have interesting chemical properties. They have attracted particular interest due to their biological activities [33] e.g., acting as radio pharmaceuticals for cancer targeting [34]. They have also been used as model systems for biological macromolecules. Besides the biological activity, solid-state thermochromism and photochromism are another characteristic of these compounds leading to their application in various areas of materials science such as the control and measurement of radiation intensity, display systems and optical memory devices [35]. Schiff bases are also used as corrosion inhibitor e.g. fluorinated Schiff base derived from 3,4-difluorobenzaldehyde and 4,4'-benzidine were used as inhibitor in steel.

### **Significance of Schiff Bases and their Metal Complexes**

There are continuous developments of Schiff base ligands and their transition metal complexes [36-46]. Schiff base compounds and their metal complexes have been extensively investigated due to their wide range of applications including catalysts [47-48], medicine [49-50] crystal engineering [60], anti-corrosion agent [61-62]. Schiff bases are studied widely due to their synthetic flexibility, selectivity and sensitivity towards the central metal atom; structural similarities with natural biological compounds and also due to presence of azomethine group (-N=CH-) which helps in elucidating the mechanism of transformation and racemization reaction biologically [63-64]. Schiff bases having chelation with oxygen, nitrogen etc. donors and their complexes have been used as drugs and reported to possess a wide variety of biological activities against bacteria, fungi, and certain type of tumors and also, they have many biochemical, clinical and pharmacological properties [65-68].

The metal complexes of Schiff bases derived from heterocyclic compounds have been the center of attraction for many workers in recent years [69-71]. Metal complexes with nitrogenous Schiff bases are becoming increasingly relevant for their biochemical, analytical and antimicrobial activities [72-73]. One of the possible approaches to the synthesis of such compounds can be carried out from coordination chemistry. Metal complexes of Schiff bases are useful in the catalysis of many reactions like carbonylation, hydroformylation, reduction, oxidation, epoxidation and hydrolysis etc [75]. Optically active Schiff base complexes are also especially important due to their importance as catalysts in several industrial redox processes [76-78].

The role of Schiff bases and their metal complexes in living systems as a catalyst for metabolic process, promoters, storage and transport of metal ion of donor molecules and as an agent for transmission of energy. Schiff bases are capable of forming coordinate bonds with many of metal ions via its azomethine or phenolic groups [79-81].

It was seen that the biological activity of Schiff bases either increase or decrease upon chelation with metal ions [82-83] Cu(II), Ni(II) and Co (II)

complexes of Schiff bases derived from 3-substituted-4-amino-5-mercapto-1,2,4-triazole and 8-formyl-7-hydroxy-4-methylcoumarin show potent antibacterial activity against *Escherichia coli*, *Staphylococcus aureus*, *Streptococcus pyogenes*, *Pseudomonas aeruginosa* and *Salmonella typhi* and antifungal activities against *Aspergillus niger*, *Aspergillus flavus* and *Cladosporium* [84]. The Schiff bases derived from thiazole amines are found to be biologically more active due to the presence of thiazole nucleus. These have been found herbicidal properties. The complexes of Schiff bases derived from benzaldehyde and p-amino phenyl thiazol have significant role in anticancer activity [85]. The anticancer and antitubercular activities of these compounds have been studied by Muslim et al [86] the Schiff base metal complexes carrying molecular oxygen are useful in biological and industrial processes because of the importance of molecular oxygen in these fields. The industrial chemists are interested in developing the homogeneous analogues to metal catalyzed oxidation reaction where as the biochemists are interested in biological oxygen transport. Schiff bases of amino guanidine and aromatic aldehydes have been found for their antiviral, tuberculostatic and antipoliiovirus activities [87]. Schiff bases of nitro guanidine with various aldehyde and ketones have been found to be antineoplastic [88] and tuberculostatic activities [89]. Many other metal chelates were found to be antitumour and antineoplastic activities [90]. The complexes of Schiff bases derived from 2-Pyridine carbaldehyde and amino acids are powerful chelates for antibacterial activities [91]. The imino derivatives of it can be used as chemotherapeutic drugs [92]. The Schiff base complexes of Tin (IV) and organotin (II) moieties have been

## **2. Ultrasonic studies: (Sonochemistry)**

Sonochemistry is one of the green chemistry research area in which molecules undergo a reaction due to the application of powerful ultrasonic radiation. The ultrasound irradiation is a powerful technique for establishing unique chemical and physical conditions, such as a local increase in temperature of several thousands of Kelvins and pressure by several bars by which reaction proceeds. This method has several advantages such as higher atom economy, energy efficiency, environmental friendly, waste and hazards minimization etc. The above findings by various group of scientist stimulated us to synthesize new Schiff bases using classical as well as green technique. Ultrasonic Studies of Schiff's bases have been attracted the attention of both theoretical [1-3] and experimental [4-15] chemists worldwide. Ultrasound has come to play an important role in our daily life. It plays an important role in understanding the physico-chemical behavior of liquids [1-5]. Knowledge of the ultrasonic velocity and related acoustical parameters provides information about molecular interactions, the nature and strength of these interactions are very useful in solution processing technology. The study on changes in acoustical properties of solutions has been found to be an excellent qualitative and quantitative way to bring out the information about molecular structure and intermolecular forces present in the liquid mixtures [6-10]. Due to its non-destructive nature [16-18] it has wide range of application in different fields like chemical industries,

consumer industries, medical field, process industries, physics, chemistry, biology etc[19-24]. Further, it is one of the most rapid and reliable technique for the characterization of materials. In medical field, ultrasound was used to detect gall stones and foreignbodies in soft tissues. It is also used for various diagnosis such as pediatrics [25-26], vascular diseases[27-28], brain diseases[29], ophthalmology[30-31], in urology[32-33], in cancer cell[34-35] etc. It is also useful to obtain the information about lung microstructure [36] and biological structures[37]. It is safe for both patient and operator. It is also applied for inactivation of micro-organisms in food[37-39] and dairy industry [40-42]. More recently, a lot of interest has been generated on the use of ultrasound radiation in synthetic organic chemistry, which includes decrease of reaction time, increase of yield, lower reaction temperature, avoidance of phase transfer catalysis etc[43-48]. Another area where ultrasonic is now a day being used, is to obtain the information microstructures[49]. It is reported that these ultrasonic waves provide valuable information about the structure of solids [50-51]. By ultrasonic velocity measurements, the molecular interactions in pure liquids[52-55], aqueous solutions [56-60] and liquid mixtures [61-64] can also be studied.

## REFERENCES

- [1] De Souza, A.O.; Galetti, F.C.S.; Silva, C.L.; Bicalho, B.; Parma, M.M ; Fonseca, S.F.; Marsaioli, A.J.; Trindade, A.C.L.B.; Freitas-Gil, R.P.; Bezerra, F.S.; *et al.* Antimycobacterial and cytotoxicity activity of synthetic and natural compounds. *Quim. Nova.* 2007, 30, 1563–1566.
- [2] Ronad, P.M.; Noolvi, M.N.; Sapkal, S.; Dharbhamulla, S.; Maddi, V.S. Synthesis and antimicrobial activity of 7-(2-substituted phenylthiazolidinyl)-benzopyran-2-one derivatives. *Eur. J. Med. Chem.* 2010, 45, 85–89.
- [3] Saravanan, G.; Pannerselvam, P.; Prakash, C.R. Synthesis and anti-microbial screening of novel Schiff bases of 3-amino-2-methyl quinazolin 4-(3H)-one. *J. Adv. Pharm. Technol. Res.* 2010, 1, 320–325.
- [4] Jarrahpour, A.; Khalili, D.; de Clercq, E.; Salmi, C.; Brunel, J.M. Synthesis, antibacterial, antifungal and antiviral activity evaluation of some new bis-Schiff bases of isatin and their derivatives. *Molecules* 2007, 12, 1720–1730.
- [5] De Souza, A.O.; Galetti, F.C.S.; Silva, C.L.; Bicalho, B.; Parma, M.M ; Fonseca, S.F.; Marsaioli, A.J.; Trindade, A.C.L.B.; Freitas-Gil, R.P.; Bezerra, F.S.; *et al.* Antimycobacterial and cytotoxicity activity of synthetic and natural compounds. *Quim. Nova.* 2007, 30, 1563–1566
- [6] Przybylski, P.; Huczynski, A.; Pyta, K.; Brzezinski, B.; Bartl, F. Biological properties of Schiff bases and azo derivatives of phenols. *Curr. Org. Chem.* 2009, 13, 124–148.
- [7] Abdel Aziz, A.A.; Salem, A.N.M.; Sayed, M.A.; Aboaly, M.M. Synthesis, structural characterization, thermal studies, catalytic efficiency and antimicrobial activity of some M(II) complexes with ONO tridentate Schiff base N-salicylidene O-aminophenol (saphH<sub>2</sub>). *J. Mol. Struct.* 2012, 1010, 130–138
- [8] Sinha, D.; Tiwari, A.K.; Singh, S.; Shukla, G.; Mishra, P.; Chandra, H.; Mishra, A.K. Synthesis, characterization and biological activity of Schiff base analogues of indole-3-carboxaldehyde. *Eur. J. Med. Chem.* 2008, 43, 160–165

# Implementation Of Demonetisation—a Step Towards Reforming India

---

---

**Pritam Bharti**

*Research Scholar, Department of Commerce & Business Management,  
Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar (india)*

---

---

**Prof.(Dr.) Rajendra Pandey**

*Department of Commerce & Business Management, H.D.Jain College, Ara, Bihar*

## **Abstract**

Demonetisation, an act of stripping a currency unit of its status as legal tender, was implemented in India due to demand of time. Recent act is targeted towards reforming India as tackling Black money, corruption and terrorism. Along with these all taxation curve is also considered. There have also been global initiatives to tackle underground economy or Shadow economy. This paper examines the necessity of implementation of demonetisation, steps taken by government body to facilitate citizens to make their currency legal, imposing an initiative towards cashless transactions, changing banking industry with digital platform to make their employees more creative and to compete with foreign policy of advancement of technology in banking industry, etc.

Keywords: Demonetisation, Black money, Underground economy, Taxation, Digital money.

## **Introduction**

On November 8, 2016 Prime Minister ShriNarendraModi announced the government's decision to demonetise Rs. 500 and Rs. 1000 currency notes, which made up for 86% of currency in circulation. It was a radical monetary step in which both currency units' status as a legal tender is declared invalid. It's policy of the government by banning rupees 500 and rupees 1000 currency notes has influenced almost all the corner of the economy. The government of India pre planned for implementation of demonetisation as the Prime Minister ShriNarendraModi announced the biggest financial inclusion initiative PradhanMantri Jan DhanYojana (PMJDY) on 15th August 2014 and mega launched on 28 August 2014 across the country, so that citizen of India could make their currency legal and create a saving culture. At the beginning phase, cashless transaction was also made convenient by offering less transactional fee or sometimes none. Digital platform is performed smoothly and customer bent towards e- banking services.

### **Objective of The Study**

The primary objective of this study is to know the requirement of implementation of demonetisation. In addition of, the following specific objectives are set to achieve:-

- To highlight the step taken by the government to make the customers' money legal.
- To know the ease of customers and the government body for accessing bank accounts.
- To explore the benefits of advancement of technology in transactional curve.

### **Literature Review**

Rahul Deodhar (2016), Black Money and Demonetisation, This study is based on secondary sources of data collections. In this study, principles of tackling Black money, semantics of the current demonetisation, etc. is discussed. He has mentioned further that demonetization appears from the logical approach followed by the government that is nearly beginning of effort against black money.

Dr. T. LataSujata (2017), A comparative study on pre and post demonetisation on e- banking services, This study is based on primary data collected from 100 customers. It emphasised on the government decision about demonetisation which would curb Shadow economy cracking down the usege of illicit and counterfeit cash which is used to fund illegal activities. This paper also analysed how E-Banking has evolved- were customers aware of this facilities prior to demonetisation and how has this act of government affected public at large and steered them towards using e- banking services.

AnmolVerma (2016), Effects of demonetization on e-commerce and online payments. He studies the retail business and the payment methods have all changed, thanks to growth of Internet. An analysis has been carried out by that banking sector is like a central nerve to a national economy. He examines that the electronic fund transfer has been very effective and numbers of users are rapidly increasing.

### **Research Methodology**

The study examines the impact of demonetisation on tackling black money, corruption and terrorism. So, it is based on secondary sources of data collection. The secondary sources include various articles, reputed journals, newspapers, websites and annual reports published.

### **Limitation of the Study**

Recent implementation of the government policy called demonetisation has positive as well as negative impact in the country, but this study examines only the positive impact of the act. It's also limited to the secondary sources of Data collection. Primary data is not collected for this study, only local observation is considered.

## **History**

The Indian government had demonetized Bank notes on two prior occasions- once in 1946 and once in 1978.

### ***Demonetisation of 1946***

In 1946, the currency notes of rupees 1000 rupees 10000 were demonetised. The higher denomination notes were not accessible to common people at that time. So, the currency ban did not have much impact on the common people and the Indian economy. It severely impacted functioning of State Bank of India.

### ***Demonetisation of 1978***

In 1978, government demonetised rupees 1000, rupees 5000 and rupees 10000 notes. There was a political angle involved in 1978 demonetisation as the then newly formed Janta government wanted to target some of the alleged corrupt elements in the government. The impact of currency ban on common people was limited as the demonetised notes formed only a small portion of the total money supply.

## **Recent Implementation of Demonetisation**

The recent exercise of demonetisation was carefully crafted as observed by the Prime Minister in his televised talk on November 8, 2016 where he mentioned about completion of festive season and need for strong measures to defend India from menace of counterfeit notes and corruption. The main objective of the exercise was curbing Black money which included income which had not been reported and thus was untaxed. Money gained through corruption, illegal goods' sales and illegal activities such as human trafficking and counterfeit currency. Other objectives included expanded the tax base and increasing the number of taxpayers, reducing the number of transactions carried out by cash, reducing the finances available to terrorists and radical groups such as maoist and naxalites and integrating the formal and informal economies.

## **Government Plan For Ease of Living After Demonetisation**

The government given the constitutional provision of right to life, permitted use of old notes in government hospitals for medical treatment and buying medicine with doctors' prescription and making payments for milk and utility bills.

To ensure convenience and freedom of travel within the country, purchase of tickets for railway, bus and air travel were permitted with old notes and toll on highways was exempted.

To ensure comfortable international travel, use or exchange of old notes at international airports was also permitted.

Grace period was offered on purchase of petrol, diesel and gas cylinders for cooking.

In view of sowing season, old notes were permitted to be used for purchase of seeds.

For general convenience, payment of school fees as well as provisions for marriage functions was also made. The post offices which have a significantly larger presence in rural areas than commercial banks were also permitted to exchange old notes.

After these all, 126 amendments were introduced in the course of 51 days of exchanging currency.

### Opening of Jan Dhan Account

The biggest financial inclusion initiative PradhanMantri Jan DhanYojana (PMJDY) was launched under the consideration of implementation of demonetisation. Within a fortnight of its launch, it entered into the Guinness Book of World Record for opening a record number of bank accounts.

#### Benefits:-

- Customers are issued a Rupay debit card having inbuilt insurance cover of rupees 1 Lakh.
- Rupees 30,000 lives cover for those who opened accounts before January 26th 2015.
- 4% interest per annum on money deposit.
- No criteria for minimum balance.
- One can get money of government schemes directly in one's account.
- Overdraft facility up to rupees 5000 is available after operating bank account for 6 months.

### Present Scenario of PMJDY

(All figures in crore)

Bank Name/ Type	Number of Beneficiaries at rural/semi urban centre bank branches	Number of Beneficiaries at urban metro central bank branches	Number of Rural-Urban Female Beneficiaries	Number of Total Beneficiaries	Deposits in Accounts	Number of RuPay Debit Cards issued to beneficiaries
Public Sector Banks	15.97	13.81	15.67	29.78	84346.94	24.62
Regional Rural Banks	5.20	1.19	3.57	6.39	19448.25	3.86
Private Sector Banks	0.70	0.56	0.67	1.25	3051.43	1.16
<b>Grand Total</b>	<b>21.87</b>	<b>15.55</b>	<b>19.91</b>	<b>37.42</b>	<b>106846.62</b>	<b>29.65</b>

Source: Progress Report PMJDY as on 06/11/2019

### Push to Digital Banking

To push for the digital payments was one of the stated intentions of the demonetisation. Earlier only people who are having thorough knowledge about computers and electronic gadgets, used to perform online transactions. After demonetisation, the government has encouraged and sometimes made compulsory to perform online financial transactions. The elimination of corruption and eradication due to this demonetization consumer attitudes

towards the usefulness and willingness to use internet banking. The government implemented 24x7 service basis for smoothly circulation of e-banking services. Lots of E wallet applications are launched like paytm, BHIM, UPI, etc. government departments and agencies in many small towns and rural areas where equipped to receive NEFT, RTGS, or IMPS transactions. The government wanted to go cashless transactions. Due to that there were less transactional fees or sometimes zero.

**Benefits of cashless economy:-**

- Reduced instances of tax avoidance.
- Curb generation of Black money.
- Reduced real estate prices because of curbs on black money.
- Universal availability of banking services to all as no physical infrastructure is needed.
- Reduced cost of printing notes.
- Reduced cost of operating ATMs.
- Speed and satisfaction of operations for customers as no delays and queues, no interactions with bank staff required.

**Annual Turnover Report of RBI**

Volume (million)

Value (.billion)

Item	2016-17	2017-18	2018-19	2016-17	2017-18	2018-19
1	2	3	4	5	6	7
<b>Systemically Important Financial Market Infrastructures</b>						
1. RTGS	107.8	124.4	136.6	981904	1167125	1356882
<b>Total Financial Markets Clearing (2 to 4)</b>	<b>3.7</b>	<b>3.5</b>	<b>3.6</b>	<b>1056173</b>	<b>1074802</b>	<b>1165510</b>
2. CBLO	0.2	0.2	0.1	229528	283308	181405
3. Government Securities Clearing	1.5	1.1	1.1	404389	370364	509316
4. Forex Clearing	1.9	2.2	2.4	422256	421131	474790
<b>Total SIFMIs (1 to 4)</b>	<b>111.5</b>	<b>127.9</b>	<b>140.2</b>	<b>2038077</b>	<b>2241927</b>	<b>2522392</b>
<b>Retail Payments</b>						
<b>Total Paper Clearing (5 + 6)</b>	<b>1206.7</b>	<b>1170.6</b>	<b>1123.8</b>	<b>80958</b>	<b>81893</b>	<b>82461</b>
5. CTS	1111.9	1138.00	1111.7	74035	79451	81536
6. Non-MICR Clearing	94.8	32.6	12.1	6923	2442	925
<b>Total Retail Electronic Clearing (7 to 12)</b>	<b>4222.9</b>	<b>6382.3</b>	<b>12466.7</b>	<b>132324</b>	<b>193113</b>	<b>267515</b>
7. ECSDR	8.8	1.5	0.9	39	10	12.6
8. ECSCR	10.1	6.1	5.4	144	115	132.35
9. NEFT	1622.1	1946.4	2318.9	120040	172229	227936
10. IMPS	506.7	1009.8	1752.9	4116	8925	15903
11. UPI	17.9	915.2	5353.4	69	1098	8770
12. NACH	2057.3	2503.3	3035.2	7916	10736	14762
<b>Total Card Payments (13 to 15)</b>	<b>5450.1</b>	<b>8207.6</b>	<b>10781.2</b>	<b>7421</b>	<b>10607</b>	<b>14097</b>
13. Credit Cards	1087.1	1405.2	1762.6	3284	4590	6033
14. Debit Cards	2399.3	3343.4	4414.3	3299	4601	5935
15. PPIs	1963.7	3459.0	4604.3	838	1416	2129
<b>Total Retail Payments (5 to 15)</b>	<b>10879.7</b>	<b>15760.5</b>	<b>24371.6</b>	<b>220703</b>	<b>285613</b>	<b>364073</b>
<b>Grand Total (1 to 15)</b>	<b>10,991.2</b>	<b>15,888.4</b>	<b>24,511.9</b>	<b>2,258,780</b>	<b>2,527,540</b>	<b>2,886,465</b>

## Taxation Curve

PAN Category	FY 2016-17	FY2017-18	FY2018-19
AOP	122466	155129	177499
BOI	4257	5327	5771
COMPANY	715200	799687	847860
FIRM	1060323	1208349	1318828
GOVERNMENT	68	157	273
HUF	1007753	1114038	1166432
AJP	8479	9135	9430
LOCAL AUTHORITY	2578	2954	3102
INDIVIDUAL	41593816	50989970	59544767
AOP (TRUST)	191969	223251	244624
<b>TOTAL</b>	<b>4,47,06,909</b>	<b>5,45,07,997</b>	<b>6,33,18,586</b>

## Number of Taxpayers:-

Taxpayer Category	AY 2016-17	AY 2017-18	AY 2018-19
AOP	205725	225599	256689
BOI	8650	9246	10418
COMPANY	810617	837597	886889
FIRM	1250519	1312488	1425375
GOVERNMENT	747	1308	2556
HUF	1119899	1135677	1187180
AJP	11702	11506	12106
LOCAL AUTHORITY	8358	9096	10185
INDIVIDUAL	65555912	70445510	80445511
AOP (TRUST)	253070	261531	284578
<b>TOTAL</b>	<b>6,92,25,199</b>	<b>7,42,49,558</b>	<b>8,45,21,487</b>

## Terrorism and Internal Security

There was a decrease in the activities and attacks by Maoist and Naxalite radical groups which was attribute to lack of finance following demonetisation. The surrender rate had reached its highest. The activities returned within few months. There was a decrease in the terror activities in Jammu and Kashmir.

## Conclusion

India is the fastest growing economy of the world with a small current deficit, sufficient fiscal space, low inflation and rising foreign exchange reserves. In fact India with nearly 60% of population below 35 years will be unchallenged for next half a century. Hence, despite short- term pain, the country is unified in this rare opportunity to cleanse the economy from cancer of corruption while on its way to becoming a superpower. Demonetization hit the stock of unaccounted wealth kept exclusively in form of currency. India is serious about its commitment to fight corruption. It enhances India's ranking in ease of doing business. Users of e-banking services have been rapidly increasing and government is also enhancing its capabilities to make this banking system more and more smooth and convenient.

## References

- Rahul Deodhar (2016), Black Money and Demonetisation.
- Dr. T. LataSujata (2017), A comparative study on pre and post demonetisation on e-banking services.
- AnmolVerma (2016), Effects of demonetisation on e-commerce and online payments.
- Demonetisation PDF- pros and cons of demonetisation RS. 500& 1000 (3rd March, 2017)
- <https://www.pmjdy.gov.in>
- <https://economictimes.com>
- [www.wikipedia.org](http://www.wikipedia.org)
- [www.incometaxindia.gov.in](http://www.incometaxindia.gov.in)
- [www.rbi.org.in](http://www.rbi.org.in)

# Padmasambhava: The Successor of Shantarakshit and Perfect Pioneer of the Land of Snow

---

---

Lalan Kumar Jha

*Associate Professor, Dept. of Pali, NNM, Nalanda*

## Historical Sketch

There was a king in India whose son was Ôâ-thri-chen-po who ruled during second century B. C. E. ruled Tibet as the first king over there. He was the son of Indian ruler Āatyuddha<sup>1</sup>.

A marked history particularly written history is said to be started with the gifted ruler of Tibet Sron-btsan-sgam-po born in 617 C. E. He made arrangement of spoken Tibetan in the writing form which can be said as precursor to spread of Buddhism in Tibet from India<sup>2</sup>. A Tibetan legend says that Dhammadoot from India had visited the court of Tibetan king Tho-tho-ri and had offered him some books but returned with empty hands as alphabetic script was unknown in the Tibet of that time.

Urge of having an alphabet and bringing by two wives of Sron-btsan-sgam-po named Bhrukuti and Wen-ch'eng from Nepal and China consecutively in their marriages the image of Aksobhya, Maitrey and Āakyamuni as gifts and some other conditions, the king sent an able and brilliant Thon-mi Sam-bhot and with a band of sixteen scholars to India to generate a new alphabet<sup>3</sup>. They came to South India and learnt Indian epigraphy, Phonetics and grammar. They first mastered these subjects and then invented alphabet with grammatical structure. A task well completed by him so perfectly, that he wrote eight independent treatises on Tibetan writings and grammar. Recognized as the father of Tibetan Literature he also initiated translation of Sanskrit Buddhist works into Tibetan.

He learnt Indian languages under Brahmins and with pandita Devavidya Singh he learnt grammar of Panini, Kalapa and Chandra grammar of Sanskrit. He also studied Political Science and 21 sutras of Avalokiteswara. As told above Thon-mi-Sam-bhot wrote eight treatises on the Tibetan grammar but in modern times only Sum-cu-pa (*Trimsat*) and Tag-jug (*Lingavatara*) these two are only available. These are famous as original text of Tibetan grammar in the present time.<sup>4</sup> Thus the king Sron-btsan-sgam-po is all credited with transforming Tibet into new Buddhistic era and replaced animistic and Phon religious beliefs with Buddhism.<sup>5</sup>

In the succession of Tibetan Kings, Khri-sron-Ide-btsan (755-797 C.E.) faced a powerful opposition from his own Phon-officials when he wanted to invited

Santarakshit of Nalanda University to Tibet. In fact the king wanted to spread Buddhism among his people and it was his wish that their subjects should know Buddhism and converse in its lore. Santarakshit went there and tried his best with Ten virtues (*dasa-sila*) and Theory of Dependent Origination (*Pratityasamutpada*) but he could not succeed as these were could not generate interests in deaf ears<sup>6</sup>.

Cause of his failure was natural calamities in the form of storms and epidemics which raged general masses. His opposition became successful in poisoning ears of masses that it was due to introduction of a new faith by Santarakshit. To save Santarakshit from the masses the king took a decision to send back Santarakshit to India for some times<sup>7</sup>.

But this Journey was not in vain. Santarakshit became aware about charms and spells which local masses liked. He thought that in the given condition only a person well versed in esoteric practices and Tantra specialist would be successful in this land. He became successful in convincing the king about Padmasambhava who was expert in these practices. Sometimes repaying back in the same coin to opposite party becomes essential. Padmasambhava became successful in establishing Buddhism their and such was his effect among masses that he is being respectably called as Guru Rinpoche by them<sup>8</sup>. When Guru Padmasambhava was returning from 'Skiyad-groan' area some demonic forces wanted to block the way of acharya Padmasambhava by natural calamities but the great Padmasambhava ward off those calamities with his force of meditation and initiated those forces in the Dhamma of the Buddha<sup>9</sup>. Thereafter acharya Padmasambhava went to the areas of Mnha-ris, Dbus, Gcan and Mdo-Khamas and surveyed with his Supernormal Powers and proceeded to new areas of Brtana-ma-Bcu-Ganis, Mgura-lha-Bcu-Gasuma and Damga-Bsñen-ñera-gciga etc. subdued with his powers and initiated demonic forces into Buddhism and asked them not to harm any creature<sup>10</sup>. It was something like he came, he saw and he conquered those areas and established Buddhism there. It was the effect of his teaching that even today he is revered and his name is pronounced with deep respect by Tibetan people.<sup>11</sup>

The king Khri-sron-lde-btsan and his one expeditious journey against Chinese armies is worth to mention here. He defeated Chinese army and to commemorate it erected a pillar inscription in front of Potala palace. He also established the big monastery at Bsam-yas on the model of Udantapuri of Bihar at Nalanda at that time. He also prepared the first Catalogue of translated Buddhist works in the Ldanddkar Palace and reorganization of the translation activities on sound line of Āntarakshita after his return to Tibet<sup>12</sup>

Guru Padmasambhava introduced Buddhism to the people of Sikkim. There is an area named Bayuol Demosong in Sikkim. It was known as hidden land of Sikkim. It was a barren land before the visit of âcârya Padmasambhava and empty valley infested with thick forests and difficult to travel through. There were no human habitants, and it was inhabited by wild monkeys, leopards, tigers and with other animals. Evil spirits and untamed deities rule

the roost. To tame them all and to spread Buddhism, âcârya Padmasambhava came to Sikkim. He tamed unruly spirits and spread Buddhism there.<sup>13</sup>

It was the effect of his teachings that every house-holds of Leha-Laddakh has his statue in each home of nigma follower.

### **Birth of Padmasabhava**

Guru Padmasambhava is called as 'Ugyan' or 'Urgyan' as his native place was Udyâna or Urgyan Corresponding to the country about Ghani to the north-west of Kashmir.<sup>14</sup>Elaborating this Ghazni Waddell quotes Sir H. Yule the great geographer, Udyâna lay to the North of Peshwar, on the Swat river. Huen Tsang regards this are as the whole hill region south of the Hindu Kush from Chitral to Indus. It is regarded by Fa Hian as the most northerly Province of India and in his time and the food and clothing of the people were similar to those of Gangetic India.<sup>15</sup> About Udyân Hiuen Tsang says that people are in disposition somewhat sly and crafty. They practice the art of using charms. He further writes the employment of magical sentences is with them an art and a study. A few century later Marco polo talks about Kashmir and says people by their sorceries bring on change of weather, and produce darkness, and do a number of things so extraordinary that no one without seeing them would believe them<sup>16</sup>.

### **Journey of Padmasambhava**

The king Khri-sron-lde-btsan sent messenger Sna-nama-dor-je-bduda-h[j]omas and others. It is said Guru Padmasambhava knew the mind of those messengers and arrived at Mana-yula-guna-thana where he met messengers.<sup>17</sup> Writing about powerful weapon Waddell says that the Guru's most powerful weapon in warring with the demons were the *Vajra* (in Tibetan, *dor-je*), which is symbol of the thunderbolt of Indra and spells extracted from the Mahâyâna traditions<sup>18</sup>. The year in which Guru Padmasambhava reached Tibet is said as 747C.E.<sup>19</sup>It was not an easy Journey but Guru conquered evil forces one by one and brought those forces into fold of Buddhism. Brief activities of Padmasambhava are as follows.

### **Subduing of Evil Forces by Padmasambhava**

When passing through Nepal Guru reached *MaE-yul* area. There enemy god (*dgra-lha*) wanted to destroy him by squeezing him between two mountains. But Guru Padmasambhava overcame her by his supernormal power of soaring in the sky. After receiving her submission and taking her promise that she would become a guardian of Lamaism<sup>20</sup>.

When the Guru reached *gNam-tan-makar-nag*, whit fiendness of that place started showering thunderbolts upon him, but it did not harm him. The Guru Padmasambhava melted her snow dwelling into a lake. It is said when she took refuse in another lake, Guru caused that lake to boil. Even then when she did not emerge Guru pierced her right eye<sup>21</sup>.

After that Guru proceeded to *U-yug-bre-mo-snar* where the twelve bstanma furies hurled thunderbolts at him and tried to crush him between mountains. But Guru saved him flying into sky and by pointing fingers Guru charmed their thunderbolts into cinders<sup>22</sup>.

Then Guru reached the fort of *U-yug-bye-tshan-rdson* where he was opposed by another fiend priest. It had three hundred and sixty followers, who all were subjected and leader was appointed a guardian of Lamaist doctrine<sup>23</sup>.

It was followed by Sham-po-lun where the demon *Yar-lha-sham-po* transformed himself into a huge maountain-like white yak whose breath belched forth like great clouds and whose grunting sounded like thunder. Bu-yug gathered at his nose, and he rained thunderbolts and hail. It is said Guru caught the nose of demon by iron-hook and bounded his neck and feet by rope and transformed him into a young boy dressed in white silk<sup>24</sup>.

It was followed by Guru to *Phya-than-ia* where he subdued a demon of a big size, when snake rained thunderbolts Guru transformed these into fishes and frogs etc. and the Guru also transformed it into a boy dressed in white silk<sup>25</sup>.

In his way of subduing demons Guru proceeded northern phan-yul-thang, opening of magic circle, subduing of an old woman with a turquoise cap then Central –Tibet then Guru reached Lhasa then story of saluting first and prostration by the king of black-headed men of Tibet with his ministers etc.; These are brief accounts of subduing of demons of Tibet<sup>26</sup>.

At this point it becomes necessary to say something on the four main sects of Tibetan Buddhism. Tibetan culture and its literature and life style are on the basis of Buddhism and these are guided by Buddhism too. There are mainly four sects of Buddhism in Tibet. These are- ÔE-mâ, K-gud, S-kyâ, and Ge-lugsa.

## Conclusion

Conclusively, it can be said as these stories matches conversion of the Buddha to some heretics and Journey of the Buddha to Sinhal Dîpa where he subdued demons in His first Journey after ninth month of His Getting Nibbâna, fifth year after His enlightenment and His third journey after eighth year of His enlightenment.

## Bibliography

1. *The Tibbatî Pâmhamâlâ*, by Tulku Dhondup, pub. by Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, First Edition 1976, 2<sup>nd</sup> Edition, Bibliotheca Indo-Tibetica Series-1, Varanasi, 1997
2. *2500 Years of Buddhism*, Edited by P. V. Bapat, Pub.by Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Fifth Reprint, First published on the occasion of 2500<sup>th</sup> Anniversary of the Mahapartnirvana of the Buddha May 1956, Delhi, 1987
3. *Tibbat Mein Bauddha Dharma Kâ Itihâsa* by G. K. Lama, pub. by Northern Book Centre, 4221/1, Daryaganj, ISBN-81-7211-155-X, New Delhi, 2004
4. *Tibbata Mein Bauddha Dharma* by Rahul Sankrityayana , pub. by Kitaba Mahala, First Edition-1948, Present Edition, Allahabad, 2005
5. *The Buddhism of Tibet or Lamaism* by L. Austine Waddell pub. by Low Price Publications,

b-2, Vardhaman Palace, Nimri Commercial Centre, Ashok Vihar Phase- IV, First Published 1899, Reprinted Delhi, 1999

6. *Tibetan Buddhism* Ed. by Steven D. Goodman and Ronald M. Davidson pub. by Sri Satguru Publications a division of Indian Book Centre, ISBN-81-7030-376-1, Delhi, 1992
7. *Nalanda (Buddhism and Indian Cultural Journal)*, Ed. by Bhikkhu Sumanapal, "The Role of Acharya Padmasambhava in Sikkim" by D. Lama, Pub. Dr. Amal Barua, ISSN No. 2320-7264, Kolkata, 2013-2014

**(Footnotes)**

1. *The Tibbati Pamhamala*, by Tulku Dhondup, (Introduction), p.xvii
2. *2500 Years of Buddhism*, "Tibet and Ladakha", p.65
3. Ibid.
4. *The Tibbati Pamhamala*, by Tulku Dhondup, (Introduction), p.xviii
5. Ibid. p.66
6. *2500 Years of Buddhism*, p. 67
7. Ibid.
8. Ibid.
9. *Tibbat Mein Bauddha Dharma Kâ Itihâsa*, p.60
10. Ibid. pp. 60-61
11. Ibid. p. 61
12. *2500 Years of Buddhism*, p. 67
13. *Nalanda Buddhism and Indian Cultural Journal*, "The Role of Acharya Padmasambhava in Sikkim", Pub. by Dr. Amal Barua, p.214
14. *The Buddhism of Tibet or Lamaism* by L. Austine Waddell, p. 26
15. Ibid. (Foot note 3 of the same page above).
16. Ibid.
17. *Tibbat Mein Bauddha Dharma Ka Itihasa* by G. K. Lama, p. 60
18. *The Buddhism of Tibet or Lamaism* by L. Austine Waddell, p. 27
19. Ibid., p. 24
20. *The Buddhism of Tibet or Lamaism*, (Foot notes)p.381
21. Ibid.
22. *Tibetan Buddhism* Ed. by Steven D. Goodman and Ronald M. Davidson, p. 19
23. *The Buddhism of Tibet or Lamaism*, (Foot notes), pp. 382-383
24. *The Buddhism of Tibet or Lamaism*, (Foot notes)pp. 383-384
25. Ibid. p.384
26. Ibid.